

TULSI HIGH SCHOOL COURSE

तुलसी-हाईस्कूल-कोर्स

हाईस्कूल परीक्षा के लिये गोस्वामी तुलसीदास के
अयोध्याकाण्ड, पार्वती-भगल, जानकी भगल आदि
ग्रन्थों का सटीक संग्रह ।

२०८४
— श्रीगोस्वामी तुलसीदास —
— अयोध्याकाण्ड —

१) हरिशङ्कर शर्मा, "कविरत्न"

—*—

प्रकाशक—

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, बुकसेलर

आगरा ।

मूल्य १।)

मुद्र—

सत्यप्रत शर्मा

साहित्य श्रेष्ठ, रीतनागरी-भाग १ ।

प्रस्तावना



महाकवि तुलसीदास

कवि कुल कमल दिवाकर सु दिव्य देव,
राम गुण गान कर जग को जगा गया ।
जीवन को उद्यता की चोटी पै चढ़ाव कैसे,
भाषा बोल-चाल की में सबको सिखा गया ॥
बाँव बाँच कथा लोग लाते हैं, लाखुरा रुपे,
सम्पति का स्रोत प्रेस वालों पै बहा गया ।
छोड़ गया विमला विभूति अमनीतल पै,
तुलसी अमर हो परमपद पागया ॥

सत्सार में, प्रथम तो मनुष्य-जन्म पाना ही दुर्लभ है, अगर वह मिल भी गया तो विद्या कठिनता से प्राप्त होती है, किसी प्रकार विद्योपार्जन भी हो गया तो कवि बनना सहज नहीं, और यदि कविता करनी भी आगई तो उसमें समतुल्य शक्ति का आना तो अत्यन्त ही मुश्किल है। किसी ने ठीक कहा है—‘कवि उत्पन्न होते हैं, बानाये नहीं जाते।’ स्वभाव-सिद्ध कवियों के काव्य में ही वह अपूर्वता होती है, जिसके कारण कवि ‘कवि’ याता और उसकी कृति काव्य’ का रूप धारण करती है। बहुत से कवि दुन्द शास्त्र या अलंकार ग्रन्थों में पारंगत होते हैं, शब्द-कोष के भी स्वामी समझे जाते हैं, परन्तु उनकी कविता में लोकोत्तरानन्ददायक

चमत्कार दिखाई नहीं देता, अर्थ-वैचित्र्य और भाव गाम्भीर्य के चिन्ह दृष्टिगत नहीं होते, इसलिए उसमें कुछ आनन्द भी नहीं आता। वस्तुतः कविता वही है जिसके श्रवणमात्र से सहृदय श्रोता का सिर हिल जाय और वह उस पर जादू का असर डाल दे। वह कविता और वह तीर ही क्या जो दूसरे के हृदय में लग कर उसका सिर न घुमादे। नि सन्देह ऐसी कविता करना सबका काम नहीं है, उसे वही कवि कर सकता है जिस पर परम कारुणिक भगवान् को अपार अनुकम्पा होती है। अगाध विद्वत्ता या प्रचण्ड पारिडत्य प्राप्त करने से ही कोई कवि नहीं हो सकता, कवि वही होगा जिसमें कविता करने की अद्भुत शक्ति विद्यमान है।

खोजने पर आपको विदित होगा कि सत्सार में विद्वानों और पण्डितों की कमी नहीं रही, परन्तु कवि बहुत थोड़े हुए हैं, मोलिक कवि उँगलियों पर गिने जाने योग्य हैं। संस्कृत की बात जाने दीजिए, हिन्दी को ही लीजिए, जब से हिन्दी के इतिहास का पता चलता है, तब से अब तक न मालूम कितने कवि नामधारियों ने कविता की होगी परन्तु वे सब काल के गाल में सदा-सर्वदा के लिए विलीन हो गये, आज उनका कोई नाम भी नहीं जानता। हिन्दीजगत् में सूर, केशव, तुलसी, विहारी, देव, पद्माकर, भूपण इत्यादि कवियों की कविताओं का बड़ा आदर है। इनमें से भी तुलसीदासजी की रामायण जितनी लोकप्रिय हुई है, उतनी और किसी कवि की पुस्तक नहीं। इसका मुख्य कारण रघु-कुल-वमल दिखाकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र का आदर्श चरित्र और गोस्वामीजी की अद्भुत कवित्व-शक्ति ही है। सोना और सुगन्ध दोनों का एक स्थान पर समावेश हो जाना

इसी को कहते हैं। रामायण के चरित्रनायक का चरित्र तथा अन्य पात्रों का वर्णन जितना शिक्षाप्रद, आदर्शरूप एवम् अनुकरणीय है उतना ही कवि का कवित्व परिमार्जित, मौलिक, सरस, सरल तथा चमत्कार युक्त है। यदि रामायण का रामचन्द्र से कोई सम्बन्ध न होता, अथवा तुलसीदास की लेखनी में ही जादूबयानी न होती तो इस ग्रन्थ के इतना लोकप्रिय होने में सन्देह था। कवि सूक्ष्मदर्शी होते हैं, राष्ट्र या जाति के उत्थान पतन का उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। आदि कवि महात्मा वाल्मीकिजी यदि अपनी प्रतिभा द्वारा रामचरित्र प्रकाशित न करते तो सम्भव है आज लोग राम का नाम भी न जानते और गोस्वामी तुलसीदासजी को अपने कविता के लिए कोई दूसरा ही विषय चुनना पड़ता। किसी देश, किसी राष्ट्र अथवा किसी भाषा को देख लीजिए, सबके इतिहास के निर्माता और गौरव के सरलक कवि लोग ही होते आये हैं। कवि न हों तो ससार से साहित्य-सूर्य का लोप हो जाय और जगत् में अंधेरा ही अंधेरा दिखाई देने लगे। किसी ने ठीक कहा है—

‘जहा न पहुँचे रवि—वहा पहुँचे कवि’

अनुमास युक्त वाक्य लिखने वाला ही कवि नहीं होता प्रत्युत वे गद्य लेखक भी कवि कहलाते हैं, जिनकी कृति में काव्य अपेक्षित गुण और चमत्कार पाये जाते हैं। गद्य और पद्य दोनों का रचयिता कवि हो सकता है, यदि उसमें वास्तविक कवित्व यथोचित मात्रा में विद्यमान हो। तुलसीदासजी ने जितनी पुस्तकें लिखीं उन सबमें ‘रामचरित-मानस ही सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। धर्म, नीति, सदाचार और समाज शास्त्र का ऐसा कोई तन्त्र नहीं जिसका

विशद वर्णन उसमें न किया गया हो। उसे श्रलकारों का आकर, प्रसादगुण का प्रसाद और छन्दों की छावनी कहना अनुचित न होगा। रामायण में रसों की विमल धारा इस विचित्रता से बहार्द गई है कि सहृदय-समाज उसमें बलात् बहा चला जाता है। मनुष्यों के स्वभाव, म्यानों का सौंदर्य, ऋतुओं की शोभा और प्राकृतिक सुखमा का वर्णन करने में, गोस्वामीजी की, नयनबोन्मेपशालिनी प्रतिभा शक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार रामायण के पृष्ठों पर भली भाँति दिखाई देता है। घटनाओं का विचित्र वर्णन आपने इस अनोखे ढंग से किया है कि वे पढ़ने या सुनने वालों के सामने साक्षात् घटित होती सी दिखाई देने लगती हैं। जहाँ जिस घटना का जैसा वर्णन करना पड़ा है, वहीं आपने प्रसंगानुसार कठोर या कोमल शब्दों का आश्रय लिया है। धीररस का प्रसंग पढ़ते ही पाठक का हृदय बलियों ऊँचा उछलने लगेगा। करुणरस की कथा भक्तों के नेत्रों से, अश्रुधारा बहाये बिना न रहेगी। किसी रस को ले लीजिए सब में उसके स्वरूपानुरूप सामयिकता और स्वाभाविकता दिखाई देगी। शृङ्गार रस इस खूबी से वर्णन किया है कि उसमें अश्लीलता का लेश भी नहीं आने पाया। आवाज वृद्ध स्त्री पुरुष सब ही इस ग्रन्थ को निःसंकोच भाव से पढ़ सकते हैं। पितृआज्ञा पालन, मातृ-स्नेह, एक पत्नीप्रिय, पातिव्रत्य, पुत्रप्रेम, मातृ भक्ति, दुष्टदलन स्वामि-सेवक सम्बन्ध, सच्ची मैत्री इत्यादि किसी बात को भी लीजिए सबकी शिक्षा आपको रामचरित मानस में मज्जन करने से मिल सकेगी।

सदाचार सम्बन्धिनी ऐसी कौनसी बात है जिसका रामायण में वर्णन नहीं किया गया। “बालक जुग जखन नर-नारी”

कोई भी क्यों न हो, सब ही इस मानसरोवर का श्रमृत जलपान कर कृतकृत्य हो सकते हैं । कदाचित ही ऐसा कोई शिखा-सूत्रधारी होगा जिसे रामायण से प्रेम न हो और जिसने उसकी दो चार चौपाई कण्ठ न कर रखी हों । मुसलमान और अंग्रेज तक तुलसीकृत रामायण पर इतने मुग्ध हैं कि उर्दू और अंग्रेजी में भी उसका पद्यात्मक अनुवाद हो चुका है । बंगला कविता में भी उसका उलथा किया गया है । कुछ लोगों ने तुलसीदास की कविता में दोषक मिला कर बड़ा अनर्थ किया है, वे जिस उद्देश्य से मिलाये गये हैं वह पूरा हुआ या नहीं, इसे हम नहीं जानते, परन्तु इतना श्रम्य है कि मिलावट करने वालों ने गोस्वामीजी की कविता देवी के साथ न्याय से काम नहीं लिया । लाख छिपाने पर भी भही कविता के दोषक नहीं छिपते । वे उसी प्रकार बदनुमा मालूम होते हैं जिस प्रकार रेशमो वस्त्र में गजी का पेबन्द बुरा लगता है । सहृदय-समाज का कर्त्तव्य है कि वह रामचरित-मानस से दोषकों का कूड़ा फेरकट दूर करदे और उसके सुधासमान सुमधुर सलिल का सानन्द रसास्वादन करे ।

रामायण के सुन्दर शरीर को पाठ भेद के रोग ने भी बुरी तरह क्षत-विक्षत कर रखा है । अनेक स्थलों पर, अनेक पाठ-भेद होने से ग्रन्थ का गौरव गिर जाता और उसकी दुरूहता बढ़ जाती है । रामचरित मानस के जितने सस्करण आप देखेंगे प्रायः सब में कुछ न कुछ पाठ भेद दिखाई देगा, इसका कारण मूल की शुद्धता पर विशेष ध्यान न देना ही हो सकता है । सन्तोष की बात है कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की सहायता से रामायण का पाठ-भेद दूर करने की बहुत चेष्टा की है, और उसमें उसे सफलता भी प्राप्त

हुई है। आजकल उपर्युक्त समा द्वारा प्रकाशित संस्करण ही अधिक विश्वस्त समझा जाता है जो सर्वथा समुचित है।

तुलसीदासजी ने रामायण रचकर हिन्दू जाति का बड़ा उपकार किया है, यदि वह देश को प्रचुर धनराशि प्रदान कर जाते तो उससे इतना लाभ न होता जितना इस एक पोथी ने कर दिया। अब तक रामायण की कथा बाँचकर लोगों ने लाखों रुपये पेड़ा किये, छापेखाने वालों ने पुष्पल कमाई की, असंख्य पाठकों का पूरा मनोरंजन हुआ तथा करोड़ों लोगों के जीवन सुधर गये। और अभी क्या रामायण का काम समाप्त हो गया है ? हमारा विश्वास है कि ज्यों ज्यों हिन्दी भाषा का प्रचार तथा गौरव बढ़ता जायगा त्यों त्यों रामायण भी अधिक लोकप्रिय होती जायगी और आने वाली शताब्दियों में, इस ग्रन्थ द्वारा असीम उपकार होगा। रामायण के कारण पाठकों के हृदय में तुलसीदासजी की चरित्र सम्बन्धिनी बातें जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है, अतएव यहाँ हम इस विषय में कुछ बातें लिख देना आवश्यक समझते हैं।

जन्म और गृह-त्याग

हिन्दी का उत्पत्ति-काल ८०० से १२०० ई० तक माना जाता है। १५०० ई० से लेकर १७०० ई० तक के समय को हिन्दी का 'प्रोढ़काल' कहते हैं, क्योंकि सबसे अधिक और सबसे उत्कृष्ट कवि इसी काल में हुए हैं। हिन्दी के 'प्रोढ़काल' में भारत का शासन-सूत्र मुगलों के हाथ में था। सम्राट् अकबर राजसिंहासन पर आसीन थे। यवन शासन-काल में हिन्दी का इतना विकास होना अवश्य ही आश्चर्य की बात है। मुगल दरबार से हिन्दी कवियों को आश्रय तथा प्रोत्साहन भी खूब

गमलता था । एक ही काल में ऐसे अच्छे और इतने अधिक कवियों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण यही मालूम देता है । एक बात और थी, इन दिनों बल्लभीय और रामानुज सम्प्रदाय का बड़ा जोर था और राम तथा कृष्ण की भक्ति के गीत अधिकता से गाये जाते थे । इस भक्ति-भागीरथी के प्रबल प्रवाह द्वारा नये-नये कवियों की प्रसूत प्रतिभा शक्ति का जागृत होना भी एक साथ बहुत से कवि पैदा होने का कारण कहा जा सकता है । सूर, तुलसी, केशव, विहारी, भूपण, मतिराम, देव, रसखान आदि अनेक महाकवि इस प्रौढ़ काल में ही हुए हैं । महाकवि तुलसीदास जिनकी पुण्यमयी कविता की धवल धारा आज सारे देश में प्रवाहित हो रही है, १५२६ सवत् में पैदा हुए थे । इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कहीं कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता । कोई किसी स्थान में गोस्वामीजी की जन्म-भूमि बताता है और कोई किसी को । परन्तु अब तक की खोज का जो परिणाम निकला है, उससे उनका जन्म-स्थान बाँदा जिले का राजापुर नामक स्थान ही ठीक ठहरता है । वहाँ इनकी कुटी तथा मन्दिर आदि भी बने हुए हैं । गोस्वामीजी का जन्म सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था, परन्तु मिश्रबन्धु ऐसा नहीं मानते । उनके मत में गोस्वामीजी सरवरिया नहीं बल्कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । गोस्वामीजी ने स्वयं अपने माता-पिता का नाम कहीं नहीं लिखा, परन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का हुलसी था । तुलसीदासजी का असली नाम तुलाराम था । ये चार भाई थे और दो इनकी यद्दिनै थीं । तुलसीदासजी का एक नाम 'रामबोला' भी था । जन्म का नाम बदल कर गुरु ने इनका नाम तुलाराम रखा जो पीछे भक्ति के आवेश के कारण तुलसीदास के रूप में परिणत हो गया ।

कहते हैं, तुलसीदासजी का जन्म अभुक्त भूल में होने के कारण उन्हें उनके माता पिता ने छोड़ दिया था, और वह अनाथ की तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरे थे। किसी किसी का यह भी मत है कि तुलसीदासजी बचपन में नहीं बलिक बड़े होने पर अपने माता-पिता से स्वयं वियुक्त हुए, जो हो। गोस्वामीजी के गुरु नरहरिदास थे। इनका उल्लेख तो उन्होंने स्वयं भी किया है—

“बन्धुं गुरुपद कज, कृपासिन्धु नर रूप हरि ।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर ॥”

गोस्वामीजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्ना चली से हुआ था, जिससे तारक नामक पुत्र हुआ जो अल्पायु में ही काल कवलित हो गया। कहते हैं, गोस्वामीजी बड़े भार्या-भक्त थे। एक बार इनकी स्त्री इनकी इच्छा के विरुद्ध अपने पिता के घर चली गई। गोस्वामीजी इस वियोग को सहन न कर सके और साधे ससुराल पहुँचे। वहा रत्नाचली ने अपने पति की ऐसी अनुचित अनुरक्ति देय कर कहा—

“लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहहु मैं नाथ ॥
अस्थि चरम मय देहममता में जेसी प्रीति ।
तैसी जो श्रीराम महँ होत न तौ भव भीति ॥”

स्त्री की उपर्युक्त झिडकी भारी पकिया तुलसीदासजी के बाण के समान लगी और उन्हें उसी समय विरक्ति हो गई। स्त्री ने बहुतेरा समझाया-बुझाया और आग्रह किया परन्तु फिर वह अपने स्वामी को गृहस्थ की ओर आकृष्ट न कर सकी। विरक्त होकर गोस्वामीजी काशी पहुँचे और अयोध्या में भी

विश्राम किया । मथुरा, वृन्दावन, चित्रकूट, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सोरों आदि तीर्थ स्थानों में भी आप भ्रमण किया करते थे । कुछ लोगों का मत है कि गोस्वामीजी का विवाह नहीं हुआ था, परन्तु निर्धारित धारणा इस विचार के विरुद्ध है ।

काशीवास

काशी में गोस्वामीजी अधिकतर असी घाट पर रहे थे, इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ दिनों तक और भी कई घाटों पर निवास किया था । मृत्यु भी उनकी काशी में ही हुई थी । तुलसीदासजी के सन्मन्थ में एक दन्त-कथा प्रसिद्ध है कि ये हनुमान के बड़े भक्त थे, हनुमान की कृपा से इन्हें श्रीराम-चन्द्रजी ने दर्शन दिये इत्यादि । गोस्वामीजी ने काशी की राम-लीला को बिल्कुल नई रंगत दे दी थी आप कृष्णलीला भी कराते थे । ये दोनों लीलाएँ अब तक बराबर होती हैं, और तुलसीदासजी के नाम से ही प्रसिद्ध हैं ।

दोहार्द्ध की पूर्ति

अकथर के प्रसिद्ध सचिव खानखाना भी तुलसीदासजी के समकालीन थे । ये बड़े कवित्त-प्रेमी और साहित्यिक सज्जन थे । गोस्वामीजी का इनके साथ बड़ा स्नेह था । इनमें परस्पर छेड़-छाड़ भी खूब रहती थी । एक बार कोई ब्राह्मण तुलसीदासजी के पास आकर धन की याचना करने लगा । तुलसीदासजी ने एक परचे पर नीचे लिखा दोहार्द्ध लिपिफर ब्राह्मण को दे दिया और कहा—इसे खानखाना के पास ले जाओ—

‘सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय’

पानपाना सहृदय तो थे ही यह तुलसीदासजी के अभि-
प्राय को समझ गये और उन्होंने उस ब्राह्मण को अच्छी आर्थिक
सहायता देकर विदा किया तथा उक्त दोहे की पूर्ति भी करके
तुलसीदासजी के पास भेज दी। पानपाना ने दोहे की पूर्ति में
लिखा था—

‘गोद लिये तुलसी फिर तुलसी सौ सुत दोंय’

दोहे के इस चरण में तुलसी शब्द दो अर्थों का याचक
है। पहला अर्थ प्रसन्नता का द्योतक है और दूसरा गोस्वामीजी
की माता तुलसी का व्यञ्जक। तुलसीदासजी पानपाना की
इस पूर्ति को पढ़कर बड़े प्रसन्न हुए और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा
करने लगे। आमेर (जयपुर) के राजा मानसिंह भी तुलसी-
दासजी के बड़े भक्त थे, यह पढ़ा उनसे भेंट करने आया
करते थे। लोग तुलसीदासजी को बड़ा करामाती समझते थे।
पहले हैं कि हाके चमत्कारों की कथा सुनकर एक बार बादशाह
जहाँगीर ने इन्हें पकड़ बुलाया और उस समय तक न छोड़ा
जब तक इन्होंने उन्हें अगनी कुट्ट करामात न दिखादी।
‘रासपञ्चाव्यायी’ के लेखक नन्ददासजी तथा ‘भक्त माल’ के
रचयिता नाभाजी इनके बड़े मित्र थे।

मीराबाई को उपदेश

मेवाड़ की प्रसिद्ध भगवत् परायणा मीराबाई जब अपने
कुटुम्बियों के अत्यचार से तग आ गई तब उसने एक पद्यात्मक
पत्र लिखकर तुलसीदासजी से पूछा था कि बताइये ऐसी प्रति-
कूल परिस्थिति में मैं क्या करूँ ? मीराबाई लिखती है—

“सति श्री तुलसी गुण दूषण हरण गुसाई ।

धारहि धार प्रणाम करहुँ अब हरहु शोक समुदाइ ॥

घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई ।
 "साधु सग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई ॥
 बाल पने ते मीरा कीन्हों गिरिधरलाल मिताई ।
 सो तो अब छूटत नहिं क्योंहैं लगी लगन बरियाई ॥
 मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन मुखदाई ।
 हमको कहा उचित करिबौ है सो लिखि समुझाई ॥"

मीरा भगवत् भक्ति में इतनी लीन है कि उसे उसके आगे कुछ अच्छा नहीं लगता । राणाजी मीरा की इस वैराग्य वृत्ति से अत्यन्त दुखी हो रहे हैं, वे इस विरति को अपने अपमान का कारण समझते हैं और इसीलिए मीरा के प्राण लेने के लिए अनेक उपाय सोचे जाते हैं, परन्तु परम पिता परमात्मा की दया से उस ईश्वरनिरता अबला का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । अन्त में वह सती साध्वी देवी तग आकर तुलसीदासजी की शरण में आती है, और अपनी सारी कष्ट-कथा उनके आगे रख कर उचित उपदेश चाहती है । गोस्वामीजी भी मीराबाई के हृदय की बात जान कर उसे अपने धुर धर्म पर अचल रहने का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि जो कुटुम्बीजन परमात्मा के भक्त नहीं हैं, उन्हें वैरी समझ कर त्याग देना चाहिए और ईश्वर-चिन्तन में किसी के विरोध की तनिक भी परवा न करनी चाहिए । तुलसीदासजी उपर्युक्त चिट्ठी का उत्तर कैसे सुन्दर शब्दों में देते हैं वह पढ़ने लायक है—

जिन के प्रिय न राम वैदेही ।

तजिप तिन्हें कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥

तात मात आता सुत पति हित इन समान कोउ नार्ही ।

रघुपति विमुख जानि लघु तुन इव तजत न सुरत डेराही ॥

तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन यन्धु भरत महतारी ।
 गुरु बलि तज्यो कन्त व्रज वनितन मे सब मंगलकारी ॥
 नातो नेह राम को मानिय सुहृद सुसेव्य जहाँ लों ।
 अंजन कौन आँखि जो फूटे बहुतै कहो कहीं लो ॥
 तुलसी सोइ सब भाँति आपनो पूज्य प्रानतें प्यारो ।
 जातें होइ सनेह राम सों सोइ मतो हमारो ॥”

कुछ लोगों का कथन है कि मीराबाई तुलसीदास के समय में नहीं हुई, अतएव यह पत्र-व्यवहार मन गढन्त मात्र है, परन्तु प्रसिद्ध ऐसा ही है। जो हो, उपर्युक्त दोनों पदों से कर्त्तव्य बोध की अच्छी शिक्षा मिलती है। एक धमभीरु अबला—भले ही वह मीराबाई हो अथवा और कोई—सबट काल में अपना कर्त्तव्य जानना चाहती है, उत्तर में तुलसीदासजी वही बात बताते हैं जिससे कर्त्तव्य की मर्यादा सुरक्षित रहे और मनुष्य अपने प्राणाधिक धर्म से विचलित न हो। भला! ऐसे अंजन को लेकर कोई क्या करे जो आँखों को फोड़ दे और पलकों को तोड़ दे। वे कुटुम्बी या मित्र मिलापी किस काम के जो भगवद्भक्ति में बाधक सिद्ध हों और व्यर्थ ही कर्त्तव्य पथ से विचलित करने का प्रयत्न करें। ऐसे धर्मविमुख लोगों को त्याग देने में ही भलाई है। वह सोना भाड़ में जाय जिससे नाक छीजे। कैसे ऊँचे विचार और कितनी उत्तम शिक्षा है।

हिन्दी-प्रेम

तुलसीदासजी सस्कृत के बड़े विद्वान् थे, परन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थ भाषा में ही लिखे हैं। इसका कारण यह न था कि वह सस्कृत में कविता करने की योग्यता न रखते थे।

रामचरित-मानस के प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में गोस्वामीजी ने जो श्लोक लिखे हैं वह उनके सस्कृत काव्य-पाण्डित्य के पूरे परिचायक हैं। भाषा में ग्रन्थ लिखने का अर्थ यही था कि उनकी पुस्तकों का अधिकाधिक प्रचार हो और लोग भक्ति-भाषा का नास्तविक अर्थ समझ सकें। एक बार एक पाण्डित ने गोस्वामीजी से पूछा कि आप सस्कृत के इतने बड़े विद्वान् होते हुए गँवारी भाषा (हिन्दी) में क्यों कविता करते हैं ? उस समय तुलसीदासजीने उसे निम्न लिखित उत्तर दिया था—

“का भाषा का सस्कृत प्रेम चाहिए सोंच ।
काम जो आपइ कामरी का लै करै कमाच ॥”

अवसान

जहागीर के समय में महामारी (प्लेग) का प्रबल प्रकोप था, सारे देश में प्रलयकारी हाहाकार मचा हुआ था। तुलसीदासजी ने भी अपनी कवितावली में इस रोग की भयङ्करता का अनेक स्थलों पर विषादपूर्ण वर्णन किया है। वे स्वयम् भी इसी रोग का शिकार बने और काशी में प्राण त्याग कर परमपद को प्राप्त हुए। उन्होंने प्राण त्यागते समय अपने रोग का जो वर्णन किया है और बाढ़ के दर्द तथा बगल की गाँठ की जो पीड़ा बताई है, उससे स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने प्लेग विशाच के चंगुल में फँस कर ही प्राणोत्सर्ग किया था। कहते हैं, गो० तुलसीदासजी ने शरीर छोड़ते समय भी एक दोहा कहा था और वही उनकी अन्तिम कविता है, यह दोहा इस प्रकार है—

“रामनाम जस वरनि कै, भयउ चहत अब मोन ।
तुलसी के मुख दीजिए, अबहीं तुलसी सोन ॥”

तुलसीदासजी की मृत्यु असी घाट पर १६८० विक्रमी में हुई थी, उनके देहावसान के सम्बन्ध में नीचे लिखा दोहा प्रसिद्ध है—

“सवत सोरह सौ असी असी गग के तीर ।
सावन शुक्ल सतमी तुलसी तज्यो शरीर ॥”

ग्रन्थ

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस के अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। नीचे लिखे इनके १२ ग्रन्थ तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। दोहावली, गीतावली, विनयपत्रिका, कवित्त रामायण, रामाष्टा, रामचरितमानस, रामलला नहछू, वरवै रामायण, ज्ञानकीमगल, वैराग्य सन्दीपनी, पावती-मगल, और कृष्ण गीतावली। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त गोस्वामीजी के लिखे दस ग्रन्थ और बनाए जाते हैं, जिनमें से कई तो मिलते नहीं और कई दूसरे ग्रन्थों के अशमात्र हैं। उपर्युक्त बारह ग्रन्थों में क्या विषय है, इसका संकेत रूप से नीचे दिग्दर्शन कराया जाता है—

१-दोहावली—इसमें ५७३ स्तुति दोहे हैं। अधिकतर दोहे उपदेश तथा भगवद्भक्ति से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

२-कवित्त रामायण—इसका दूसरा नाम ‘कवितावली’ है। इसमें कवित्त, सबैया, घनाक्षरी और पदपदी छन्द हैं। कुल छन्द-संख्या ३६७ है। विषय रामायण।

३-पार्वती-मगल—इसमें शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है। छन्द सप्त्या १६८ है।

४-जानकी मंगल—इसमें सीताजी के विवाह की कथा कही गई है। इसमें २१६ छन्द हैं।

५-रामाज्ञा—यह ग्रन्थ शकुन विचारने के लिए बनाया गया है। इसमें उननचास उननचास दोहों के सात अध्याय हैं। विषय रामायण।

६-गीतावली—इस पुस्तक में राग-रागनियों का समावेश है। कथा-प्रसंग रामायण से मिलता जुलता है। इसमें सात काण्ड और ३३० छन्द हैं।

७-कृष्ण-गीतावली—इस ग्रन्थ में कृष्ण-कथा का वर्णन है। कुल मिलाकर ६१ पद हैं।

८-राम-चरित-मानस—‘रामायण’ नाम से तुलसीदासजी का यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

९-घरवै रामायण—इसमें वरवा छन्द में रामचरित लिखा गया है। सात काण्ड और ६६ छन्द हैं।

१० वैराग्य-सन्दीपनी—यह ६२ छन्दों का छोटा सा ग्रन्थ है, इसमें सन्त-महन्तों के लक्षण दिये गये हैं। वैराग्य मुख्य विषय है।

११-रामलला-नहछू—२० सोहर छन्दों का छोटा सा ग्रन्थ है। पूर्वीय प्रान्त में धारात के पूर्व, चौक बैठने के समय नाइन द्वारा नह छूने या महावर देने की प्रथा प्रचलित है, इस छोटी सी पुस्तक में उसी लीला का वर्णन किया गया है।

१२-विनय-पत्रिका—इसमें राग-रागनियों द्वारा देवी-देवताओं के विनय सम्बन्धी पद लिखे गये हैं। इसकी

रचना बड़ी उत्कृष्ट समझी जाती है। इसमें तीनसौ के लगभग पद हैं।

तुलसीदासजी ने अपने सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ रामचरित-मानस का प्रारम्भ सवत् १६३१ की चैत्र शु० ६ को अयोध्या में किया था, इस विषय में उन्होंने लिखा भी है—

“सवत् सोरह सै एकतीसा । करहुँ कथा हरिपद धरि सीसा ॥
नोमी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥”

कहते हैं, तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस की रचना का विचार वचपन से ही अपने मन में स्थिर कर लिया था। जिस समय उन्होंने शूकरसेन (सोरों) में गुरुमुख से राम की आदर्श कथा सुनी तभी से वे उसे ‘भाषायद्ध’ करने की फिक्र में थे। रामायण के प्रारम्भ काल का तो पता चलता है परन्तु उसकी समाप्ति कब और कहा हुई इसे कोई नहीं जानता। मालूम होता है, गोस्वामीजी ने रामायण के विविध काण्डों की रचना विविध स्थानों में रह कर की। वे विरक्त थे, अतएव जहाँ जी चाहता वहाँ ही रह कर अपने सुन्दर काव्य की विमल धारा बहाने लगते थे। रामायण के बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्ध्या, सुन्दर, लङ्का और उत्तर ये सात काण्ड प्रसिद्ध हैं।

अयोध्याकाण्ड

अयोध्या काण्ड जिसके सम्बन्ध में यह पकिया लिखी जा रही है, कदाचित् सब काण्डों से बड़ा है। मगलाचरण, राणा दशरथ द्वारा रामचन्द्र को युवराज पद दिये जाने का विचार, मन्थरा का केकड़ को उल्टी पट्टी पढ़ा कर मगल में अमंगल कराना, केकड़ का कुपित हो कर घेदगे चर मागना, राम-लक्ष्मण और सीता का घन जाना, निषाद से मिलना,

धनवासियों तथा पुरवासियों की भक्ति, सुमन्त्र की वापसी, केवट का पाँव पखारना तथा पार उतारना, प्रयाग पहुँच कर भरद्वाज मुनि से भेंट करना, वाल्मीकिजी के आश्रम में आना, चित्रकूट निवास, सुमन्त्र मन्त्री का रामहीन अयोध्या में लौटना, दशरथ-मरण, भरत का ननिहाल से आना, विलाप करना, अपनी माता को खरी-खोटी सुनाना तथा पिता के शत्रु का सत्कार करना, राजपरिवार सहित भरत का राम से मिलने चित्रकूट जाना, रामचन्द्र से वापस चलने के लिए आग्रह पूर्वक प्रार्थना करना, जनक का रामचन्द्र के पास पहुँचना, रामचन्द्र का सब को समझा-बुझाकर वापस करना, भरत का रामचन्द्र की खड़ाँडों को राजसिंहासन पर रखकर राज-काज सँभालना और स्वयं तपस्वी के वेश में रह कर विशेष उदासीनता पूर्वक जीवन बिताना—इत्यादि बातों का वर्णन अयोध्याकाण्ड में किया गया है। इस काण्ड में प्रायः आठ चौपाइयों पर एक दोहा और पच्चीस चौपाइयों पर एक छन्द तथा स्रोटा का क्रम रखा गया है। एक आघ स्थान पर इसका अपवाद भी हो सकता है।

भाषा

तुलसीदासजी के समकालीन कवियों ने अधिकतर व्रज-भाषा में कविता की है। परन्तु इन्होंने अपनी कविता में अवधी, व्रजभाषा आदि कितनी ही भाषाओं का सहारा लिया है। कहीं वहाँ तो गाँव की भाषा का प्रयोग करने में भी इन्होंने कोई हानि नहीं समझी। इसका कारण यह नहीं है कि तुलसीदासजी व्रजभाषा के परिणत न थे, नहीं, वह तो अपने काव्य को लोकप्रिय और सरलता पूर्वक सबकी समझ में आने लायक बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने इस खिचड़ी भाषा

का प्रयोग किया जिससे रामायण किसी ग्रन्थ विशेष की वस्तु न बन कर हिन्दी भाषी मात्र की चीज कहा सके। गोस्वामीजी का लक्ष्य भाषा के एकसाजीपन की ओर उतना न था जितना कवित्व और भावुकता की ओर। यही कारण है कि उनके रामायणादि ग्रन्थों में शब्दों की तोड़-मरोड़ करने में किसी विशेष पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया। अनुपास या छन्द-रचना के लिए जहाँ जिस शब्द को जिस प्रकार तोड़ने-मरोड़ने की आवश्यकता हुई, वहीं वह उस प्रकार तोड़ मरोड़ दिया गया है। परन्तु मजाल क्या जो यह तोड़ मरोड़ कविता प्यस्विनी की घिमल धारा में बूझा करकट सिद्ध हो सके। वही भाषा सोष्ठव और वही सरसता, वही प्रसादगुण और वही रमणीयता। किसी चौपाई को भी पढ़िये, अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा। अर्थ न समझ सकने पर भी उसकी मधुर ध्वनि कानों में समा जायगी और हृदय में हृष की हिलोर पैदा कर देगी। रामचरित-मानस को संस्कृत महाकाव्य धारमीकि रामायण का अनुवाद बताया जाता है, परन्तु सर्वाश में यह बात ठीक नहीं है। तुलसीदासजी ने उक्त महाकाव्य का अनुवाद भी किया है और अपनी रुचि के अनुसार काव्य, पुराणादि अन्य संस्कृत ग्रन्थों से भी अपेक्षित स्थलों को अनूदित कर दिया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने संस्कृत कवियों के भावों को उ्यों का त्यों रख दिया है और कहीं उनकी उपमाओं तथा रूपकों को ले लिया है।

रामायण की महत्ता

कविता, भाव, रूपक, अलंकार, कथा किसी भी दृष्टि से देखिये रामचरित मानस एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसकी चौपाई पाठक या श्रोता के हृदय को पकड़ कर जकड़ लेती हैं। रामायण जहाँ काव्य का अनुपम ग्रन्थ है वहाँ धर्म और

सदाचार की शिक्षा देने वाला शास्त्र भी है। न जाने इसके द्वारा अब तक कितने मनुष्यों के जीवन-व्रन्म का सुधार हुआ, और कितने लोगों ने इसे अपने उद्धार का साधन समझा। रामचरित-मानस की रचना जिस युग में हुई, वह यवन-प्रधान युग था, मुसलमानों के शासन प्रभाव से आर्य्य सभ्यता और हिन्दू सस्कृति शिथिलता को प्राप्त होती जाती थी। वैदिकधर्म का प्रचार करना, मरल काम न था। अपनी जाति और धर्म की ऐसी मन्दश्रा देख कर गोस्वामीजी को दुःख हुआ और उन्होंने रामचरित-मानस की सृष्टि रची। आदर्श रामचरित्र को लक्ष्य में रखकर रामायण के मिस तुलसीदासजी ने परोक्ष रीति से अपने समय की परिस्थिति की जो नीज आलोचना की है वह तनिक ध्यान देने से ही अच्छी तरह समझ में आ सकती है। रचना-काल से लेकर अब तक रामायण हिन्दुओं के कण्ठ का कण्ठा बनी रही और इसने उनका उपकार भी बहुत किया। डा० प्रियसन्न ने तुलसी-कृत रामायण को हिन्दुओं का 'बाइबिल' बताया है। 'रामचरित मानस' में तुलसीदासजी ने अपने पूर्ववर्ती या सम-सामयिक किसी कवि का नामोल्लेख नहीं किया और न उन्होंने अपने किसी श्रीर-गरीर इष्ट मित्र का नाम आने दिया है। सारी रामायण पढ़ जायें परन्तु उसके पाठ से यह ज्ञात न होगा कि इस ग्रन्थ की रचना उस काल में हुई जब भारत में मुगल साम्राज्य का झण्डा फहरा रहा था और चारों ओर मुसलमानों का ही आतङ्क छाया हुआ था। रामायण के पाठ से यही विदित होना है कि वह ऐसे अनुकूल समय में लिखी गई है जब सारे मसार में भगवान् रामचन्द्र की भक्ति का समुद्र उमड़ रहा था। यह गोस्वामीजी का ही अपूर्व कौशल था कि उन्होंने अपनी कृति पर तत्कालीन

प्रतिकूल परिस्थिति का प्रभाव न पड़ने दिया और न उस पर मुसलमानी असर की छाप लगने दी। ऐसा करना साधारण काम नहीं है। रामचरित-मानस को सरल बनाने में तुलसीदासजी ने पूरा ध्यान रखा है, परन्तु फिर भी उसके अनेक स्थल ऐसे दुरुह हैं कि उनका वास्तविक अर्थ समझने में थड़े थड़े विद्वानों की बुद्धि चक्क ज जाती है। चौपाइयों के अर्थ गाम्भीर्य पर जितना ही अधिक विचार किया जाता है उतनी ही उसमें नवीनता और मौलिकता दिखाई देती है।

तुलसीदासजी रूपकों, उपमाओं और अलंकारों के थड़े प्रेमी थे। रामायण पढ़ने समय पद पद पर आपको उनकी यह विचित्रता दिखाई देगी। वे जिस विषय का रूपक बाधते हैं, कमाज कर देते हैं, जो बात कहते हैं, अनूठे ढंग से कहते हैं। यहाँ तक कि आपने अपने ग्रन्थ का नाम भी काव्य मय ही रखा है। राम चरित-मानस को मानसरोवर मान कर बालकाण्ड में गोस्वामीजी ने जो अद्भुत रूपक बाँधा है यह उन्हीं का भाग है। भारत भूमि और भारत-भाषा का सौभाग्य था जब इस देश में तुलसीदास सरीखे प्रतिभाशाली कवि जन्म ग्रहण कर अपना अपूर्व यश अनन्तकाल तक जीवित रहने के लिए छोड़ जाते थे। किसी ने ठीक कहा है, जिसकी कीर्ति जीवित है उसे मरा हुआ नहीं समझना चाहिए। जिस महाकवि की कविता, आज सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी, सत्सार को धर्म और सदाचार का प्रसाद बांट रही है, असंख्य पाठकों के हृदय को असोम आह्लाद प्रदान कर रही है, भगवान् रामचन्द्र की प्रिय कीर्ति-श्रीमदी को छिटकाने में सहायक हो रही है, यह कभी मर नहीं सकता, सदैव अजर, अमर रहेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

कवि-कीर्तन

दोहा

मोह-महातम तैं जबहिं, सुपथ सुगोध न होत ।

उदय होहिं सूरज सुकवि, चहुँ दिसि करत उदोत ॥

कवि कुल कमल दिगकर ताता । प्रगट कीन्ह यहि धरा विधाता ॥
 राम चरित मानस मनभावन । मुचि सोपान सुरम्य सुशायन ॥
 मउजन करि सब होहिं सुखारी । "बालक, जुग, जरठ, नरनारी" ॥
 रघुवर चरित परम सुखदायक । विश्वविदित सदुबोध विधायक ॥
 भ्रातृ-भक्ति, पति-प्रीति अनूपा । पत्नी प्रेम सरय सुखरूपा ॥
 सबहिं विसद उपदेस सुनाये । ब्रह्म-विवेक सहजु समुभाये ॥
 स्रवण सुखद सुन्दर कविताई । अलङ्कार बहु भाति सुदाई ॥
 सरल शब्द धरनत बहु भाया । मुद्रित होत मन सुनत सुनाया ॥
 मोलिक अति प्रसाद गुन पावन । कवि-कोसल विचित्र सरसावन ॥
 सिखा-सूत जुन को जग माहीं । गायत चारु चौपई नाहीं ॥
 फर महान उपकार गुसाई । परम कृपालु गुरुन की नाई ॥
 सरसुति सुअन राम कह प्यारा । कवि-किरोट सुरधाम सिधारा ॥

पदपदी

धर्मवीर, धनशील सकल गुण-गरिमा सागर ।
 कवि कुल-कमल दिनेश अलङ्कारों का आकर ॥
 राम भक्ति भुवि भजन सूक्ष्मदर्शी सुज्ञानी ।
 पावन पुण्यश्लोक सुकृत सुलभा सुप्रज्ञानी ॥
 जो जाय यसा परलोक में प्रिय दर्शन की आस है ।
 इस आर्यजाति की नाय का खेवा तुलसीदास है ॥

रामायण के पात्र

रामचरित-मानस का महत्त्व सत्सार में इतना अधिक क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तावना के प्रारम्भ में ही दिया गया है। उसी बात को फिर यहाँ दहराते हुए कहना पड़ेगा कि राम-चन्द्र का आदर्श चरित्र और फिर उसके वर्णन करने वाले महाकवि तुलसीदासजी ! यस्य यही दो बातें ऐसी हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ का इतना प्रचार कराया तथा उसे ऐसा महत्त्व दिया।

प्रातः काल राज्याभिषेक होने वाला है, सब समारोह हो चुके हैं, पुर-परिवार में आनन्द मनाया जा रहा है। अवधेश दशरथ की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं है, इतने ही में कुबड़ी की कुटिलता भयङ्कर कूटनीति का रूप धारण कर केई की बुद्धि पर अज्ञान का परदा डालती है और यचनवद्ध पिता अपने प्राण प्यारे पुत्र को धनगमन का आदेश करते हैं—

“तापस वेश विशेष उदासी।

चौदह बरस राम वनवासी ॥”

रघुकुल शिरोमणि राम देश निकाले की आज्ञा सुनते ही तुरन्त वन जाने के लिए तय्यार हो जाते हैं। उनके हृदय में न इससे पूर्व राजतिलक की तय्यारी देख कर आनन्द की गंगा उमड़ी थी और न अब वनवास के समाचार से दुःख की आग धधकने लगी है। राम को न हर्ष है, न विषाद। अगर उनके मन में इस समय कोई बात है तो वह है पिता की आज्ञा का पालन करना और अपने ध्रुव धर्म पर अटल रहना। वन में जा कर रामचन्द्र ने क्या क्या अद्भुत कार्य किये इसका वर्णन दस-बीस पंक्तियों में नहीं किया जा सकता, उसके लिए रामायण का

अभ्ययन अनिवार्य है । परन्तु इस बात को कौन नहीं जानता कि रामचन्द्रजी ने वन में रह कर 'बेसरोसामानी' की हालत में, वह काम किया जिसे घड़े घड़े सत्ताधारी सम्राट भी न कर सके थे । राक्षसराज रावण का वध करना कोई साधारण बात न थी, परन्तु वनवास की हालत में उन्होंने उसे ही कर दिखाया । रामचन्द्र शान्ति और गम्भीरता की मूर्ति थे, उनमें सचाई कूट-कूट कर भरी थी, वे सदैव धर्म की रक्षा में प्रवृत्त रहते थे, धर्म भी उनकी रक्षा करता था । एक और सकल साधन सम्पन्न लक्ष्मण और दूसरी तरफ तापस वेशधारी वन-वन भटकने वाले विपन्न राम । कितना विकट वैषम्य और कैसा प्रतिकूल प्रसंग था । परन्तु राम को इन बातों की क्या चिन्ता थी, वह परिस्थिति के दास नहीं बल्कि उसके निर्माता और उत्पादक थे । परिणाम यह होता है कि विभीषण अपने अन्यायी भाई रावण से असहयोग कर राम का साथ देता है और उनका आजन्म भक्त बन जाता है।

सीता

सती

सती-साक्षी सीता का विमल चरित्र, ससार भर की स्त्रियों के लिए आदर्श और अनुकरणीय है । बहुतेरा समझाया-सुझाया जाता है, वन की भयङ्करता दिखाई जाती है और परिस्थिति की प्रतिकूलता का दिग्दर्शन कराया जाता है, परन्तु सती सीता प्राणपति का साथ कब छोड़ने वाली है, वह ऐसे सकट-काल में महलों में रह कर आनन्द का जीवन व्यतीत करना क्यों पसन्द करने लगी । सीता ने झूठी लोक-लज्जा पर लात मारकर सब से साफ-साफ कह दिया— 'मैं प्राणनाथ के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती । मेरे लिए तो राम के बिना भोग रोग के-समान हो जायगे, भूषण

भार का रूप धारण कर लेंगे और संसार 'यम-यातना' के समान दिखाइ देने लगेंगा ।

‘जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते ।
पिय विन तियहि तरिन ते ताते ॥
जिय विन देह नही विन चारी ।
तैसिअ नाथ ! पुरुष विन नारी ॥’

सीताजी ने रामचन्द्रजी से यह बहस की, वह आप्रह किया कि उनका सारा उपदेश निष्फल हो गया और 'परिहस सोच चलहु यन साथ' ही कहते बना । सचमुच सच्चे पाति-ज्ञ । धर्म में ऐसी ही शक्ति होती है । उस सती साध्वी के सत्याग्रह को टाटने की न राज परिवार में शक्ति थी और न राम में । बात बिलकुल ठीक थी, जब पति देवता चौदह वर्ष तक घोर तपस्या करने के लिए धनवासी बन रहे हैं तब भला एक आदर्श हिन्दू देवी घर में कैसे सुखपूर्वक बैठ सकती है । सीताजी राम के साथ बन जाती हैं और वहाँ के सारे दुखों को सुखपूर्वक सहन करती हैं । इसमें सन्देह नहीं कि जब तक सती-साध्वी सीता का आदर्श मौजूद है तब तक भारतवर्ष बड़े गव के साथ संसार में अपना ऊँचा मस्तक कर सकता है ।

लक्ष्मण

सीता के पश्चात् लक्ष्मण का नम्बर आता है । जिस समय लक्ष्मणजी सुनते हैं कि राम बन जा रहे हैं, उन्हें १४ वर्ष के लिए देश निकाले की आज्ञा मुद् है, उसी समय 'व्याकुल' और 'विलख बदन' होकर दौड़ उठते हैं । शरीर काँप जाता है और आँखों में अश्रुधारा बहने लगती है । राम के चरणों में सिर रख देते हैं और कहते हैं—“हे रघुकुल नाथ ! आप मुझे छोड़ कर

कैसे घन जा सकते हैं । मैं आपके दर्शनों के बिना मुहूर्त मात्र भी जीवित नहीं रह सकता । मैं आपके साथ चलूँगा और अवश्य चलूँगा । माता-पिता किसी को कुछ नहीं जानता, मैंने तो बालकपन से आपही के चरणों में ध्यान लगाया है, अब आप मुझे छोड़ कर कैसे चले जायेंगे ?” रामचन्द्र अपने प्यारे भाई लक्ष्मण के अकृत्रिम अनुराग से विवश हो जाते हैं, और उन्हें साथ ले चलने की अनुमति दे देते हैं । लक्ष्मण ने राम की सेवा कर जिस भ्रातृभाव का प्रशस्त परिचय दिया सत्तार में उसकी उपमा मिलनी कठिन है । लक्ष्मण सदैव सङ्गद्वस्त रहने वाले थे, वे अनीति और अन्याय की शान्ति तथा गम्भीरता पूर्वक उपेक्षा करना न जानते थे । अनोचित्य देखते ही उनका चहुरा तमतमा उठता था और शरीर कापने लग जाता था । धनुषयज्ञ के समय वह एक मिनट को भी राजा जनक की भर्त्सनापूर्ण घापी सहन न कर सके और उन्होंने तुरन्त गरज कर कहा—

“रघुवर्षिन मैं जहाँ कोऊ होई ।

तेहि समाज अस कटि न कोई ॥

+ + +

जो राउर अनुशासन पाऊँ ।

फटुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ ॥”

+ + +

यही नहीं आपको रामायण में अनेक स्थलों पर ऐसी घटनाएँ मिलेंगी कि जहाँ-जहाँ अनोचित्य का अवसर आया है वहाँ वहाँ लक्ष्मण के ओठ फड़कने लगे हैं और वह उस अनीति का सहार करने के लिए कटिबद्ध हो गये हैं । आजकल की परिभाषा में कहें तो कह सकते हैं कि लक्ष्मण 'गरमदल' के

नेता थे, और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि राम को रावणादि के विषय करने में जो सफलता प्राप्त हुई उसका पर्याप्त श्रेय लक्ष्मण को भी अवश्य देना पड़ेगा ।

भरत और शत्रुघ्न

नि सन्देह भरत भी आदर्श माई थे, उन्हें अपनी माता की कुटिल करतूति एक क्षण के लिए भी अच्छी न लगी । वे अपने पूज्य पिता की अन्त्येष्टि किया कर सीधे राम के पास पहुँचे और उन्हें वापस लाने के लिए अत्यन्त प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हो सके । राम की अनुपस्थिति में, तपस्वी काव्येश धारण कर भरत धरोहर की माँति-प्रतिनिधि की हैसियत से, राजकाज संचालन करते रहे । स्वार्थ-त्याग और भ्रातृ-स्नेह का इससे अधिक उल्लान्त उदाहरण और क्या हो सकता है ? भरत की माता केकई ने राम को वनवास दिलाया था, इस लज्जा के कारण भरत के सकोच का ठिकाना न था । जिस समय वे राम से मिलने चित्रकूट गये उस समय मार्ग में निषाद आदि ने सन्देह किया कि, हो न हो, सेना सहित भरत राम का सहार करने जा रहा है, निषाद ही क्या स्वयम् लक्ष्मण को भी यह भ्रम हुआ और वह अपनी उग्र प्रकृति के कारण कहने लगे—

“कुटिल कुबन्धु कुअरसर ताकी ।
जानि राम वनवास एकाकी ॥
वरि कुभन्त्र मन साजि समाजू ।
आए करन अकटक राजू ॥”

इतना ही नहीं कि योया सन्देह ही किया हो प्रत्युत भरत के आने की खबर पाकर लक्ष्मण ने अपने धनुष-बाण भी

समाल लिए और रामचन्द्रजी से कहने लगे कि कहाँ तक हमें इन आपत्तियों को सहन करें—कब तक मन मार कर चुपचाप बैठे रहें, आखिर हमारे हाथ में भी तो धनुष-बाण है।

“कहाँ लगे सहिअ रहिअ मन भारे ।”

नाथ ! साथ धनु हाथ हमारे ॥”

इस समय शान्तिमूर्ति रामचन्द्रजी बड़ी गम्भीरता से लक्ष्मण का समाधान करते हैं और बलपूर्वक कहते हैं—

“सुनहु लखन भल भरत सरीसा ।

विधि प्रपच मई सुना न दीसा ॥

तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई ।

गगन भगन मकु मेघहि मिलई ॥

गोपद जल बूझि घट जोनी ।

सहज छमा वर छाडइ छोनी ॥

मसक फुँक मकु मेर उडई ।

होइ न नृपमद भरतहि भाई ॥”

राम के समझाने पर लक्ष्मण को विश्वास होता है और वह अपने भाई भरत की महत्ता समझते हैं। रामचन्द्र यों तो किसी के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव न रखते थे, परन्तु भरत से तो उन्हें बड़ा ही स्नेह था, भरत की सचाई और विश्वास-पात्रता उनके हृदय में स्थान कर चुकी थी। ऐसे आदर्श भाई भरत की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। शत्रुघ्न भी भरत के समान ही बड़े सीधे और सरल प्रकृति के पुरुष थे।

दशरथ

राजा दशरथ के सम्बन्ध में कुछ लोगों की धारणा है कि उन्होंने अपनी रानी केका का अनुचित प्रस्ताव मानकर अच्छा

नहीं किया । परन्तु राजा पहिले ही से वचन बद्ध थे, उन्हें अपने वचनों की रक्षा का जितना ध्यान था उतना न प्राणों का और न प्राण प्यारे पुत्रों का । राजा दशरथ चाहते तो केकई को उसकी अनुचित माग के कारण आवजना पूर्वक झिड़क घुड़क सकते थे, परन्तु नहीं, उन्हें प्रतिज्ञा भग का बड़ा भय था । वे जानते थे कि अगर इस समय केकई की बात मान कर राम को वनवास और भरत को गज्य नहीं दिया गया तो फिर सत्तार में मुँह दिखाने को जगह न रहेगी और मेरे कारण रघुवश को असत्यता का अपराध लग जायगा । इसीलिए तो उन्होंने कहा था—

“रघुकुल रीति यही चलि आई ।

प्राण जाहिं पर वचन न आई ॥”

सचमुच राजा दशरथ ने प्राणों को तो त्याग दिया परन्तु वचनों को न जाने दिया । अपने प्राण प्यारे पुत्र राम को यज्ञ हृदय करके वन गमन की आज्ञा तो देदी परन्तु केकई के आगे ‘न’ करना स्वीकार न किया । इससे अधिक सत्यघ्न तथा धर्म-भ्रुता और क्या हो सकती है । राजा दशरथ सत्य के सूर्य और धर्म के धाम थे । अगर वह अपने प्राणों के मोह या पुत्रों के प्रेम-रस प्रतिज्ञा भ्रष्ट हो जाते तो आज सत्तार में उनका कोई नाम तक न लेता । रघुवश की सारी मान-मर्यादा मिट्टी में मिल जाती ।

कौशल्या और सुमित्रा

इन दोनों देवियों के धैर्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । दोनों के पुत्र वन को जाते हैं, पति की प्रतिज्ञा चरितार्थ करने के विचार से कौशल्या राम को आशीर्वाद पूर्वक विदा करती है, सजल नयन और धड़कते दिल से कहती है—

“जाओ, वत्स ! जाओ, भवगान् तुम्हारा मंगल करेगा ।” राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा से विदा मागने जाते हैं, उन्हें भय है कि कहीं पुत्र-प्रेममेरी वन-यात्रा में बाधक न हो, कहीं माता सुमित्रा मुझे राम के साथ जाने से रोक न लें । बड़े सकोच के साथ लक्ष्मण अपनी जननी के सम्मुख जाते हैं । सुमित्रा देवी सब कुछ सोच-समझ कर प्रिय पुत्र लक्ष्मण से कहती हैं—

“तात तुम्हारि मातु वैदेही ।
 पिता राम सब भाति सनेही ॥
 अबध तहाँ जहँ राम निगसु ।
 तहइ दियसु जहँ भानु प्रकासु ॥
 जो पे सीय राम वन जाहीं ।
 अबध तुम्हार काज कह्यु नार्हीं ॥”

लक्ष्मण ! जाओ, राम के साथ जाओ और वन में उनकी भक्ति भाव से सेवा करो । जब राम और सीता वनको जा रहे हैं तो अयोध्या में तुम्हारा क्या काम ? तुम्हारे लिए तो वहाँ अयोध्या है जहाँ राम और सीता के चरण स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त होता रहे । अहा ! देवी सुमित्रा ! तुम धन्य हो । तुमने इस समय अपने प्यारे पुत्र लक्ष्मण को वही आदेश या उपदेश दिया जो तुम जैसी वीर विदुषी माता को देना चाहिये था । तुम्हारे त्याग और निस्वार्थ भाव की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । तुम्हारे पुत्र को वनवास की आज्ञा नहीं दी गई थी, तुम चाहती तो उन्हें तपस्वी बनने से रोक सकती थीं, परन्तु तुम ने ऐसा नहीं सोचा बल्कि बड़ी प्रसन्नता से, बिना माये पर सलजट लाये उन्हें वन जाने की आज्ञा दे दी ।

केकई

केकई की कुटिलता को कौन नहीं जानता ? उसने 'घर-फोड़ी' दासो मथरा की बातों में आकर वह अनर्थ किया जिससे उसका कभी उद्धार नहीं हो सकता । हम मानते हैं, और अच्छी तरह जानते हैं कि स्वयं केकई का स्वप्न में भी विचार न था कि राम को वनवास दिया जाता परन्तु उस कुटिला कुबड़ी ने रानी की बुद्धि पर परदा डाल दिया, जिससे यह ऐसा पुकर्म करने को विवश हो गई । परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस भरत के भल के लिए यह सारा पड्यन्त्र रचा गया था उसने रामचन्द्र की विशुद्ध भक्ति माधना में रत रह कर सिंहासन के लोभ को सदा-सर्वदा के लिए ठुकरा दिया, और जो कुछ किया राम की श्रौर ने—उनका एक तुच्छ सेवक बन कर—किया । हम तो समझते हैं, केकई ने राम को वायास दिला कर एक प्रकार से अच्छा ही किया । अगर राम अयोध्या का राजमुकुट धारण कर लेते और वन को न जाते तो निशिचरों का नाश करके घरा पर सद्धर्म की स्थापना कौन करता ? सम्भव है, अवधपति वन कर तथा राज-काज में लिप्त रह कर राम उस समय राक्षसों द्वारा किये गये अत्याचार को नष्ट करने के लिए अवकाश ही न निकाल सकते । इस दृष्टि से केकई और मन्थरा भी धन्यवाद की अधिकारिणी समझी जा सकती हैं ।

सुमन्त्र

राजा वशरथ के विश्वस्त मन्त्री सुमन्त्र सचमुच आदर्श सचिव थे । यह कहने को सचिव थे परन्तु वास्तव में अपनी

अरुत्रिम शुभ चिन्तना और धनिष्टता के कारण रघुवश के श्राग बन गये थे । राज-काज सम्बन्धी कार्य तो सुमन्त्र की सम्मति से किये ही जाते थे, घरेलू मामलों में भी उनकी राय का बड़ा आदर था, वह भी राजा दशरथ को अपना पूज्य और राज-कुमारों को सुहृद समझते थे । वृद्ध सुमन्त्र जिस समय राम को वन में छोड़कर अयोध्या की ओर चलते हैं उस समय उनके प्रेम और कर्त्तव्य-पालन में तुमुल युद्ध होता है, राम का स्नेह एक ओर खींचता है, अयोध्या की शोचनीय अवस्था दूसरी ओर पकड़ कर बुलाती है । सुमन्त्र नयनों में नीर भर कर राम से विदा होते हैं और अयोध्या में आकर सब को सान्त्वना देते हैं । ऐसे आदर्श मन्त्री वस्तुतः अरुघ की शोभा बढ़ाने वाले थे, और उनके कारण रघुराज दशरथ अपने को गौरवशाली समझते थे ।

निषाद

रामायण से निषाद का काय-कलाप अलग नहीं किया जा सकता । वह उसका एक अनिवार्य अंग है । अयोध्या से चल कर सब से पहले राम को निषाद की सेवा की आवश्यकता पड़ती है, जिसे वह बड़े उत्साह तथा प्रेम पूर्णक उनके अपण करता है । निषाद एक जंगली आदमी था, परन्तु वह समझदार बड़ा था । रामचन्द्र की महत्ता और सत्ता भली भाँति पहचानता था । इसीलिए उसने भगवान् राम को न केवल अपनी तुच्छ सहायता ही दी बल्कि वह अपने दल-बल सहित उनके लिए मरने मारने को भी नय्यार हो गया । रामचन्द्रजी ने भी निषाद को नीच या जंगली न समझ कर उसे अपना प्यारा मित्र तथा सच्चा सखा समझा और वे उसकी सेवा-सहायता तथा प्रीति की सदैव सराहना करते रहे । इसका अभिप्राय

यह है कि रामचन्द्र के हृदय में ऊच-नीच के भेदे भावों को विलुप्त स्थान न था, जो उनके साथ भक्ति करता था उससे चे हृदय से हृदय सटा कर मिलते और उसके सब्बे सखा बन जाते थे ।

ऊर्मिला

इस प्रसंग में हम लक्ष्मण की स्त्री ऊर्मिला की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते । इस देवी के स्वार्थ-त्याग की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । प्राणपति लक्ष्मण १४ साल के लिए वियुक्त होते हैं, परन्तु वह इस दुःसह दुःख को पथर का कलेजा करके सह लेती है । इस विषय में सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि महाकवि तुलसीदासजी ने रामचरित मानस में ऊर्मिला का बहुत ही कम उल्लेख किया है यहाँ तक कि राम के घन जाने पर सीता देवी की त्रिकलता और बिह्वनता की तो पराकाष्ठा कर दी है । पर, लक्ष्मण के वियोग पर ऊर्मिला के मुँह से एक शब्द भी नहीं कहलाया गया । एक हिन्दू देवी के लिए यह तो कठिन ही था कि वह अपने प्राणपति के चिरकालीन वियोग पर दो शब्द भी न कहती, या सीताजी की तरह साथ चलने के लिए आग्रह न करती । आखिर पानिग्रथ के गौरव को तो ऊर्मिला भी जानती होगी, वह भी पति प्रेम की महत्ता को समझती होगी परन्तु उसका कहीं उल्लेख नहीं किया गया, न मालूम इसका क्या कारण है ? जो हो, परन्तु हम यहाँ ऊर्मिला के इतने बड़े स्वार्थत्याग की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते । उसने अपने पति से १४ वर्ष तक अलग रह कर वस्तुतः स्वार्थत्याग का एक अनुपम आदर्श सत्कार के सामने उपस्थित किया था ।

वसिष्ठजी

वसिष्ठजी रघुकुल के परम पूज्य थे, उनके परामर्श के बिना कोई कार्य न होने पाता था, उनका आशीर्वाद प्राप्त करके ही सब कार्य किये जाते थे। वसिष्ठजी को किसी की रुचि-अरुचि या प्रसन्नता-अप्रसन्नता की परधान होती थी, वह उसी बात को कहते थे जिसे वह ठीक समझते थे। राजा दशरथ के परलोक पधारने पर वसिष्ठ मुनि ने राज-काज तथा पुर-परिवार की व्यवस्था ठीक रखने के लिए बड़ा उद्योग किया था। राजा दशरथ तथा उनके सब राजकुमार वसिष्ठ मुनि को अपना परम हितैषी और सबसे अधिक माननीय समझते थे।

रामायण के और भी कई पात्र हैं, परन्तु अयोध्याकाण्ड का जितने पात्रों से सम्बन्ध है उन्हीं का संक्षिप्त उल्लेख ऊपर किया गया है। सब तो यह है कि इन सब पात्रों की समष्टि का नाम ही रामायण है। वे एक दूसरे से अद्वल रूप से सम्बद्ध हैं। इन पात्रों में से किसी को भी इधर-उधर करना परम रम्य रामचरित-मानस की मनोहरता को नष्ट-भ्रष्ट कर देना है। देश का सौभाग्य है, जो उसके पास रामायण के रूप में प्राप्त - स्मरणीय राम का आदर्श मौजूद है। हमारे लिए यह चरित्र एक विमल विभूति और सुखदा सम्पत्ति है, जिसके नष्ट होजाने या खोजाने से हमारे हाथ में कुछ भी न रहता और हम ससार के सामने अपनी सम्यक्ता एवम् सस्कृति का कोई उज्ज्वल उदाहरण नहीं रख सकते।

वरान-वैचित्र्य

गोखामी तुलसीदासजी की कविता की विचित्रता जानने के लिए उनके ग्रन्थों का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। दो चार पृष्ठों में उसका महत्त्व वगुन नहीं किया जा सकता। एक-एक चौपाई की व्याख्या के लिए एक-एक स्वतन्त्र निबन्ध की आवश्यकता है। कवि-कौशल समझने के लिए कवि की कृति को गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करना ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। फिर भी यहा अयोध्याकाण्ड से दो चार स्थल उद्धृत किये जाते हैं जिससे पाठकों को पता लग सके कि तुलसीदासजी की कविता कितनी लाजवाब है और उसमें कैसे-कैसे चमत्कार भरे हुए हैं।

“होत प्रात मुनिवेश धरि, जौ न राम बन जाहिं ।
मोर मरन राउर अजस, नृप समुझिअ मन माहिं ॥”

समझे, राजाजी ! अगर ‘कल दिन निकलते निकलते तप-स्थियों का सा वेश धारण कर रामचन्द्र घन को न चले गये तो मैं नहीं बचूंगी और न तुम्हारा यश ससार में बाकी रहेगा। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना। प्रतिज्ञा के पुतले ही बन लो या राम से ही मोह जोड़ लो ! दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं ॥ कैसे कर्कश वाक्य और कितनी कठोर बाणी है। केकई किस निर्मीकता से आदर्श पुत्र राम, को घन ठेलने की ठान चुकी है, इस समय उसके क्रोध का ठिकाना नहीं है।

“अस कहि कुटिल मई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रकट मै सोई । मरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥”

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । मँबर कुबरी धचन प्रचारा ॥
 दाहृत भूप रूप तर मूला । चली विपत्ति वारिधि अनुकूला ॥”

उफ ! पाप-पहाड से निकल कर क्रोध-कल्लोलिनी केकई किस भयकरता से विपत्ति-वारिधि की ओर वही जा रही है, जो सामने आगया उसे ही दाहती चली जाती है, राजा दशरथ जैसे पुराने वृद्धों को तो जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक देना उसके लिए एक साधारण सी बात है । इन शब्दों में क्रोध का कैसा विचित्र चित्र अङ्कित किया गया है । मालूम होता है, केकई के काले दिल में एक तबाहकुन तूफान उठ रहा है जो शान्त न किया गया तो वृद्ध, पर्वत, पुर-परिवार, नदी नाले सबका सब संहार कर देगा और ससार को सुख की नींद न सोने देना ।

X X X X X

“व्याकुल राउ सिधिल सवगाता । करिनि कलपतरुमनहुँ निपाता ॥
 कठ सुख मुद आव न घानी । जनु पाठीन दीन बिन पानी ॥
 राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिन पख बिहग बेहालू ॥
 बिबरन भयेउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तर तालू ॥
 माये हाथ मूँदि दोउ लोचन । तनुधरिसोच लागजनुसोचन ॥”

। , आह ! तुलसीदासजी ने बेवसी और व्याकुलता का चित्र खींच दिया है । दशरथ की कैसी दयनीय दशा है, राम-धनवास का मतालवा सुन कर बे किस तरह बेहाल होगये हैं । गला सूख गया है, मुँह से आवाज नहीं निकलती, जलहीन मीन की तरह तड़प रहे हैं । ऐसी करुणोत्पादक दशा देख कर, पत्थर का कलेजा भी पिघल जाता है, परन्तु कूर केकई के हृदय में दयालुता के भाव उदय नहीं होते । इससे अधिक सगदिली और क्या हो सकती है ?

X X X X X

“मन मुसुकाइ भानुकुल भानू । राम सहज आनन्द निधानू ॥
 बोलै घचन विगत सब दूषन । मृदु मजुल जनु घाग विभूषन ॥
 सुन जननी सोई सुत बडभागी । जो पितु मातु घचन अनुरागी ॥
 तनय मातु पित तोपनिहारा । दुर्लभ जननि सकल ससारा ॥
 भरन प्रान प्रिय पावहिं राजू । विधि सबविधि मोहि सनमुख आजू ॥
 जो न जाउँ घन पेसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा ॥”

अहा ! गम्भीरता तथा घोरता की पराकाष्ठा होगई, राम की शान्तिशीलता ने केकई के उत्तम क्रोधानल पर ठंडा पानी छिड़क दिया । वे प्रसन्न मन मुसुकरा कर कहने लगे—माताजी ! भला घन-यात्रा भी कोई कठिन बात है, माता-पिता की प्रसन्नता के लिए तो मैं बड़े से बड़ा सकट सहने को तैयार हू । भाई भरत राजसिंहासनासीन हों, इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या बात हो सकती है ? एक ओर केकई क्रोध से भुन रही है, दूसरी ओर अवधेश मूर्छित अवस्था में धरती पर पड़े अन्तिम श्वास ले रहे हैं, उधर राजतिलक के बदले घनवास की आशा दी जाती है, परन्तु ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी राम के मुँह से वही गम्भीरता पूर्ण वाक्य निकलते हैं जिनकी उनसे आशा की जा सकती थी । कैसा सुन्दर चरित्र चित्रण और कितना उत्कृष्ट कवि-कौशल है । शान्त रस की प्रत्यक्ष प्रतिमा सामने लाकर खड़ी करदी है ।

× × × × ×

“बार बार मुख धुम्बति माता । मयन नेह जल, पुलकित गाता ॥
 गोद राखि पुनि हृदय लगाए । अवनत प्रेमरस पयद सुहाए ॥
 प्रेम प्रमोद न कहूँ कहिं जाई । रक घनद पदधी जनु पाई ॥
 सात जाउँ बलि बेगि महाह । जो मन भाब मधुर कहूँ आह ॥
 पितु समीप जब जायेहु मैया । मै बडि बार जाइ बलि मैया ॥”

वात्सल्य का कैसा सुन्दर वर्णन है। इन चौपाइयों के एक एक श्रृंखला से पुत्रके प्रति माता का सहज स्नेह टपका पड़ता है। पुत्र का चुम्बन लेकर उसे गोदमें बैठा लेना कैसा स्वाभाविक है। 'मैया' पर 'मैया' की 'बलैया' ने तो कमाल ही कर दिया है। घेटा ! पहले थोड़ा बहुत खालो, पीछे कहीं जाना-आना। बड़ी देर होगई है, मैं तुम्हें निरपहार न जाने दूँगी। सचमुच गोस्वामीजी ने यहा कविता देवी के पयोदों से प्रेम रस की नदी बहादी है। मातृत्व का चास चित्र खींच कर पाठकों के सामने रख दिया है।

X X X X

"तात जाउँ बलि कीन्हैउ नीका। पितु आयसु सब धरम कटीका॥
जौ केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जनि बडि माता॥
जौ पितु मातु कहैउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥"

राम के वनवास का हाल सुनते ही कौशल्या मन्न रह जाती हैं, परन्तु अपने धर्म से विचलित नहीं होतीं। वह बड़ी धीरता से कहती हैं—राम ! जाओ, अवश्य वन जाओ, तुम्हें अपने पिता की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। परन्तु एक बात अवश्य है, माता का पद पिता से बड़ा होता है, सो अगर तुम्हें केवल पिता ने ही वनवास दिया है और माता केई ने कुछ नहीं कहा तो तुम ऐसी अवस्था में घर रह सकते हो। क्योंकि मा का अधिकार बाप से कहीं अधिक है। कैसा सुन्दर भाव है। सपत्नियों के परस्पर अभिन्न सोद्धार्य का कितना विचित्र चित्रण है। कौशल्या अपने और केई के बीच किसी प्रकार का अन्तर ही नहीं समझतीं। वह ऐसी अवस्था में भी राम को केई का प्यारा पुत्र कहकर ही संकेत करती हैं और उसकी आज्ञा होने पर सहर्ष वनयात्रा की अनुमति दे देती हैं।

X X X X

‘काहु न कोउ सुख दुखकर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥
जोग वियोग भोग मल मन्दा । हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा ॥
जनम मरन जहँ लगि जग जालू । सपति विपति परम श्रव कालू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मनमार्ही । मोह मूल परमारथ नार्ही ॥
एहि जग जामिनि जगहि जोगी । परमारथी प्रपच वियोगी ॥
जानिअ तयहि जीव जग जागा । जव सब त्रिपय विलास विरागा ॥
होइ विवेक मोह भ्रम भागा । तव रघुनाथ चरन अनुरागा ॥”

आधी रात्रि से अधिक समय हो गया है, राम तथा सीता शयन कर रहे हैं। लक्ष्मण और निपाद पहरे पर हैं। राज-कुमारों की ऐसी अपर्या देख निपाद को विपाद होता है, उस समय लक्ष्मणजी के मुँह से गोस्वामीजी, रूपर की पक्तियों में जिस सुन्दरता से परमार्थ का तत्त्व बणन कराते हैं, वह उन्हीं का भाग है। तुलसीदासजी ने इन गिने-बुने शब्दों में मनुष्य-जीवन के अन्तिम उद्देश्य का सार पिचोड कर रख दिया है। सासारिक मोह माया से पृथक् रह कर परमाराध्य के चिन्तन की कैसी अनमोल शिखा दी है। हृदय की शान्ति के लिए इससे अधिक उत्तम उपदेश और क्या हो सकता है। सचमुच गागर में सागर भर देना इसी को कहते हैं।

×

×

×

×

‘मागी नात्र न केवट आना । कहइ तुम्हार मरम मैं जाना ॥
घरन कमल रज यह सब कहई । मानुष करनि मूरि कछु अइई ॥
छुअन सिला भइ नारि सुहाइ । पाहन तैं न काठ कठिनारै ॥
तरनिउँ मुनि घरनी होइ जाइ । वाट परइ मोरि नाव उडाइ ॥”

नात्र में पैठा कर उतारने से पूर्व भक्त केवट राम के चरण-फल्लों को पखारना चाहता है, उन्हें विधिवत् स्पर्श करने के लिए उत्सुक है। अपनी इस अभिलाषा को स्पष्ट प्रकट न करके

दूसरे ढग से जाहिर करता है। प्रभो ! आप न मालूम किस-किस को तारते आये हैं, कहीं आपकी चरण-धूलि से यह नाव भी मुनि-पत्नी (अहल्या) बन गई तो मेरी जीविका का साधन ही नष्ट हो जायगा। इसलिए पहले आप अपने पावों को धो लेने दीजिये, जिससे मेरा भ्रम जाता रहे। चरण स्पर्श करने का कैसा जयदस्त कारण है, भक्ति-भाव से भरा हुआ कितना सुन्दर विनोद है। इसके लिए कवि-कौशल की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

× × × ×

केवट की भक्ति-रसमयी विनोदपूर्ण बातें सुन कर रामचन्द्रजी हँस पड़ते हैं और उसका आशय समझ कर कहते हैं—“सोइ कर जेहि तब नाव न जाई” अरे भाई ! वही काम करो जिससे तुम्हारी नाव न जाती रहे। कैसी स्वभावोक्ति और कितनी सादगी है। रामचन्द्रजी के इस कथन से उनके हृदय की उदारता और विशालता प्रकट होती है, और यह अच्छी तरह जाना जा सकता है कि वह अपने भक्तों की प्रसन्नता के लिए उनकी प्रार्थना को किस प्रकार स्वीकार कर लेते थे।

× × × ×

“जासु नाम सुमिरत एक वारा । उतरहि नर भगसिन्धु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा । जेहि जगु किए तिहुँ पगहुँ ते धोरा॥”

भाई, समय पड़े की बात है, और क्या कहा जाय ? जिन रामचन्द्र के नाम के स्मरण मात्र से लोग अपार ससार सागर को पार कर जाते हैं वही आज जरा सी नदी उतरने के लिए साधारण केवट का अहसान ले रहे हैं—मल्लाह की पुरामद कर रहे हैं। देखा पाठको, यहाँ गोस्वामीजी ने कैसा निचित्र व्यंग्य किया है, कितनी मीठी चुटकी ली है। जिसने जगत् को

अपने तीन पगों से भी छोटा कर दिया उससे यह नदी नहीं लाधी जाती ! किन्ने आश्चर्य की बात है ! इसी बात को गोस्वामीजी अपनी स्वभावसिद्ध कविता में व्यंग्य रूप से कह रहे हैं ।

X X X X

“कोटि मनोज लजायनि हारे । सुमुपि कहु को आहि तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मज्जुल यानी । सपुची सिय मन महँ मुसयानी ॥
तिनहिं विलोकि विलोकति घरनी । दुहुँ सकोच सपुचति घरघरनी ॥”

X X X X

“सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नाम लपन लघु देवर मोरे ॥
घटुनि बदन बिधु अचल ढाकी । पिपतन चितइ भौंइ करि बाँकी ॥
खजन मज्जु तिरीछे नैननि । निजपति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ॥”

वनवासिनी स्त्रियों ने “कोटि मनोज लजायनि हारे” सीताजी के साथियों की पूछगछ क्या की, उन्हें एक अद्भुत असमजस में डाल दिया । क्या बतावें क्या न बतावें, कुछ समझ में नहीं आता । सीताजी ने ‘सहज सुभाय सुभग तन गोरे’ ‘लघुमन’ से तो अपना सम्बन्ध बता दिया अब ‘साँघले सलोने राम’ को क्या कहें ? सकोच कुछ कहने ही नहीं देता । अन्त में शर्म के मारे सीताजी ने अपना चन्द्रानन चादर से ढाँप लिया और तिरछी आँखों का इशारा करके मूक भाषा में कहने लगीं कि जिनके सम्बन्ध में सकोचशीलता कुछ नहीं कहने देती, वे मेरे प्राणनाथ हैं । कैसी सुन्दर भाव भगी और कितना उत्कृष्ट कवित्व है । सीताजी की सकोचशीलता को तुलसीदासजी ने किस विचित्रता से अंकित किया है । कभी वह राम की ओर देखती हैं और कभी घरणी की तरफ टकटकी

लगाती हैं। एक और लज्जा का प्रश्न है दूसरी तरफ वन-वासिनियों का तकाजा। अन्त में सीताजी अपने 'तिरीछे नयनों' और 'बाकी सयनों' की सहायता से दोनों काम साधती हैं। पछुने वाली स्त्रियों को उत्तर भी मिल जाता है और मुह से कुछ कहना भी नहीं पड़ता। ओह 'तुलसीदासजी के इस कमाल का कुछ ठिकाना है।

× × × ×

“आगे राम लषन घने पाउँ । तापस घेप विराजत काछैं ॥
उभय बीच सिय सोहनि केने । ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥
बहुरि कहों छवि जसि मन बसई । जन मधु मदन मध्य रति लसई ॥
उपमा बहुरि कहा जिअ जोही । जनुबुध विधुविच रोहिनि सोही ॥”

राम और लक्ष्मण के बीच में सीता उस प्रकार हैं जिस प्रकार ब्रह्म और जीव के मध्य माया, ऋतुराज वसन्त और कामदेव के बीच में रति या बुद्ध और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी। उपमा देने में तो, तुलसीदासजी बड़े ही निपुण थे। रूपक बाँधना और फचिता कामिनी के फलित कलेवर को अलंकारों से अलंकृत कर देना तो उनके घाए हाथ का खेल था।

× × × ×

“छर सिघार बोलहिं प्रतिफूला । सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता धन बागा । नगर त्रिसेवि भयावन लागा ॥
खग मृग हय गय जाहि न जोए । राम वियोग कुरोग विगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी । मनहुँ सबन्हि सब सम्पति हारी ॥
घाट वाट नहि जाहि निहारी । जनु पुर दुहुँदिसि लागि दवारी ॥”

इन चौपाइयों में तुलसीदासजी ने अयोध्या की भयङ्करता का दुर्दृश्य दिखलाया है। एक तो राम का वन-गमन उस पर राजा दशरथ की परलोक-यात्रा ऐसी दशा में नगर के शोक का क्या ठिकाना है। नर-नारी ही नहीं पशु पक्षी, वन वृक्ष और सरिता

सरोवर तक शोक से विकल-विद्वज्ज हो रहे हैं, दरो-दीवारों पर भी मुद्री छड़ी हुई है। किसी की ओर देखा नहीं जाता। शहर वियोग-बहि से भस्मीभूत हो रहा है। कहा का आनन्द और कैसा उत्साह !

× × × × ×
 “वन प्रदेश मुनिवास घनेरे । जनु पुर, नगर गाड गन लेरे
 त्रिपुल त्रिचित्र विहंग मृग नाना । प्रजा समाज न जाइ बधाना ।
 खगहा करि हरि वाग वराहा । देखि महिष वृष साज सराहा ।
 बयरु विहाय चरहि एक सगा । जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरगा ।
 भरुना भरहि मत्त गज गाजहि । मनुह निसान विविध विधि बाजहि ।
 चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजल मजु मराल मुदित मन ।
 बेलि बिदप तुन सफल सफूला । सब समाज मुद मगलमूला ॥”

ऊपर की पक्तियों को पढ़ते ही तपोनिधि मुनियों के आश्रमों का चित्र आश्रमों के सामने अंकित हो जाता है। सरोवरों में ‘मजु मराल’ ‘कूजने’ लगते हैं, भरनों की झडी से आनन्द की लड़ी लग जाती है। मालूम होता है, अत्र ससार में वैर-विरोध का नाम भी नहीं रहा, दुनिया से जातिगत द्वेष भाव उठ गया। सावधान ! यह तपस्वियों का आश्रम है, यहा शेर-बकरी एक घाट पानी पी रहे हैं, नकुल और मुजग साथ साथ लिपटे पड़े हैं। हाथियों का मद उतर गया है और प्रेम पीचूप की वर्षा तथा सद्भाव की भरमार के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता। तुलसीदासजी ने तपस्वियों के आश्रम का कैसा सुन्दर शब्द चित्र ढींचा है, बियावान वन में प्रेम और अहिंसा की मजुल मूर्ति किस चातुर्य से स्थापित कर दी है। प्राणिमात्र के अभेद भाव और ऐक्य का वर्णन इससे अच्छा और क्या किया जा सकता है।

‘चरन पीठ करना निधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ।
 सपुट भरत सनेह रतन के । आखर जुग जनु जीव जतन के ॥
 फुल कपाट कर कुसल करम के । विमल नयन सेवा सुधरम के ॥’

रामचन्द्र ने भरत जी को अपनी पादुका क्या दे दीं उनका मनोरथ ही सफल कर दिया । ओहो ! दोनों खडाऊ हैं, या प्रजा के प्राणों के पहरेदार हैं, भरत के प्रेम रूपी रत्न को सुरक्षित रखने के लिए डिब्बे हैं या भरत के जीवन की रक्षा के लिए ‘रक्षार’ और ‘मरार’ रूपी दो अक्षर हैं । नहीं नहीं, ये बातें व्यर्थ हैं, राम की इन दोनों पादुकाओं को सूयधर के क़ियाड या शुभ कर्मों के लिए हाथ रूप समझना चाहिये इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं है । कैसा कवि-कौशल है । महा-कवि तुलसीदास ने उत्प्रेक्षा का प्रभुत पिला कर उन काठ की निर्जीव खडाऊओं में कैसा जीवन डाल दिया है । साधारण लकड़ी की बनी वस्तु को भक्ति की भावना दे कर कितना रुचा बना दिया है । इसे सच्ची कविता का अद्भुत चमत्कार न कहें तो क्या कहें ।

अलङ्कार निर्देश

कविता-रामिनी के कलेवर को सुसज्जित करने के लिए अलङ्कारों की भी आवश्यकता होती है, परन्तु यह अलङ्कार उसी समय अच्छे मालूम होते हैं जब कविता का कलेवर सुन्दर, सुडौल और सुहावना हो । जिस प्रकार लगड़ी-लुली पुरुषा स्त्री के शरीर पर घटुभूषण वस्त्राभूषण शोभा नहीं पाते उसी तरह नीरस, भावहीन और चमत्कार शून्य कविता को अलङ्कारों की आभा उत्कृष्ट नहीं बना सकती । किसी के शव को आभूषणों से कितना ही अलङ्कृत क्यों न कर दीजिए परन्तु उसका परिणाम सदैव ही विपादपूर्ण होगा । गो० तुलसीदासजी के राम-

चरित-भानस में अलङ्कारों की कमी नहीं है, पद-पद पर उनकी चमक-दमक और मधुर ध्वनि आनन्द प्रदान करती रहती है। परन्तु उन्होंने अलङ्कारों को ही सब कुछ नहीं समझा, जहाँ जो अलङ्कार अपनी इच्छा से आगया वहाँ उसे स्थान दे दिया, जयरदस्ती पकड़ कर बिठाने की कोशिश नहीं की, उसके कारण कविता-कामिनी के कलिन कलेवर को टेढ़ा तिरछा नहीं होने दिया। प्रतिभाशाली स्वभावसिद्ध कवि को जो करना चाहिय था वही गोरगामीभी ने भी किया है। अयोध्याकाण्ड में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, लोकोक्ति, यकोक्ति आदि की कमी नहीं है। पाठकों के मनोविनोदार्थ हम यहाँ अलङ्कारों के दो चार उदाहरण देना आवश्यक समझते हैं। इसी प्रकार के सैकड़ों अलङ्कार रामायण में मिलेंगे। जो थोड़े से प्रयत्न से ही अच्छी तरह पहचाने जा सकते हैं।

‘विपति वीजु वर्षा ऋतु चेरी। भुर भइ कुमति कैकई केरी ॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरसहिं सुखवारी ॥’

(सम अनेद रूपक)

+ + + +
सुनहिं राज रामहिं बनवासू। देहु, लेहु सब सचति हुलासू ॥

(परिवृत अलङ्कार)

+ + + ×
भूप मनोरथ सुभग बन, सुख सुविहग समाज।
मिल्लिनि जिमि छाडन चहत, वचन भयकर वाज ॥

(रूपकाङ्गकार)

+ + + +

राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
(वक्रोक्ति अलंकार)

+ + + +
राम चले वन भान न जाहीं । केहि सुख लागि रहत तन भाहीं ॥
(विशेषोक्ति अलंकार)

+ + + +
राम दरस हित नेम प्रत, लगे करन नर-नारि ।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि ॥
(उत्प्रेषालंकार)

+ + + +
रि कुरूप विधि परवस कीन्हा । बवा सो लुनिअ लहिअ जौ दीन्हा
(लोकोक्ति)

+ + + +
कहने का अभिप्राय यह है कि तुलसीदासजी भावों के भुवन, अनुभासों के आचाय, रूपकों के राजा और रसों के समुद्र थे । सचमुच उन्होंने कविता-कामिनी के कलित कलेश्वर को आभापूर्ण अलङ्कारों से अलंकृत कर भव्य भावों की भावना-पूर्वक रसों के सुन्दर सरोवर में स्नान करा दिया है । यह जिस बात को कहते हैं, अजीब दम से कहते हैं, इस तरह बयान करते हैं कि उनके अक्षर-अक्षर से काव्य-कलाधर की समुज्ज्वल ज्योति जगमगाने लगती है । रूपकों से अयोध्याकाण्ड भरा हुआ है, उपमाओं और उत्प्रेषाओं की उसमें भरमार है । कथा-प्रसंग को छोड़ कर तुलसीदासजी की केवल कविता का गौरव दिखाने के लिए ही स्वतन्त्र पोये लिखे जाने की आवश्यकता है । इस प्रस्तावना के इने-गिने दस-पाँच पृष्ठों पर रामायण की महिमा का वर्णन करना सूरज को दीपक दिखा कर बताना है । इस महाकाव्य का आनन्द तो उसी समय प्राप्त हो सकता है

अथ सहृदय पाठक रामचरित मानस में मज्जन कर उसमें लीन हो जायँ, अर्थों को विचारें, भावों को समझें, कवित्व को पहिचानें और कवि की प्रतिभा तथा कवित्व शक्ति का आदर करें। हमें किसी कवि का अध्ययन कविता के सब अंगों को सामने रख कर करना चाहिये। तुलसीदासजी बड़े उत्कृष्ट कवि हैं, उनके जिस काव्य को पढ़िये उसी में आनन्द आता है। यहाँ केवल अयोध्याकाण्ड के सम्बन्ध में दो चार बातें लिख दी गई हैं। आशा है, लेखक का यह तुच्छ प्रयास पाठकों के हृदयों में, तुलसी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में कुछ सहायक होगा।

अयोध्याकाण्ड का मूल प्रायः 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा सम्पादित रामचरित-मानस के अनुसार ही रखा गया है। साथ ही और भी कई पुराने पाठों से भी उसका मिलान कर लिया है, किन्तु विशेषता सभा के मूल को ही दी गई है। इस सस्करण में दुरुह और दुर्बोध स्थलों पर टिप्पनियाँ भी दे दी हैं और इस बात की पूरी कोशिश की गई है कि विद्यार्थियों को तुलसीदासजी के क्लृप्त भावों को समझने में कठिनाई न हो। कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये हैं और कथा प्रसंगों की व्याख्या कर दी गई है। अन्त में अयोध्याकाण्ड में आठ हुई कुछ कहावतों का उल्लेख है। जहाँ तक हो सका है, छात्रों को सुविधा करने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी मनुष्य से त्रुटियाँ रह जाना अस्वाभाविक नहीं है। यदि पाठकों ने इस पुस्तक को पसन्द किया तो हम अपना धर्म सफल समझेंगे।

भागसा
रामनवमी, १३५७ वि० }

हरिशङ्कर शर्मा

रामचरित-मानस

द्वितीय सोपान

अयोध्याकाण्ड

वामाङ्गे च विभाति भूधरमुता देवापगा मस्तपे
नाने बालविधुर्गले च गरल यम्योरमि व्यानराद् ॥
मोऽय भूतिविभूषण सुरघर मर्षाधिप मर्षदा
शर्व सर्पगत गिरि गशिनिम भीशपर पातु माम् ॥१॥

प्रसन्नतां या न गताभिपेक्षतन्मया न मल्लौ यनवामदुर्गरा ।
मुष्याम्युजग्री रनुनन्दनम् मे मगऽस्तु सा मञ्जुलमद्वलप्रदा ॥२॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्ग सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ गढामायकचारुचाप नमामि राम रघुवशाशयम् ॥३॥

दा०-श्रीगुरु घरन मरोज-रज, निच मन-मुषुर सुधारि ।

घरनउँ रघुनर विमल-जमु, जो ढायक फल चारि ॥१॥

जब ते राम न्याहि घर आये । नित नर मगल मोद घषाये ॥
सुवन-चारिदम भूधर भारी । मुकृत-मेष धरपहिं सुग-धारी ॥
रिधिसिधि-मपति-नदी सुहाई । उमगि अवध अरुधि फौं आई ॥
मनिगन-सुर-नर-नारि मुजाती । सुचि-अमोल-सुन्दर सन भौंती ॥
फहि न जाइ फट्टु नगर विभूती । जनु एतनिय निरचि करतूती ॥
मब त्रिधि सन पुर लोश सुराारी । रामचन्द-सुग-चन्द निहारी ॥
मुन्ति मातु सघ सखी सहेली । फलित विलोकि मनोरथ बेली ॥
राम रूप गुन मौल मुभाउ । प्रमुदित होहि देखि सुनि राऊ ॥

दो -सब के उर अभिलाप अस कहहि मनाइ महेसु ।

आपु अछत जुवराजपद, रामहि देहि नरेसु ॥२॥

एक समय सत्र सहित समाजा । राज सभा रघुराज विराजा ॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू । राम सुजस मुनि अतिहि उद्याहू ॥
नृप सत्र रहहि कृपा अभिलारे । लोकरुप रहहि प्रीति रस राखे ॥
त्रिभुवन तीन काल जग जाही । मृरि-भाग दसरथ सम नाहा ॥
मंगलमूल रामसुत जासू । जो कछु कहिय थोरसनु तासू ॥
राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा । वदन तिलोकि मुकुट सम फीन्हा ॥
छवन समीप भए सित बेसा । मनहुँ जरठपन अस उपवेशा ॥
नृप जुवराज राम कहँ देह । जीवन-जनम लाहु किन लेहू ॥

दो०-यह विचार उर आनि नृप, सुनि सुअवसर पाइ ।

प्रेमपुलकि नन मुदित मन, गुरुहि सुनायव जाइ ॥३॥

कहेउ भुआल सुनिय मुनिनायक । भये राम सब निधिसत्र लायक ॥
सेनक सचिव सकल पुरवासी । जे हमरे अरि मित्र उदासी ॥
सत्रहि राम प्रिय जेहि निधि मोही । प्रभु अर्सास जनु तनु धरि सोही ॥
विप्र सहित परिवार गुसाई । करहि छोह सब रउरहि नाई ॥
जे गुरु चरन रेनु मित्र बरहीं । ते जनु सकल विभव बस करहीं ॥
नोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे । सत्र पायेउँ प्रभु पद रज पूजे ॥
अन अभिलाप एक मन मोरे । पूजिहि नाथ अनुग्रह सोरे ॥
मुनि प्रसन्न लखि सहजसनेह । कहेउ नरेसु रजायसु देह ॥

दो०-राजन राठर नाम जसु सब अभिमतदातार ।

फल अनुगामी महिष मनि, मन अभिलाप तुम्हार ॥४॥

मय विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोलैउ राउ रहसि मृदुवानी ॥
नाथ राम करियहि जुवराजू । कहिय कृपाकरि करिय समाजू ॥
मोहि अछत यहु होइ उद्याहू । सहहि लोग सब लोचन-लाहू ॥
प्रभु प्रभाद मित्र सपइ नियाही । यह लालसा एक मन माही ॥

पुनि न सोय तनु रहट कि जाऊ । जेहि न होइ पाव्ये पद्धिताऊ ॥
 सुनि मुनि दशरथ-वचन सुहाय । भगल-मोद मूल मन भाए ॥
 सुनु नृप जासु प्रियुग पद्धिताही । जासु भजन विन जरनि न जाही ॥
 भयउ तुम्हार तनय मोद स्वामी । राम पुनीत प्रेम-प्रनुगामी ॥

दो०-वेगि निलनु न करिअ नृप, साजिअ मयट समाजु ।

सुदिन सुमाल तगहिं जय, राम होहि जुनराजु ॥१॥
 मुदित महीपति मन्दिर आए । सेवक सचिव सुमन बुलाए ॥
 कहि जयजीय सोस तिन्ह नाए । भूप सुमगल वचन सुनाए ॥
 प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू । रामहिं राय देहु जुनराजू ॥
 जौ पचहि मत लागइ नीला । करहु हरपि हिय रामहिं टीका ॥
 मत्री मुदित सुनत प्रिय-वानी । अभिमत विरय परेउ जनु पानी ॥
 विनती सचिव करहिं करजोरी । जिप्रहु जगतपति वरस करोरीनी ॥
 जग-भगल भल काजु निचारा । वेगिअ नाथ न लाइय वारा ॥
 नृपहि मोद मुनि सचिव सुभासा । वढत बौड जनु लही सुसासा ॥

दो०-कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आर्यमु होइ ॥

राम राज अभिपेन हित, वेगि करहु सोइ सोइ ॥६॥

हरपि मुनीस कहेउ मृदुवानी । आनहु सकल लोभ होइ ॥
 औपध मूल फल फल पाना । कहे नाम गनि मंगल नाना ॥
 चामर चरम बसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगुनित-जाती ॥
 मनिगत मंगलनस्तु अनेका । जौ जगु जोग भूप अभिपेकी ॥
 वेद विदित कहि सकल विधाना । कहउ रचहु पुर विविध विताना ॥
 सफल रसाल पुगल कर । रोमहु बोधिन पुर चहु फरा ॥
 रचहु मजु मनि चौकई चारु । कहहु वनारन वेगि वजारु ॥
 पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा । सब विधि करहु भूमिसुर सेवा ॥

दो०-धनुज-पता तोरन-कलस सजहु तुझा रथ नाग ।
 सिद्धाति मुनिवर-वचन सुननि नृपनिज काजहु लाग ॥१॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा । मो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हा ॥
 विप्र साधु सुर पूजत राजा । करत रामहित मगलकाजा ॥
 सुनत राम अभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवध बधावा ॥
 राम-सीय तन सगुन जनाए । फरकहि मगल अग-सुहाए ॥
 पुलकि सप्रेम परसपर कह्यो । भरत आगमन सूचक अह्यो ॥
 अये बहुत दिन अति अवसेरी । सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥
 भरत सरिस प्रिय को जगमाहीं । इहइ मगुन फल दूसर नाहीं ॥
 रामहि बधु सोच दिनराती । अहन्नि कमठ हृदय जेहि भाँती ॥
 दो०-एहि अवसर मगल परम, सुन रहसेउ रनिषासु ।

सोभत लखि विधु बढत जनु, बारिधि बीच निलासु ॥८॥
 प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए । भूपन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥
 प्रेम-पुलकि तन-मन अनुरागी । मगल कलस सजन सब लागी ॥
 चौकट चार मुमित्रा पूरे । मनि मय त्रिविध-भाँति अति रूरे ॥
 आनंद मगन राम-महतारी । दिए दान बहु विप्र हँकारी ॥
 पूजी ग्रामदेवि सुर-नागा । कहेंउ बहोरि देन बलिभागा ॥
 जेहि विधि होइ राम कल्याण । देहु दया करि सो बरदान ॥
 गावहि मगल कोकिल बयनी । निधु उदनी मृग सावक नयनी ॥
 दो०-राम राज अभिषेक सुनि, हिय हरये नर-नारि ।

लगे सुमगल सजन सन, विधि अनुकूल विचारि ॥९॥
 तब नरनाह बसिष्ठ बुलाये । राम धाम सिरस देन पठाये ॥
 गुरु आगमन सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नायेउ माथा ॥
 सादर अरघ देइ घर आने । सोरह-भाँति पूजि सनमाने ॥
 गहे चरन सिय-सहित बहोरी । बोले राम कमल-कर जोरी ॥
 सेवक-सदन स्वामि आगमनू । मगल-भूल अमगल-दमनू ॥
 तदपि उचित जन बोलि सप्रीती । पठइअ काज नाथ अस नीती ॥
 प्रमुता तजि प्रभु कीन्ह सनेह । भएउ पुनीत आज यह गेह ॥
 आयसु होइ मो करउँ गोसाई । सेवक लहइ स्वामि सेवकाई ॥

दो०-मुनि सनेह साने बचन, मुनि रघुवरहि प्रसस ।

राम कस न तुम्ह कहहु अस, हस बस अवतस ॥१०॥

बरनि रामगुन सील-सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुबराजू ॥
राम करहु सब रुजम आजू । जौं बिधिकुसल निवाहइ काजू ॥
गुरु सिख देइ राउ पहिं गाऊ । राम हृदय अस बिसमय भएऊ ॥
जनमे एक सग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबोध उपवीत बियाहा । सग सग सब भएहु उछाहा ॥
बिमल बस यह अनुचित एकू । अनुज बिहाइ बडेहि अभिषेकू ॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई । हरउ भगत-मन कै कुटिलाई ॥

दो०-तेहि अवसर आप लपन, मगन प्रेम आनन्द ।

सनमाने पिय चचन कहि, रघुकुल कैरव चन्द ॥११॥

बाजहि बाजन त्रिविध निधाना । पुर प्रमोद नहि जाइ बराना ॥
भरत आगमन सकल मनाइहि । आवहि देसि नयन फल पावहि ॥
हाट बाट घर गली अथाई । कहहि परसपर लोग लुगाई ॥
फालि लगन भलि केतिक बारा । पूजहि बिधि अभिलाप हमारा ॥
कनक सिंघासन सीय समंता । बैठहि रामु होय चित चेता ॥
सकल कहहि कव होइहि काली । बिघन मनावहि देव कुचाली ॥
तिनहि सोहाइ न अवध बधाया । चोरहि चाँदिनि राति न भाया ॥
सारठ बोलि बिनय मुर करहीं । बारहि बार पाँय लै परेहीं ॥

दो०-निपति हमारि त्रिलोकि बडि, मातु करिय सोइ आजु ।

राम जाहि बन राजु तजि, होइ सकल मुर-काजु ॥१२॥

मुनि सुर-बिनय ठाडि पछिताती । भइउ सरोज बिपिन हिमराती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहि थोरिउ खोरी ॥
बिसमय-हरप रहित रघुराऊ । तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ॥
जीव करम-बस सुर दुख-भागी । जाइय अवध देव हित लागी ॥

बार बार गहि चरन सँकोचो । चलीविचारि निमुध मतिपोची ॥
 ऊँच निवास नीच करतूती । देखि न सकहि पराइ निभूती ॥
 आगिल काजु विचारि बहोरी । करिहहि चाह कुसल कवि मोरी ॥
 हरपि हृदय दशरथ पुर आई । जनु ग्रह-दसा दुसह दुखगयी ॥
 दो०-नाम मथरा मदमति, चेरी कैकइ केरि ।

अजस पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥१३॥

दीप्त मथरा नगर बनावा । भजुल भगल धाज बधाया ॥
 पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम तिलकि सुनि भा उरदाहू ॥
 करइ विचार कुबुद्धि कुजाती । होइ अकाजु कवन विधि राती ॥
 देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गौँ तकइ लेउँ केहि भाती ॥
 भरत मातु पहिँ गइ विलसानी । का अनमनि हसि कहँहँसि रानी ॥
 उतरु देइ नहि लेइ उसासू । नारि-चरित करि ढारइ आँसू ॥
 हँसि कह रानि गाल बड तोरे । दीन्ह लपन सिर अरु मन मोरे ॥
 तबहुँ न बोलि चेरि बडि पापिनि । छौँडइ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥

दो०-सभय रानिकह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु ।

लपन भरत रिपु दमन सुनि, भा कुचरो-उर सालु ॥१४॥

कत सिर देइ हमहिँ कोउ माई । गालु करय केहि कर बल पाई ॥
 रामहि छाडि कुसल केहि आजू । जिनहि जनेसु देहि जुयराजू ॥
 भयउकौंसिलहि निधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहि न ॥
 देखहु कस न जाइ सघ सोभा । जो अवलोकि मोरि मन छोभा ॥
 पूत विदेस न सोचु तुम्हारे । जानतिहहु घस नाहु हमारे ॥
 नौद बहुत प्रिय सेज तुराई । लखहु न भूप कपट चतुराई ॥
 सुनि प्रिय उचन मलिन-मन जानी । मुकी रानि अच रहु अरगानी ॥
 पुनि अस कज कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढायउ तोरी ॥

दो०-काने खोरे कूरे, कुटिल कुचाली जानि ।

तिय त्रिसेपि पुनि चेरि बहि भरत मातु मुसुकानि ॥१५॥

प्रिय घादिनि सिख दीन्हउँ तोही । सपनेहु तो पर कोप न मोही ॥
 सुदिन सुमगलदायक सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
 जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर-कुल रीति सुहाई ॥
 राम तिलक जौ साँचेहु काली । देउँ माँगु मनभागत आली ॥
 कोसल्या सम सब महतारी । रामहि सहजसुभाय पियारी ॥
 मो पर करहि सनेह विसेयी । मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
 जौ विधि जनमु देख करि छोहू । होहि राम मिय पूत पतोहू ॥
 प्राण तें अधिक राम प्रिय मोरे । तिन्ह कर तिलक छोभु कस तोरे ॥

दो०-भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराड ।

हरप समय विसमय करमि, कारन मोहि सुनाउ ॥१६॥

एकहि बार आस सब पूजी । अब कह्य कहव जीह करि ढुजी ॥
 फोरइ जोग कपार अभागा । भलेउ कहत दुर रडरेहु लागा ॥
 कहहि झूठ फुरि घात बनाई । ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
 हमहुँ कह्य अब ठकुर-सोहाती । नाहि त मौन रहव दिनराती ॥
 करि कुरूप विधि परचस कीन्हा । ब्रजसो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ।
 फोड नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाडि अत्र होत्र कि रानी ॥
 जारइ जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
 ताते कह्युफ घात अनुसारी । छमिय देवि बडि चूक हमारी ॥

दो०-गूढ कपट प्रिय घचन सुनि, तीय अधर बुधि रानि । , ,

सुर माया घस बैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि ॥१७॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही । सनरी-गान सृगी जनु मोही ॥
 तस मति फिरी अहइ जस भायी । रहसी चेरि घात जनु फाची ॥
 तुम पूछहु मैं कहत डराऊँ । धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ ॥
 सजि प्रतीति बहुविधि गदि-छोली । अवध माढ सातो तज बोली ॥
 प्रिय सियगम कहा तुम रानी । रामहि तुम प्रिय सो फुरिधानी ॥
 रहा प्रथम अब ते दिन वोंते । समउ फिरे रिपु दोहि पिरीते ॥

भानु कमल-कुल पोपनि हारा । बिनु जर जारि करइ सोइ छारा ॥
जर तुम्हारि चह सवति उखारी । रूखहु करि उपाय बर-बारी ॥

दो०-तुम्हहिं न सोच सुहाग बल, निज बस जानहु राउ ।

मन मलीन मुह-भीठ नृप, राउर सरल-सुभाउ ॥१८॥

चतुर गँभीर राम महतारी । बीचु पाइ निजबात सबारी ॥
पठए भरत भूप ननिअरै । राम-भातु मत जानव रउरै ॥
सेबहि सकल सवति मोहि नीके । गरबित भरत मातु बल पीके ॥
सालु तुम्हारि कौसलहि माई । कपट-चतुर नहि होइ जनाई ॥
राजहिं तुम पर प्रेम बिसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपच भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहँ टीका । सयहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डर मोही । देउ दैव फिरि सो फल ओही ॥

दो०-रचिपचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हैसि कपट प्रबोधु ।

कहेसि कथा सत सवति कै, जेहि बधि बाढ विरोधु ॥१९॥

भाबी बस प्रतीति उर आई । पूँछि रानि पुनि सपथ दिवाई ॥
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना । निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥
भएउ पास दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मुहि सन आजू ॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे । सत्य कहे नहिं दोष हमारे ॥
जौ असत्य कष्ट कहब बनाई । तौ बिधि देखि हमहि सजाई ॥
रामहिं तिलक कालि जौं भयउ । तुम कहँ निपति बीज बिधि बयऊ ॥
रेख रँचाइ कहउँ बल भाखो । मामिनि भइहु दूध कइ मारो ॥
जौ सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

दो०-कद्रू चिन्तहि दीन्ह दुख तुमहि कोसिला देव ।

भरत बदि-गृह सेइबहि लपन राम के नेव ॥२०॥

कैकय-सुता सुनत कटुबानी । कहिन सकै कह्यु सहमि सुर्यानी ॥
तनु पसेउ कदली जिमि काँपी । उबरी दसन जीभ तय चाँपी ॥

कहि कहि कोटिक कपट-कहानी । धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी ॥
 कीन्हेसि कठिन पढाइ कुपाठू । जिमि न नवै फिरि उरुठ कुकाठू ॥
 फिरा करसु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि सराइ मानि मराली ॥
 सुनु मथरा बात फुरि तोरी । दहिनि आँसि नित फरकहि मोरी ॥
 दिन प्रति देखहुँ राति कुम्पने । कहउँ न तोहि मोह बस अपने ॥
 काह करउँ सरि स्रुध-सुभाउ । दाहिनि बाम न जानउँ काउ ॥

दो०-अपने चलत न आजु लागि, अनभल काहुक कीन्ह ।

कोहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह-दुरा दीन्ह ॥२१॥

नैहर जनमु भरव बरु जाई । जियत न करव सबति सैवकाई ॥
 अरि बस दैव जिआयत जाही । भरन नीक तेहि जीव न चाही ॥
 दीन-वचन कह बहु बिधि रानी । सुनि कुबरी तिय माया ठानी ॥
 अस कस कहहु मानि मन उजा । सुख-सोहाग तुम्ह कहँ दिन दूना ॥
 जो राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि यह फलु परिपाका ॥
 जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूँय न बासर नाद न जामिनि ॥
 पूछैउ गुनिन्ह रेख तिन खाची । भरत भुआल होहि यह माची ॥
 भामिनि करहु त कहउ उपाऊ । हैं तुम्हरी सेवा-बस राऊ ॥

दो०-परौ कृप तब वचन लागि, सकौ पूत पति त्यागि ।

कहसि मोर दुरा नेरि थड, कस न करव हित लागि ॥२२॥

कुबरी करि कुबली कैकेई । कपट-छुरी उर पाहन टेई ॥
 लखइ न राति निकट दुख कैसे । चरइ हरित वृन बलि पसु जैसे ॥
 सुनत बात मृदु अन्त कठोरी । दैति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
 कहइ चेरि मुधि अहइ कि नाहीं । स्वामिनि कहेउ कथा मोहि पाहीं ॥
 दुइ बरदान भूप सन याती । मागहु आजु जुडावहु छाती ॥
 सुतहि राज रामहि वनवासू । देहु लेहु सब सबति हुलासू ॥
 भूपति राम सपथ जग करई । तब मागहु जेहि वचन न टरई ॥
 होइ अकाजु आजु निसि नीते । वचन मोर प्रिय मानहु जीते ॥

दो०-उह कुपात करि पातभिनि, कहेसि कोप गृह जाहु ।

काज सँवारेहु सजग सन, सहमा जनि पतियाहु ॥२३॥

कुमरिहि रानि प्रान प्रिय जानी । नार नार उडि बुद्धि नखानी ॥
तोहि सम हितु न मोर ससारा । बहे जात कर भइसि अधारा ॥
जौ विधि पुरन मनोरथ काली । करो तोहि चर पतारि आली ॥
बहु विधि चेरिह आदर देई । कोप भवन गवनी कैकेई ॥
त्रिपति नीज नरपायतु चेरी । भुई भइ कुमति केरई केरी ॥
पाइ कपट-बल अकुर जामा । यर दोउ बल दुखफल परिनामा ॥
कोप समाजु साजि सन सोई । राज करत निज कुमति त्रिगोई ॥
राउर नगर कुलाहल होई । यह कृचालि कहु जान न कोई ॥

दो०-प्रमुदित पुर-नर नारि सन, सजहि सुमगलचार ।

एक प्रविसहिं एक निरगमहि, भीर भूप-दरपार ॥२४॥

बाल सखा सुनि हिय हरपाहीं । मिलि दस पाच राम पहुँ जाहीं ॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी । पूछहि कुसल-छेम मृदु बानी ॥
किरहिं भवन प्रिय आयसु पाई । करत परसपर राम बडाई ॥
को रघुनीर सरिस ससारा । सीलु सनेहु निबाहनि-हारा ॥
जेहि जेहि जोनि करमबन भ्रमहीं । तहँ तहँ ईसु देहि यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नात यह ओर निबाहू ॥
अस अभिलाष हृदय सन काहू । बैरय-सुता हृदय अतिदाहू ॥
को न कुसगति पाइ नसाई । रहै न नीच मते चतुराई ॥

दो० माक समय सानन्द नृप, गण्ड कैकयी रोह ।

गवन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥२५॥

कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयनस अगहउ परइ न पाऊ ॥
सुर पति बसइ बाह उल जावे । नर पति सकल रहहिं रग ताके ॥
सो सुनि तिय रिस गयेउ मुखाई । देखहु काम प्रताप बडाई ॥
सूल कुलिस अमि अँगननिहारे । ते रति-नाथ सुमन-सर मारे ॥

सभय नरेस प्रिया पहुँ गयउ । देखि दसा दुख दारुन भयेऊ ॥
मृमि सयन पट मोट पुराना । दिये डारि तन भूपन नाना ॥
कुगतिहि कसि कुपेसता फाबी । अन-अहिवातु सूच जनु भाबी ॥
जाइ निक नृप कह मृदुबानी । प्रान प्रिया केहि हेतु रिखानी ॥

छ ।—केहि हेतु रानि रिमानि परसत पानि पतिहि निवारई ।

मानहुँ सरोप भुअग भामिनि निपम भाति निहारई ॥

दोड बासना रसना दसन घर मरन-ठाहरु देखई ।

तुलसी नृपति भरितव्यतापस काम कौतुक लेखई ॥

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिक-वयनि ।

कारन मोहि सुनाउ, गज-गामिनि निज कोप कर ॥२६॥

अनहित तोर प्रिया केहि मीन्हा । केहि दुइ-सिर केहि जम चह लीन्हा ॥

कहु केहि रकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउ देसू ॥

सकउ तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट उपुरे नर-नारी ॥

जानसि मोर सुभाउ जरोरु । मन तज आनन चन्द-चक्रोरु ॥

प्रिया प्रान सुत सरयस मोरे । परिजन प्रजा सकल बस तोरे ॥

जो कहु कहैं कपट करि तोही । भामिनि राम सपथ गत मोही ॥

धिहंसि मागु मन भावति बाता । भूपन सजहि मनोहर गाता ॥

कुधरी धरी समुझि जिय देख । बेगि प्रिया परिहरहु कुवेपू ॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बडि, निहंसि उठी मति मन्द ।

भूपन सजति बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फन्द ॥२७॥

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी । प्रेम पुलकि मृदु मजुल वानी ॥

भामिनि भयेउ तोर मनभावा । घर घर नगर अनन्द-प्रधाना ॥

रामहि देउँ कालि जुबराजू । सजहि सुलोचनि मगल साजू ॥

दलकि उठै मुनि हृदय कठोरु । जनु छुइ गएउ पाक वरतोरु ॥

पेसिउ पीर निहंसि तेउ गोई । चोर नारि जिमि प्रगट न रोई ॥

लखी न भूप कपट-चतुराई । कोटि कुटिलमनि गुरू पढाई ॥

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारि चरित जलनिधि श्रवणाहू ॥
कपट सनेह बढाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी ॥

दो०-मागु मागु पै कहहुँ पिय, कबहुँ न देहु न लेहु ।

देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देह ॥२८॥

जानेउँ मरम राउ हँसि कहई । तुम्हहि कोठाव परमप्रिय अहई ॥
थाती राखि न मागेहु काउ । बिसरि गयेउ मोहि भोर मुभाऊ ॥
भूठेहु हमहि दोस जनि देहु । दुइ कै चारि मागि किन लेहु ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु बर बचनु न जाई ॥
नहि असत्य सम पातक पुजा । गिरि सम होहि कि कोटिक गुजा ॥
मत्य मूल सय सुकृत सुहाए । वेद पुरान विदित मुनि गाए ॥
तेहि पर राम सपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
चात दढाइ कुमति हसि योनी । कुमत कुविहँग कुलह जनु खोली ॥

दो०-भूप मनोरथ मुभग बन, सुर सुबिहग समाजु ।

भिल्लिनि जिमि छाँडन बहति, बचन भयकर बाजु ॥२९॥

सुनहु प्रान प्रिय भावत जीका । देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी । पुरबहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस बेप बिसेपि उदासी । चौदह धरस राम बनवासी ॥
सुनि मृदुबचन भूप हिय सोव । ससि-कर छुअत बिकल जिमि कोक ॥
गयउ सहमि नहि कछु कहि आना । जनु सचान बन कपटेउ लाना ॥
बिबरन भएउ निपट नरपालू । दामिनि हनेहु मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ मूढि दोउ लोचन । तनु वरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
भोर मनोरथ सुरतर फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकई । दीन्हेसि अचल विपति कै नेई ॥

नो०-करने अवसर का भयउ, गएउ नारि बिस्वास ।

जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास ॥३०॥

एहि विधि राउ मनहि मन माँखा । देखि कुभाँति कुमति मन माँखा ॥
 भरतु कि राउर पूत न होही । आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥
 जो सुनि सर अस लाग तुम्हारे । काहे न बोलेहु वचन सभारे ॥
 देहु उतर अर कहहु कि नाहीं । सत्यसध तुम रघुकुल माही ॥
 देन कहेहु अब जनि बर देहू । तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ॥
 सत्य सराहि कहेहु बरु देना । जानेहु लेइहि मागि बधेना ॥
 सिबि दधीचि बलि जो कलु भाखा । तनु धनु तजेउ बचन पन राखा ॥
 अति कटु वचन कहति केकेई । मानहुँ लौन जरे पर देई ॥

दो०-धरम धुरधर वीर धरि, नयन उघारे राय ।

सिर धुनि लीन्ह उसास असि, मारेसि मोहि जुठाय ॥३१॥

आगे देखि जरति रिस भारी । मनहुँ रोष तरवारि उचारी ॥
 मूठि कुबुद्धि धार निठुराई । धरी क्वारी सान बनाई ॥
 लक्ष्मी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवन लेइहि मोरा ॥
 बोलेउ राउ फठिन करि छाती । घानी-सबिनय तासु सुहाती ॥
 प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती । भीरु प्रतीति प्रीति करि हँती ॥
 मोरे भरत राम दोइ आँखी । सत्य कहौ करि शकर साखी ॥
 अबसि दूत मैं पठउन प्राता । ऐइहि धेगि मुनत नोउ भ्राता ॥
 सुदिन सोधि सब साजु सजाई । देहँ भरत कहँ राजु बजाई ॥

दो०-लोभ न रामहिं राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति ।

मैं बड-छोट बिचारि जिय, करत रहेउँ नृप-नीति ॥३२॥

राम-सपथ-सत कहउ सुभाऊ । राम-मातु कन्हु कहेउ न काऊ ॥
 मैं सब कीन्ह तोहि निनु पूछे । तिहितें परेउ मनोरथ छूछे ॥
 रिस परिहरु अब मगल साजू । कलु दिन गए भरत जुबराजू ॥
 एकहि वात मोहि दुख लागी । घर ३ दूसर असमजस मागी ॥
 अजहू हृदय जरत तेहि आचा । रिस परिहास कि माचेहु साचा ॥
 बहु तजि रोपु राम अपराधू । सब कोउ कहै राम मुठि साधू ॥

तुहँ मराहमि करमि सनेह । अरु मुनि मोहि भणउ सन्देह ॥
 जामु सुभाउ अरिहि अनुमूला । सो निमि करिहि मातु प्रतिमूला ॥
 दो० प्रिया हाम रिस परिहरहु मातु पिचारि निपेक ।

जेहि देखउँ अरु नया भरि भरत राज अभिपेक । ३३ ।

जियइ मीन घर गारि निर्हाना । ननि निनु पनिक जियइ दुखनीना ॥
 कहौ सुभाउ न दल नाना नाहीं । जीवन मोर राम निनु नाहीं ॥
 समुक्ति देउ जिय प्रिया प्रानीना । जीवन राम-अरस आनीना ॥
 सुनि मृदु वचन पुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥
 कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहा न लागिहि राउरि माया ॥
 देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपच सोहाहीं ॥
 राम साधु तुम्ह माधु सयागे । राम मातु भलि सन पहिचाने ॥
 जस कोसिला मोर भरा ताका । तस फल उन्हहि देउँ करि साका ॥
 दो०-होत प्रात मुनि वेष धरि, जौ न राम बन जाहिं ।

मोर मरन राउर अजस, नृप समुक्तिअ मनमाहिं ॥ ३४ ॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाडी । नानहु रोष-तरगिनि धाडी ॥
 पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध-जल जाइ न जोई ॥
 दोउ वर-कूल कठिन हठ वारा । भँवर-कूपरी—वचन—प्रचारा ॥
 डाहत भूप रूप तर मूला । चली विपति वारिधि अनुमूला ॥
 लग्यो नरेस वात सन साँची । तियमिस मीच सीस पर नाँची ॥
 गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी । जनि दिनकर-कुल होसि कुठारी ॥
 माँगु माथ अवहीं देउँ तोही । राम विरह जनि मारसि मोही ॥
 राखु राम कहँ जेहि तेहि माँती । नाहित जरिहि जनम भरि छाती ॥

दो०-देखी व्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ ।

कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ ॥ ३५ ॥

व्याकुल राउ सिथिल सब गात्रा । करिनि कलपतरु मनहुँ निपात्रा ॥
 कठ सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीन दीनु बिनु पानी ॥

पुनि कह कटु कठार कैके । मनहुं घाय 'महँ माहुर देई ॥
जों अन्तहु अस करतबरहेछ । माँगु माँगु तुम केहि बल कहेऊ ॥
दुइ कि होहि इक समय सुआला । हँसव ठठाइ फुलादव गाला ॥
दानि कहाउव अरु कृपनाई । होहि कि छेम-कुसल रौनाई ॥
छाबहु बचन कि वीरज बरहू । जनि अबला जिमि करना करहू ॥
तनु तिय तनय धाम वनु धरनी । सत्य सध कहँ वन सम वरनी ॥

श्लो०-मरम नचन सुनि राउ कह, कहकछु त्रोप न तोर ।

लागेउ तोहि पिसाच जिमि, काल कहावत मोर ॥३६॥

चहत न भरत श्रूषतहि भोरे । विधिबस कुगति बसी जिय तोरे ॥
सो सा मोर पाप परिनाम् । भयेउ कुठाहर जेहि निधि बामू ॥
सुनस बसिहि फिरि अवय सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥
करिहहि भाइ मरुल सेवकाई । होइहि तिहुँपुर राम बडाई ॥
तोर कलक मोर पछिताऊ । मुयेहु नमिदिहि न जाइहि काऊ ॥
अन तोहि नीक लाग कर सोई । लोचन श्रोत बेट मुँह-गोई ॥
जन लगि जिप्रउँ कहौ कर जोरी । तन लगि जनि कष्टु कहैसि बहोरी ॥
फिरि पछितैहसि अन्त अभागी । मारसि गाय नाहरहि लागी ॥

श्लो०-परेउ राउ कहि फोटि बिधि, काहे करसि निदान ॥

कपट सयानि न कहति कष्टु, जागति मनुहुँ मसान ॥३७॥

राम राम रति निकल सुआल । जनु विनुपर नहिग विहाल ॥
हृदय मनाय भोर जनि होई । रामहि जाय कहैइ जनि कोई ॥
उदय करहु जनि रवि रचुकल-गुर । अवध बिलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई । उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥
निलपत नृपहि भयेउ भिनुसारा । बीनु-बेनु सर-धुनि-द्वारा ॥
पढहि भाट गुन गावहि गायक । सुनत नृपहि जनु लागहि सायक ॥
मगल सकल सुहाहि न कैसे । महगामिनिहि त्रिभूपन जैसे ॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू । राम-दरस-लालसा उछाहू - ॥

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहि उदित रनि देखि ।

जागे अजहु न अवध पति, कारन पवन निसेलि ॥३२॥

पतिले पहर भूप नित जागा । आज हमहि बड अचरजु लागे ॥
जाहु सुमत्र जगावहु जाई । कीजिअ काज रजायसु पाई ॥
गये सुमत्र तब राउर पाई । देखि भयावन जात डराई ॥
धाइ ग्याइ जनु जाइ न हेरा । मानहुं विपति-विपाद वसेरा ॥
पूछे कोउ न ऊतर देई । गये जेहि भजन भूप कैकेई ॥
कहि जय जीव चैठि सिर नाई । देखि भूप-गति गण्ड सुगई ॥
मोच धिक्कल निबरन महि परेऊ । मानहुं कमल-मूल परिहरेऊ ॥
सचिव समीत सकै नहि पूछी । बोली असुभ भरी सुभ-छूछी ॥
दो०—परी न राजहि नीद निसि, हेतु जान जगदीस ।

राम राम रटि भोर किय, कहेउ न मरम महीस ॥३३॥

आनहु रामहि बेगि बुलाई । समाचार तब पूछेहु आई ॥
चलेउ सुमत्र राय ग्य जानी । लखी कुचालि कीन्ह कछु रानी ॥
सोच निकल भग परै न पाऊ । रामहि बोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि वीरज गयउ दुआरे । पूछहि सकल देखि मनु मारे ॥
समाधान मो करि सब ही का । गयउ जहा दिन कर-कुल-टीका ॥
राम सुमत्रहि आवत देखा । आदर कीन्ह पिता-सम लेखा ॥
निरखि बदन कहि भूप रजाई । रघुकुल-रोपहि चलेउ लिवाई ॥
राम कुभाँति सचिव सँग जाई । देखि लोग जहँ तहँ बिलखाई ॥

दो०—जाइ देखि रघुबस मनि, नरपति निपट कुसाज ।

सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहु बृद्ध गज राज ॥३४॥

सूगहि अवर जरइ सब अगू । मनहुं दीन मनि-हीन मुअगू ॥
मख्य समीप देख कैकेई । मानहुं मीच घरी गनि लेई ॥
करनामय मृदु राम-सुभाऊ । प्रथम दीख दुरा सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समय विचारी । पूछी मधुर-वचन महतारी ॥

मोहि कहु मातु तात दुख कारन । करिअ जतन जेहि होइ निवारन ॥
 सुनहु राम सब कारन एहू । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेह ॥
 देन कहेउ मोहि दुइ बरदाना । मागेउ जो कहु मोहि सुहाना ॥
 सो सुनि भयउ भूष उर सोचू । छाडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥
 दो०-सुत-सनेह इत बचन उत, सकट परेउ नरेसु ।

सकहु त आयसु धरहु सिर, भेटहु कठिन कलेसु ॥४१॥
 निधरक पैठि फहइ कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
 जीम कमान बचन सर नाना । मनहुँ महिष मृदु लज्ज समाना ॥
 जनु कठोरपनु वरे मरीम । मिराइ धनुष निशा बरबीरु ॥
 सन प्रसंग रघुपतिहि मुनाई । बेठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
 मन मुसकाइ भानु कुल-भानू । राम सहज आनन्द निधानू ॥
 बोले बचन बिगत सब दूषन । मृदु मजुल जनु बाग निभूषन ॥
 सुन जननी सोइ सुत बड भागी । जो पितु-मातु बचन अनुरागी ॥
 तनय मातु पितु तोपनिहारा । दुरलभ जननि सकल ससारा ॥
 दो०-मुनि गन मिलन बिसेपि वन, सवाहि भाति हित मोर ।

तेहि पर पितु आयसु बहुरि, समत जननी तोर ॥४२॥
 भरत प्रानप्रिय पावहि राजू । बिधि सबबिधि मोहि सनमुख आजू ॥
 जों न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिय मोहि मूढ-समाजा ॥
 सेवहिं अरेंडु कलपतर त्यागी । परिहरि अमिय लेहि बिष मागी ॥
 तेउ न पाइ अस समय चुकाहा । देखि विचारि मातु मन माई ॥
 अग्य एक दुख मोहि बिसेखी । निपट विकल नरनायक देखी ॥
 थोरिहि यात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥
 राउ धीर गुन उग्रधि अगाधू । भा मोहि तें कहु बड अपराधू ॥
 तातें मोहि न कहत कहु राऊ । मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥
 दो०-सहज सरल रघुवर बचन, कुमति कुटिल करि जान ।

चलइ जौक ज्यो बक्र गति, जद्यपि सलिल समान ॥४३॥

रहसी रानि रामरूप पाई। बोली कपटसनेह जनाई ॥
 सपथ तुम्हार भरत कह आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥
 तुम्ह अपराध जोग नहि ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता ॥
 राम सत्य सब जो कछु कहू। तुम पितु मातु बचन रत अहू ॥
 पितहिं बुझाइ कहू बलि सोई। चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
 तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें। उचित न तासु निरादर कीन्हें ॥
 लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
 रामहिं मातुबचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाये ॥
 दो०-गइ मुरछा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।

सचिव राम आगमन कहि, विनय समयसम कीन्ह ॥४४॥
 अग्रनिप अकनि राम पगु धारे। धरि धीरज तब नयन उधारे ॥
 सचिव सँभारि राउ बैठारे। धरन परत नृप राम निहारे ॥
 लिये सनेह बिकल उर लाई। गइ मनिमनहुँ फनिक फिरि पाई ॥
 रामहिं चितइ रहेउ नरनाहू। चला तिलोचन बारिप्रबाहू ॥
 सोकरिअस कछु कहइ न पारा। हृदय लगानत बारहिबाहू ॥
 निधिहि मनाव राउ मनमाही। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं ॥
 सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। विनती सुनहु सदासिअ मोरी ॥
 आसुतोप तुम अवढर दानी। आरति हरहु दीनजन जानी ॥
 दो०-तुम्ह प्रेरक मन के हृदय, सो मति रामहिं देहु।

बचन मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सील सनेहु ॥४५॥
 अजस होउ जग सुजस नसाऊ। नरक परउँ बरु सुरपुर जाऊँ ॥
 सव दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट राम जनि होहीं ॥
 अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात-सरिस मन डोला ॥
 रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनिकछु कहिहि मातु अनुमानी ॥
 देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन विनीत निचारी ॥
 तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई ॥
 अति लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥

देखि गोसाइहि पूछिउँ माता । सुनि प्रसंग भये सीतल गाता ॥

दो०-मगल समय सनेह बस, सोच परिहरिय तात ।

आयसु देख्य हरपि हिय, कहि पुलके प्रभुगात ॥४६॥

धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ॥

चारि पदारथ कर्तल ताके । प्रिय पितु मातु प्रान सम जा के ॥

आयसु पालि जनम फल पाई । ऐहउँ बेगिहि होइ रजाई ॥

निदा मातु सन आवउँ माँगो । चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी ॥

अस कहि राम गवन तब कीन्हा । भूप सोकबस उतरु न दीन्हा ॥

नगर व्यापि गई बात सुतीछी । छुअत चदी जनु सय तन बीछी ॥

सुनि भए विकल मरुल नर नारी । बेलि चिटप जिमि देखि दवारी ॥

जो जहँ सुतइ धुनइ सिरु सोई । बढ बिपाद नहि घीरज होई ॥

दो०-मुख सुखाहि लोचन खनहि, सोक न हृदय समाइ ।

मनहुँ करुन-रस कटफई, उतरी अवध बजाइ ॥४७॥

मिलहि माँझ बिधि बात बिगारी । जहँ तहँ देखि कैकइहि गारी ॥

एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ । छाई भयन पर पावक धरेऊ ॥

निजकर नयन काढि चह दीया । डारि सुधा बिष चाहत धीखा ॥

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघु बस बेनु-वन आगी ॥

पालव बैठि पेहु एइ काटा । मुख महेँ सोक ठाढु धरि ठाटा ॥

सदा राम एहि प्रान समाना । कारन कवन कुटिलपनु ठाना ॥

सत्य कहहि कवि नारिसुभाऊ । सब बिधि अगम अगाध दुराऊ ॥

निज प्रतिबिम्ब वरुक गहि जाई । जानि न जाइ नारि गति भाई ॥

दो०-काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ ।

का न करइ अबला प्रबल, केहि जग काल न रखाइ ॥४८॥

का सुनाइ बिधि काह सुनावा । का देखाइ चह काह देखावा ॥

रक कहहि भल भूप न कीन्हा । बर बिचारि नहि कुमतिहि दीन्हा ॥

जो छठि भयउ सकल दुखभाजनु। अवला विषस ज्ञान गुन गा जनु॥
 एक धरमपरिमित पहिचाने। नृपहि दोष नहि देहि सयाने॥
 सिवि-दधीच-हरिचन्द-कहानी। एक एक सन कहहि बखानी॥
 एक भरत कर समत कहही। एक उदास भाय सुनि रहही॥
 कान मूँद्रि कर रद गहि जीहा। एक कहहि यह बात अलीहा॥
 सुकृत जाहि अस कहत तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे॥
 दो०-चन्द चुवै बर अनलफन, मुधा होइ विप तूल।

सपनेहुँ करहुँ न करहि कछु, भरत रामप्रतिमूल ॥४६॥

एक विधातहि दूपन देहौं। सुधा देखाइ दीन्ह विपु जेही॥
 ररभर नगर सोच सय काहू। दुसह दाह उर मिटा उछाहू॥
 विप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥
 लगीं देन सिख सील सराही। बचन बान सम लागहि ताही॥
 भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना॥
 करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु घन देहू॥
 कबहुँ न कियहु सबति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सय देसू॥
 फौसल्या अय काह विगारा। तुम जेहि लागि बज्रपुर पारा॥

दो०-सीय कि पिय सँग परिहरिहि, लपन कि रहिहहि धाम।

राजु कि भूजय भरत पुर, नृपु कि जिइहि बिनु राम ॥४७॥

अस निचारि उर छाडहु कोहू। सोक कलक कोटि जनि होहू॥
 भरतहि अयसि देहु जुवराजू। कानन काह राम कर काजू॥
 नाहिन राम राज कर भूखे। घरमधुरीन विषयरस रूखे॥
 गुरुगृह बसहि राम तजि गेहू। नृप सन अस बर दूसर लेहू॥
 जौं नहि लगिहहु कहे हमारे। नहि लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
 जौं परिहास कीन्ह कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥
 राम-सरिस-सुत कानन जोगू। काह कहहि सुनि तुम कहँ लोगू॥
 उठहु येनि सोइ करहु उपाई। जेहि विधि सोक कलक नसाई॥

छ०-जेहि भाति सोरु कलक जाय उपाय करि कुल पालही ।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही ।
जिमि भानु विन दिन प्रान विन तन चद विन जिमि जामिनी,
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु विन समुक्ति धौ जिय भामिनी ॥

सो०-सखिन्ह सिरसावन दीन्ह, मुनत मधुर परिनाम हित ।

तेइ कह्यु कान न कीन्ह, कुटिल प्रयोधी कूबरी ॥५१॥
उतर न देइ दुमह रिम रूखी । मृगिन्ह चितव जनु बाधिनि भूखी ॥
व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी । चली कहति मति मद अभागी ॥
राज करत यहि दैव निगोई । कीन्हैसि अस जस करइ न कोई ॥
एहि विधि धिलपहि पुर नर नारी । देहि कुचालिहि कौटिक गारी ॥
जरहि बिपम ड्वर लेहि उसासा । कबनि राम विन जीवन आसा ॥
विपुल वियोग प्रजा अकुलानी । जनु जलचर गन सूखत पानी ॥
अति विषाद बस लोग लोगार्ह । गए मातु पहुँ राम गोसाई ॥
मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ । मिटा सोच जनि रागइ राऊ ॥

नो०-नव गयढ रघुवीर मन, राजु अलान समान ।

छूट जानि बन गवन सुनि, उर अनद अधिकान ॥५२॥

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातुपद नाएउ माथा ॥
धीन्ह असीस लाइ डर लीन्है । भूपन बमन निछावरि कीन्है ॥
बार बार मुख चुम्बति माता । नयन नेहजल पुलकित गाता ॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये । खवत प्रेम रस पयद सुहाये ॥
प्रेम प्रमोद न कह्यु कहि जाई । रक धनद पदवी जनु पाई ॥
मादर सुदर बदन निहारी । बोली मधुर बचन महतारी ॥
कह्यु तात जननी बलिहारी । कबहिं लगन मुद-मगल-कारी ॥
सुकृत सील मुख सीव सुहाई । जनम-लाभ कइ अवधि अघाई ॥

नो०-जेहि चाहत नरनारि सब, अति आरत एहि भौति ।

जिमि चातक चातकि वृषित, वृष्टि सरदरितु स्वाति ॥५३॥

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
 पितु समीप तब जायहु मैया । भइ बडि वार जाइ बलि मैया ॥
 मातु बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुर तरु के फूला ॥
 मुख मकरद भरे स्त्रिय मूला । निरखि राम-मन भँवर न भूला ॥
 वरम धुरीन धरम गति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदुवानी ॥
 पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सख भौंति मोर बड काजू ॥
 आयसु देहु मुदित मन माता । जेहि मुद मगल कानन जाता ॥
 जनि सनेह बस डरपसि भोरे । आनँद अबु अनुग्रह तोरे ॥

दो०-बरस चारिदस विपिन धसि, करि पितु बचन प्रमान ।

आइ पाँय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान ॥१४॥

बचन विनीत मधुर रघुवर के । सर सम लगे मातु उर करके ॥
 सहमि सुखि सुनि सीतल बानी । जिमि जबास परे पावस पानी ॥
 कहि न जाइ कछु हृदय निपादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥
 नयन सजल तन थर थर कापी । मौजहि खाइ मीन जनु माँपी ॥
 धरि धीरज सुत बदन निहारी । गदगद बचन कहति महतारी ॥
 तात पितहि तुम प्रान पियारे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
 राज देन कहँ सुभ दिन साधा । कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
 तात सुनावहु मोहि निदान । को दिनकर थुल भएउ कृसानू ॥

दो०-निरखि रामरख सचिव सुत, कारन कहेउ बुझाइ ।

सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥१५॥

राखि न सकइन कहि सक जाहू । दुह भौंति उर दारुन दाहू ॥
 लिखत सुधाकर गा लिखि राहू । विधिगति बाम सदा सब काहू ॥
 धरम सनेह उभय गति घेरी । भइ गति साँप छछु दरि केरी ॥
 राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू । धरम जाय अर बधु विरोधू ॥
 कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी । सकट सोच बिबस भइ रानी ॥
 बहुरि समुझि तिय धरम सयानी । राम भरत दोउ सुत सम जानी ॥

सरल सुभाउ राममहतारी । बोली बचन धीर वरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्है न नीका । पितुआयसु सब धरम क टीका ॥

दो०-राजदेन कह दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेस ।

तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचड कलेस ॥५६॥

जौ केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बहि माता ॥
जौ पितुमातु कहै बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥
पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरन सरोरुह सेरी ॥
अतहु उचित नृपहि बनवासू । बय बिलोकि हिय होइ हरामू ॥
बडभागी बन अवध अभागी । जो रघुस तिलक तुम्ह त्यागी ॥
जौ सुत कहउँ सग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदय होय सवेहू ॥
पूत परमप्रिय तुम सब ही के । प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊ ॥

दो०-यह बिचारि नहि करउँ हठ, मूठ सनेह बढाइ ।

मानि मातु करि नात बलि, सुरति निसरि जनि जाइ ॥५७॥

देव पितर सब तुम्हहि गोसाई । राखहु नयनपलक की नाई ॥
अवधि अनु प्रियपरिजन मीना । तुम करुनाकर धरमधुरीना ॥
अस बिचारि मोइ करहु उपाई । सधहिं जिअत जेहि मेटहु आई ॥
जाहु सुरेन बनहि बलि जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन गाऊँ ॥
सब कर आजु सुरुत फल बीता । भयेउ कराल-काल बिपरीता ॥
बहुविधि त्रिलपि चरन लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानौ ॥
दाम्न दुसह दाह उर व्यापा । बरनि न जाइ बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदु-बचन बहुरि समुमाई ॥

दो०-समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।

जाइ सासु पद कमल जुग, बदि बैठि सिर नाइ ॥५८॥

दीन्हि असीस सासु मृदुबानी । अति मुकुमारि देगि अकुलानी ॥
बैठि नमित मुख सोचति मीता । रूप रासि पति प्रेम पुनीता ॥

चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृती सन होइहि साथू ॥
 की तनु प्रान कि केवल प्राना । निधि करतब कछु जाइ न जाना ॥
 चारु चरननगर लेखति घरनी । नूपुरमुखर मधुर कबि वरनी ॥
 मनहुँ प्रेमरस विनती करही । हमहिं सीयपद जनि परिहरही ॥
 मजु मिलोचन मोचति भारी । बोली देखि राम महतारी ॥
 तात सुनहु सिय अति मुकुमारी । सामु मसुर-परिजनहिं पियारी ॥

दो०-पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानु कुल भानु ।

पति रवि कुल कैरव विपिन, विधु गुण रूप निधानु ॥५६॥

मै पुनि पुत्र-बंधू प्रिय पाई । रूप रासि गुन सील सुहाई ॥
 नयन पुतरि करि प्रीति बढाई । राखउँ प्रान जानकिहि लाई ॥
 कलपवेलि जिमि बहु बिधि लाली । सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली ॥
 फूलत फलत भयउ विधि बामा । जानि न जाइ काह परिनामा ॥
 पलंगपीठ तजि गोद हिंडोरा । सिय न दीन्ह पग अबनि कठोरा ॥
 जियनमूरि जिमि जुगजत रहउँ । दीपवाति नहि टारन कहउँ ॥
 मोइ सिय चलन चहत बन साथी । आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
 चढ फिरन-रस रसिक चकोरी । रवि रूप नयन सकइ किमि जोरी ॥

दो -फरि केहरि निसिचर चरहि, दुष्ट जतु अन भूरि ।

निपटाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि-भूरि ॥६०॥

बनहित कोल फिरत किसोरी । रची विरचि विषय सुख भोरी ॥
 पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाउ । तिन्हहि बलेस न कानन काउ ॥
 कै तापम तिय कानन जोगू । जिन तप हेतु तजा सब भोगू ॥
 मित्र बन वसिहि तात केहि भौंती । चित्र लिखित कपि देखि डराती ॥
 सुर सर सुभग बनज बन-चारी । ढावर जोग कि हसकुमारी ॥
 अस निषारि जस आयसु होई । मैं सिय देउँ जानकिहि सोई ॥
 जौ सिय भयन रहइ कह अम्बा । मोहि कहैं होइ बहुत अबलम्बा ॥
 सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ॥

दो०-कहि प्रियवचन विवेकमय, कीन्ह मातुपरितोष ।

लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥६१॥

मातु समीप कहत सकुचाही । बोले समठ समुझि मन माँही ॥
राजकुमारि सिरायन सुनह । आन भौंति जिय जनि कहूँ गुनहूँ ॥
आपन मोर नोक जौँ चहहूँ । बचन हमार मानि गृह रहहूँ ॥
आयसु मोरि सासु सेजकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥
एहि ते अधिक धरमु नहि दूजा । सादर सासु-ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेमविकल मतिभोरी ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुन्दरि समुभायेहु मृदुबानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोहो । सुमुखि मातुहित राखउँ तोहो ॥

दो०-गुरु स्मृति समत वरमफल, पाइअ बिनहि कलैस ।

हठअस सब सफट सहे, गालब नहुष नरेस ॥६२॥

मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी । बेगि फिरन सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिखस जात नहि लागिहि बाग । सुन्दरि सिरायन सुनहुँ हमार ॥
जौँ हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुरा पाउन परिनामा ॥
कानन रुठिन भयकर भारी । घोर घाम हिम बारि बयारी ॥
कुसफटक मग कौँर नाता । चलथ पयादेहि बिनु पदगाना ॥
चरनकमल मृदु मजु तुम्हार । मारग अगम भूमिधर भारे ॥
कदर खोह नदी न नाने । अगम अगाध न जाहिं निहारै ॥
भालु बाप कृक केहि नागा । करहि नाद सुनि धीरज भागा ॥

दो०-भूमिसयन बलकलसत असन कद फल मूल ।

ते कि सदा सन निन मिलहि ममय समय अनुकूल ॥६३॥

नर अहार रजनीचर करहीं । कपटवेष विधि कोटिक धरहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी । विपिन विपति नहिं जाइ बरखानी ॥
ब्याल कराल विहंग बल घोरा । निसिचर निकर नारि नरचोरा ॥
हरपहि धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि तुम्ह भोर सुभाये ।

रसगन्धि तुम्ह नहिं वनजोगू । सुनि अपजसु मोहिं देखिं लोगू ॥
 मानस-सलिल मुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवनपयोधि मराली ॥
 नव रसाल वन विहरनसीला । सोह कि फोकिल निपिन करीला ॥
 रहहु भवन अस हृदय विचारो । चदपदनि दुख कानन भारी ॥

दो०-सहज सुहृद गुर स्वामि सिर, जो न करइ सिर मानि ।

सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितदानि ॥६४॥

सुनि मृदुवचन मनोहर पियके । लोचन ललित भरे जल सियके ॥
 सीतल सिर दाहक भइ कैसे । चकइहि सरद चन्द निसि जैसे ॥
 उतर न आव निकल बैदेही । तजन चाहत सुचि स्वामि सनेही ॥
 वरवस रोकि बिलोचनबारी । धरि धीरज उर अयनिकुमारी ॥
 लागि सासुपद कह कर जोरी । छमवि देवि बडि अविनय मोरी ॥
 दोन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि विधि मोर परमहित होई ॥
 मैं पुनि समुक्ति दीर्य मन माहीं । पिय त्रियोग सम दुख जग नाहीं ॥

दो०-प्राननाथ करनायतन, सुन्दर सुरद सुजान ।

तुम्ह विनु रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान ॥६५॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
 सासु ससुर गुर मजन सहार्ई । सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
 जहँ लागि नाथ नेह अरु नाते । पिय विनु तियहि तरनि ते ताते ॥
 तन धन धाम धरनि पुरराजू । पतिबिहीन सथ सोकसमाजू ॥
 भोग रोगसम भूपन भारू । जम-जातना सरिस ससारू ॥
 प्राननाथ तुम्ह विनु जग माहीं । मो कहँ सुरद कतहुँ कछु नाहीं ॥
 जिअ विनु देह नदी विनु बारी । तसिअ नाथ पुरुष विनु नारी ॥
 नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद विमल विधु वदनु निहारे ॥

दो०-रग मृग परिजन नगर वन, बलकल विमल दुवृल ।

नाथ साथ सुर सदन मम, परनसाल सुरमूल ॥६६॥

वनदेवी वनदेव उदारा । करिहहि सासु ससुर सम सारा
कुस किसलय-साथरी सुहाई । प्रभु संग मजु मनोजतुराई ॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू । अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनुछिनु प्रभु पद-कमल बिनोकी । रहिहवँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
वन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विपाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु वियोग-लव लेस समाना । सब मिलि होहि न कृपानिधाना ॥
अस जियजानि सुजान सिरोमनि । लेइय सग मोहि छाड़िय जनि ॥
बिनती बहुत करउँ का स्यामी । करुनामय उर अन्तरजामी ॥

दो०-राखिय अवध जो अवधि लागि, रहत जानिअहि प्रान ।

दीनप्रन्धु सुन्दर सुरजद, सील-सनेह निधान ॥६७॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरनसरोज निहारी ॥
सगहि भाँति पिय सेवा करिहउँ । मारगजनित सकल छम हरिहउँ ॥
पाँय पत्तारि बैठि नरुद्धाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
छम फन सहित स्थाम तनु देखे । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे ॥
सम महि वृन-तर-भल्लव दासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
चार धार मृदु मूरति जोही । लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभुसँग मोहि चितवनिहारा । मिहबधुहि जिमि ससक सयारा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बनजोगू । तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू ॥

दो०-ऐसेउ वचन कठोर सुनि, जौ न हृदय बिलगान ।

तौ प्रभु विषम वियोग दुरत, सहिहहि पामर प्रान ॥६८॥

अस कहि सीय विकल भइ मारी । वचन वियोग न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
फहेउ कृपाल भानु कुल-नाथा । परिहरि सोच चलहु वन साया ॥
नहिं विपाद कर अबसर आजू । वेगि करहु वन-गवन-समाजू ॥
कहि प्रियवचन प्रिया समुझाई । लगे मातुपद आसिप पाई ॥
वेगि प्रजादुरा मेढब आई । जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥

फिरिहि दसा विधि बहुरि किमोरी । देखिउँ नयन मनोहर जोरी ॥
 सुघरी मुदिन तात कब होइहि । जननी जिअत बदनविधु जोइहि ॥
 दो - बहुरि बन्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात ।

कन्हि बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरपिहउँ गात ॥६६॥
 लखि सनेहकातर महतारी । वचनन आवबिकल भइ भारी ॥
 राम प्रबोध कीन्ह विधि नाना । समउ सनेह न जाइ धराना ॥
 नन जाननी सासुपग लागी । सुनिय माय मैं परम अभागी ॥
 मेवा समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सकल न कीन्हा ॥
 नजब द्योभ जनि छाडिय छोहू । परम कठिन कछु दोष न मोहू ॥
 सुनि सियनचन सासु अकुलानी । दसा कयनिविधि कहीं बखानी ॥
 बारहि धार लाइ उर लीन्ही । वरि धीरज सिरस आसिप दीन्ही ॥
 अचल होउ अहियात तुम्हारा । जन लागि गग-जमुन जल बारा ॥

दो०-सीतहि सासु असीस सिरस, कीन्ह अनेक प्रकार ।

चली नाइ पद पदुम सिर, अतिहित बारहि बार ॥७०॥

समाचार जब लछिमन पाये । व्याकुल बिलप घदन उठि धाये ॥
 कप पुलक तन नयन सनीरा । गहे चरन अतिप्रेम अर्धारा ॥
 कहि न सकत कछु चितवत ठाढे । मीन दीन जनु जल ते काढे ॥
 मोच हृदय निधि का होनिहारा । सब सुर सुकृत सिरान हमारा ॥
 मो कहीं काह कहब रघुनाथा । रसिहहि भवन कि लेइहि साथा ॥
 राम बिलोकि बधु करजोरे । देह गेह सब सन तन तोरे ॥
 बोले वचन राम नयनागर । सील सनेह सरल सुर सागर ॥
 तात प्रेमवस जनि कदराहू । समुक्ति हृदय परिनाम उछाहू ॥

दो०-मातु पिता-गुरु-स्वामि सिरस, सिर धरि करहि सुभाय ।

लहेउ लाभतिन्ह जनम कर, नतर जनम जग जाय ॥७१॥

अस जिय जानि सुनहु सिरस भाई । करहु मातु पितु पद-सेवकाई ॥
 भवन भरत रिपुसूदन नार्ही । राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ॥

मैं बन जाऊँ तुम्हहि लेइ साया । होइ सबहिबिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारु । सब कहँ परइ दुसइ दुख भारु ॥
रहहु करहु सब कर परितोष । नतरु तात होइहि बड दोष ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात अस नीति विचारी । सुनत लपन भये व्याकुल भारी ॥
सियरे बचन सूरि गये कैसे । परमत तुहिन तामरस जैसे ॥

दो०-उतर न आवत प्रेमबस, गहे चरन अशुलाइ ।

नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ ॥७०॥

दीन्ह मोहि सिर नीक गोसाई । लागि अगम अपनो कदराई ॥
नरवर वीर वरम धुर धारी । निगम नीति कहँ तें अधिकारी ॥
मैं निसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला । मदर मेरु कि लेहि मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानौं काह । कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीतिप्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरे सग्रह एक तुम्ह स्वामी । दीनबधु उर-अन्तरजामी ॥
वरम नीति उपदेसिय ताही । कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरनरत होई । कृपासिधु परिहरिय कि सोई ॥

दो०-करुनासिधु सुबधु के, सुनि मृदुबचन रिनीत ।

समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह समीत ॥७१॥

माँगाहु विदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुद्रित भये सुनि रघुवर बानी । भयेउ लाभ बड गइ बडि हानी ॥
हरपित हृदय भातु पहि आए । मनहुँ अध फिरि लोचन पाण ॥
जाइ जननि पग नायेउ माथा । मन रघुनन्दन-जानकि साथी ॥
पूछे मातु मलिन मुख देखी । लपन कही सब कथा विमेरी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा । भृगी देरि दय जुनु चहुँ ओरा ॥
लपन लसेउ भा अनरथ आजू । एहि सनेह बस करब अकाजू ॥
माँगत विदा समय सकुचाई । जाइ सग बिधि कहहि कि नाहीं ॥

दो०-समुक्ति सुमित्रा राम सिय-रूप-सुसील-सुभाउ ।

नृपसनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥७४१॥

धीरज धरेउ कुग्रवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदुवानी ॥
 तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता राम सब भौंति सनेही ॥
 अवध तहाँ जहँ राम निरासू । तहँइ दिवस जहँ भानुप्रकासू ॥
 जौं पै सीय राम बन जाहीं । अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥
 गुरु पितु मातु बधु सुर साई । सेइयहि सकल प्रान की नाई ॥
 राम प्रानप्रिय जीवन जी के । स्वास्थ्यरहित सखा सबही के ॥
 पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते । सब मानियहि राम के नाते ॥
 अस जिय जानि सग बन जाहू । लेहु तात जग जीवनलाहू ॥

दो०-भूरि भागभाजन भयेहु, मोहि समेत बलि जावँ ।

जौं तुम्हरे मन छाडि छल, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४२॥

पुत्रवती जुगती जग सोई । रघुपति भगत जासु सुत होई ॥
 नतरु बाँझ भलि बादि विआनी । रामविमुखसुत ते हित हानी ॥
 तुम्हरोहि भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
 सकल सुकृत कर यड फल एहू । राम सीय पद सहज सनेहू ॥
 राग रोष इरपा मद मोहू । जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू ॥
 सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥
 तुम्ह कहँ बन सब भौंति सुपासू । सँग पितु मातु रामसिय जासू ॥
 जेहि न राम बन लहहि कलेसू । सुत सोइ करहु "इइ उपदेसू ॥

छद-उपदेस यह जेहि जात तुम्हरे, रामसिय सुरा पावहीं ।

पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुरा सुरति बन विसरावहीं ॥

तुलसी सुतहिं सख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिप दई ।

रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

सो०-मातु चरन सिर नाइ, चले तुरत सकित हृदय ।

यागुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागवस ॥७४३॥

गए लपन जहँ जानविनायू । भे मन मुदित पाइ प्रिय सायू ॥
 यदि राम सिय-धरन सुहाये । चले सग नृपमन्दिर आये ॥
 कहहिं परसपर पुर नर नारी । भलि बनाइ निधि घात विगारी ॥
 तन कृस मन दुख बदन मलीने । विवल् मनहुँ भाखी मधु छीने ॥
 कर मीजहिं सिर धुनि पड़िताही । जनु जिन पर प्रहँग अहुलाही ॥
 भइ बड़ि भीर भूप दरनारा । धरनि न जाइ त्रिपाद अपारा ॥
 सचिव उठाइ राउ चैठारे । पहि प्रिय मयन राम पगु धारे ॥
 सियसमेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयेउ भूमिपति भारी ॥

दो०-सीय सहित मुत मुभग दोउ, देखि देखि अहुलाइ ।

चारहिं धार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ ॥५॥

सकइ न बोलि निकल नरनाह । सोकजनित उर दारुन दाह ॥
 नाइ सीस पद अति अनुरागा । उठि रघुनीर बिदा वय ॥
 पितु असीस आयसु मोहि दीनै । हरप समय निममय ॥
 तात किए प्रिय प्रेमप्रमाद । जस जग जाइ होइ ॥
 सुनि सनेहबस उठि नरनाहा । बेटारे रघुपति ॥
 सुनहु तात तुम्ह कहँ मुनि कहँ । राम चगर ॥
 सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईस दे ॥
 करइ जो करम पाव फल सोई । निगम ॥

दो०-अउर करइ अपराध फोड़, ॥

अतिविचित्र भगवतगति, ॥

राय रामराखन हित लागी । ॥
 लखा रामरुख रहत न जानै । ॥
 तन नृप सीय लाइ उर लेन्ती । ॥
 कहि यन के दुख दुसह मुनार । ॥
 सियमन रामचरन-अनुग । ॥
 अउरउ सबहि मीय समुझ । ॥

सचिव नारि गुरुनारि सयानी । सहित मनेह कहहि मृदुबानी ॥
 तुम्ह कहँ तौ न दीन्ह बनवासू । करहु जो कहहि ससुर गुरु-सासू ॥
 दो०-सिख सीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि ।

सरद-चट चदन लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७८॥
 सीय सकुच बस उतर न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकई ॥
 मुनि पट भूपन भाजन आनी । आगे धरि बोली मृदुबानी ॥
 नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छाडिहि भीरा ॥
 सुकृत सुजस परलोक नसाउ । तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥
 अस बिचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननि सिर सुनि सुर पावा ॥
 भूपहि बचन दानसम लागे । करहि न प्रान पयान अभागे ॥
 लोग विकल मुरिछित नरनाह । काह करिअ कछु सूझ न काहू ॥
 राम तुरत मुनिनेष बनाई । चले जनक जननी सिर नाई ॥
 दो०-सजि बन साज समाज सब, वनिता बधु समेत ।

बादि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥७९॥
 निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढे । देखे लोग बिरह दब दाढे ॥
 कहि प्रिय वचन सकल समुझाये । बिप्रवृट रघुबीर बोलाये ॥
 गुरु सन कहि वरपासन दीन्हे । आदर दान बिनयवस कीन्हे ॥
 जाचक दान मान सतोषे । मीत पुनीत प्रेम परितोषे ॥
 नासी दास बोलाइ बहोरी । गुरुहिं, सौं पि बोले कर जोरी ॥
 मय पै सार सँभार गोसाइ । करनि जनक-जननी की नाई ॥
 बारहि बार जोरि जुगपानी । कहत राम सब सन 'मृदुबानी ॥
 सोइ सब भौंति मोर हितकारी । जेहि तें रहे भुआल सुसारी ॥

दो०-मातु सकल मोरे बिरह, जेहि न होहि दुख दीन ।
 सोइ उपाउ तुम्ह करहु सन, पुरजन परमप्रवीन ॥८०॥
 ण्हि त्रिधि राम सबहि समुझावा । गुरु पद पदुम हरपि सिर नावा ॥
 गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥

राम चलत अति भयउ विषादू । सुनि न जाइ पुर आरत नाँदू ॥
कुसगुन लक अवध अतिसोकू । हरष विषाद-बिबस सुरलोक ॥
गइ सुरक्षा तब भूपति जागे । बोलि सुमत्र कहन अस लागे ॥
राम चले उन प्रान न जाहीं । केहि सुख लागि रहत तन माही ॥
एहि तैं कवन व्यथा बलवाना । जो दुख पाइ ताजहि तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू । लेइ रथ सग सरया तुम्ह जाहू ॥

नो०-सुति सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता मुकुमारि ।

रथ चढाइ देखराइ बन, फिरेहु गये दिन चारि ॥८२॥

जाँ नहि फिरहिं धीर दोउ भाई । सत्यसध दृढव्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु फर जोरी । फेरिय प्रभु मिथिलेसकिसोरी ॥
जब सिय कानन देखि डराई । कहेहु मोर सिय अवसरु पाई ॥
सासु ससुर अस कहेउ सदेसू । पुत्रि फिरिय बन बहुत कलेसू ॥
पितृगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ॥
एहि निधि फरेहु उपायकट्ठा । फिरइ त होइ प्रान अलबा ॥
नाहि त मोर मरन परिनामा । कछु न बसाइ भये बिधि वामा ॥
अस कहि मुग्धि परा महिराऊ । राम लग्यन मिय आनि देग्राऊ ॥

दो०-पाड रजायमु नाय सिरु, रथु अतिजेग बनाइ ।

गयउ जहा बाहर नगर, सीयमहित दोउ भाइ ॥८३॥

तब सुमत्र नृप बचन सुनाये । करि निनती रथ राम चढाये ॥
चढि रथ सीयसहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिरु नाई ॥
चलत राम लरि अवध अनाथा । निकल लोग सब लागे साथी ॥
कृपासिधु गृहनिधि समुझावहि । फिरहि प्रेमबस पुनि फिरिआवहि ॥
लागति अवध भयाग्नि भारी । मानहुँ कालराति अंधियारी ॥
घोर जन्तुसम पुर नर नारी । हरषहि एकहि एक निहारी ॥
घर मसान परिजन जनु भूता । सुत हित मोत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं । सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥

दो०-हय गय कोटिन्ह केलिमृग, पुरपसु चातक मोर ।

पिक रधाग सुक सारिका, सारस हस चकोर ॥२४॥

रामप्रियोग निकल सत्र ठाढे । जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिपि काढे ।
नगरसकल वन गहवर भारी । रग मृग विपुल सफल नरनारी ।
निधि कैऊँ किरातिनि कीन्ही । जेहि दवदुमह दसहुँ दिसि दीन्ही ।
सहि न सके रघुनर विरहागी । चले लोग सब न्याकुल भागी ।
सत्रहिं निचार कीन्ह मनमाही । राम लपन सिय विनु सुख नाहीं ।
जहाँ राम तह सनुइ समाजू । विनु रघुबीर अवध नहिं फाजू ।
चले साथ अस मत्र दडाई । सुरदुर्लभ सुग्नसदन बिहाई ।
राम-चरन पफज प्रिय जिन्हहीं । प्रियभोगबस करहिं कि तिन्हहीं ।

दो०-बालक वृद्ध निहाय गृह, लगे लोग सत्र साथ ।

तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥२५॥

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सद्य हृदय दुख भयउ बिसेखी ।
करुनामय रघुनाथ गोसाई । बेगि पाइअहि पीर पराई ।
कहि सप्रेम मृदुवचन सुहाये । बहुविधि राम लोग समुझाये ।
किये धरम उपदेश घनेरे । लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे ।
सील सनेह छाडि नहिं जाई । असमजसबस भे रघुराई ।
लोग सोग-सम-बस गये सोई । कहुक देवमाया मति मोई ।
जबहिं जामजुग जामिनि बीती । राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ।
रोज मारि रथ हौकहु ताता । आन उपाय बनिहि नहि जाता ।

दो०-राम लपन सिय जानि चढ़ि, समुचरन सिरु नाइ ।

सचिन चलायहु तुरत रथ, इत उत रोज दुराई ॥२६॥

जागे सकल लोग भये भोरू । गे रघुनाथ भयउ अतिसोरू ।
रथ कर रोज कतहुँ नहि पावहिं । राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं ।
मनहुँ बारिनिधि बूढ जहाजू । भयउ निकल बड बनिक समाजू ।
गरुहिं एक देहिं उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ।

निंदहि आपु सराहहिं मीना । धिग जीवन रघुवीर-विहीना ॥
जौ पै प्रियवियोग विधि कोन्हा । तौ कस मरन न माँगे दीन्हा ॥
महि विधि करत प्रलाप कलापा । आये अवध भरे परितापा ॥
विषमवियोग न जाइ बखाना । अवधिआस सब राखहि प्राणा ॥

दो०—राम दरस हित नेम व्रत, लगे करन नरनारि ।

मनहुँ फोक फोको कमल, दीन विहीन तमारि ॥८७॥

सीता सचिव सहित दोड भाई । सृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी । कीन्ह दण्डवत हरष बिसेखी ॥
लपन सचिव सिय किये प्रनामा । सबहिं सहित मुख पायउ रामा ॥
गग सकल मुद मगल-मूला । सब सुखकरनि हरनि सब सूला ॥
कहि कहि कोटिक कथाप्रसंगा । राम बिलोकहिं गगतर्गा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई । निबुध-नदी महिमा अधिकारि ॥
मञ्जन कीन्ह पथसम गवऊ । सुचिजल पियत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ स्रमभारू । तेहि स्रम यह लौकिकव्यवहारू ॥

दो०—सुद्ध सच्चिदानन्दमय, कन्द भानु-कुल केतु ।

चरित करत नर अनुहरत, ससृति-सागर-सेतु ॥८८॥

यह सुधि गुह निपाद जब पाई । मुदित लिए प्रिय बन्धु बोलाई ॥
लिय फल मूल भेट भरि भारा । मिलन चलेठ हिय हरष अपारा ॥
करि दण्डवत भेंट धरि आगे । प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह विषस रघुराई । पूछी कुसल निकट बैठाई ॥
नाथ कुसल पदपकज देखे । भयउँ भागभाजन जन लेखे ॥
देव धरनि धन धाम तुम्हारा । मैं जन नीच सहित परिवारा ॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ । थापिय जन सब लोग सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सन सरा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयसु आना ॥

दो०—वरप चारिदस घास बन, मुनि व्रत-धेप अहार ।

ग्रामवास नहि उचित सुनि, गुहहि भयवदुखभारू ॥८९॥

राम लपन सिय-रूप निहारी । कहहि सप्रेम आम नर नारी ॥
 ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन पठ्ये वन जालक ऐसे ॥
 एक कहहि भल भूपति कौन्हा । लोचनलाहु हमहि विधि दीन्हा ॥
 सन निपादपति उर अनुमाना । तरु सिंसुपा मनोहर जाना ॥
 लेइ रघुनाथहि ठाउँ देखावा । कहैउ राम सब भाँति मुहावा ॥
 पुरजन करि जोहारु घर आये । रघुबर सध्या करन सिधाये ॥
 गुह सवाँरि साथरी डसाई । कुस किसलय भयमृदुल मुहाई ॥
 सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि भरि राखेसि आनो ॥

दो०-सिय-सुमत्र भ्राता-सहित, कद मूल फल खाइ ।

मयन कीन्ह रघु वस मनि, पाय पलोरत भाइ ॥६०॥

चठे लपण प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवत मृदुबानी ॥
 कहुक दूरि सजि धानसरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ॥
 गुह बोलाइ पाहरु प्रतीती । ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती ॥
 आपु लपन पहि बैठेउ जाई । कटि माथा सर चाप बढाई ॥
 सोवत प्रभुहि निहारि निपादू । भयउ प्रेमवस हृदय विषादू ॥
 तनु पुलकित जल लोचन बहई । बचन सप्रेम लपन सन कहई ॥
 भूपति भवन सुभाय सुहावा । मुर पति-सदन न पटतर पावा ॥
 गनि भय रचित चारु चौनारे । जनु रतिपति निजहाथ सगारे ॥

दो०-सुचि सुविचित्र सु-भोग-भय, सुमन सुगंध सुवास ।

पलंग मज्जु मनिदीप जहँ, सत्र निधि सकल सुपास ॥६१॥

भिविध वसन उपधान तुराई । छोरफेन मृदु निसद मुहाई ॥
 तहँ सियराम सयन निसि करहीं । निज छवि रति-मनोज मदहरहीं ॥
 ते सियराम साथरी सोये । समित वसन निनु जाहि न जोये ॥
 मात पिता परिजन पुरवासी । सरा सुसील दास अर दासी ॥
 जोगवहि जिन्हहि प्राण फी नाई । महि सोवत तेइ राम गोसाई ॥
 पिता जनक जग निदित प्रभाऊ । ससुर सुरेससम्पा रघुराऊ ॥

रामचन्द्र पति सो बैदेही । सोवत महि विधि धाम न केही ॥
सिय रघुवीर कि कानन जोगू । करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥
श्लो०-कैरवणन्दिनि मन्दमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह ।

जेहि रघुनन्दन जानकिहि, सुराश्रवसर दुखदीन्ह ॥६२॥

मइ दिन-कर-कुल विटप-कुठारी । कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी ॥
भयड विपाद निपादहि भारी । रामसीय महिमयन निहारी ॥
बोले लपन मधुर-मृदु-बानी । ज्ञान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोव सुर दुख कर दाता । निजकृत करम भोग सब आता ॥
जोग वियोग भोग भलमदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फदा ॥
जनम मरन जहँ लगि जगजालू । मपति विपति करम अरु लालू ॥
वरनि धाम धन पुर परिवारू । सरग नरक जहँ लगि व्यवहारू ॥
वेगिय सुनिय गुनिय मन माहीं । मोह मूल परमारथ नाहीं ॥
श्लो०-मपने होइ मिरागि नृप, रक नाकपति होइ ।

जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपच जिय जोइ ॥६३॥

असचिचारि नहि कीजिय रोपू । काहुहि वादि न देइय दोषू ॥
मोहनिसा सब सोधनिहारा । देखिय सपन अनेक प्रकारा ॥
एहि जग जामिनि जागहि जोगी । परमारथी प्रपचवियोगी ॥
जानिय तयहिं जीव जग जागा । जब सबविषय बिलास बिरागा ॥
होइ त्रिवेक मोहभ्रम भागा । तब रघु-नाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथ एह । मन क्रम बचन रामपद नेहू ॥
राम ब्रह्म परमारथरूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल-विकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहि वेदा ॥
श्लो०-भरत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल ।

करत चरित धरि मनुज तन, सुनत मिटहि जगजाल ॥६४॥

सखा समुझि अस परिहरि मोह । सिय-रघुवीर चरन रत होहू ॥
कहत रामगुन भा भिनुसारा । जागे जगभगलदातारा ॥

सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान घटछोर मंगावा ॥
 अनुजसहित सिर जटा घनाये । देखि सुमत्र नयन जल धाये ॥
 हृदय दाह अति घदन मलीना । कह कर जोर वचन अति दीना ॥
 नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लेइ रथ जाहु राम के साथा ॥
 बन देखाइ सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि घेगि दोउ भाई ॥
 लपन राम सिय आनेहु फेरी । ससय सकल सँकोच निवेरी ॥

दो०-नृप अस कहेउ गोसाईं जस, कहिय करठें चलि सोइ ।

करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥६५॥
 तात कृपा करि कीजिय सोई । जा तैं अवध अनाय न होई ॥
 मत्रिहि राम उठाइ प्रयोधा । तात धरममत तुम्ह सब सोधा ॥
 सिबि दधीचि हरिचद नरेसा । सरे धरमहित कोटि कलेसा ॥
 तिदेव बलि भूप सुजाना । धरम धरेउ सहि सकट नाना ॥
 धरम न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बराना ॥
 मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा । तजे तिहँ पुर अपजसु छाना ॥
 सभावित कहँ अपजसलाहू । मरन कोटि-सम दारुन दाहू ॥
 तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिये उतर फिरि पातक लहऊँ ॥

दो०-पितुपद गहि फहि कोटि नति, प्रिनय करघ कर जोरि ।

चिंता कबनिहूँ बात कै, तात करिय जनि मोरि ॥६६॥
 तुम्ह पुनिपितुसम अतिदित मोरे । बिनती करवैं तात कर जोरे ॥
 सबविधि सोइ करतव्य तुम्हारे । दुरा न पाव पितु सोच हमारे ॥
 सुनि रघुनाथ सचिव सवाहू । भयउ सपरिजन त्रिकल निपाहू ॥
 पुनि कछु लपन कही कटुबानी । प्रभु बरजेउ बड अनुचित जानी ॥
 सहुचि राम निजसपथ देवाई । लपन सँदेसु कहिय जनि जाई ॥
 कह सुमत्र पुनि भूप सँदेसू । सहिन सकहि सियबिपिन कलेसू ॥
 जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया । सोइ रघुवरहिं तुम्हहिं करनीया ॥
 नतर निपट अवलबविहीना । मैं न जियव जिमि जल बिनु मीना ॥

दो०-मइके ससुरे सकलसुख, जबहिं जहाँ मन मान ।

तहँ तब रहिहि सुरेन सिय, जब लग बिपत बिधान ॥६७॥

बिनती भूप फीन्ह जेहि भौंती । आरति प्रीति न सो कहि जाती ॥
पितुसँदेस सुनि कृपानिधाना । सियहि दीन्ह सिर कोटि बिधाना ॥
सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारु । फिरहु त सब कर मिटइ खँभारु ॥
सुनि पतिवचन कहति बैदेही । सुनहु प्रानपति परमसनेही ॥
प्रभु करुनामय परमविवेकी । तनु तजि रहित छाँह किमि छोकी ॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई । कहँ चट्रिका चद तजि जाई ॥
पतिहि प्रेममय प्रिय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु ससुर सरिसहितकारी । उतर देउँ फिरि अनुचित भारी ॥

दो०-आरतिबस सनमुख भइउँ, बिलगु न मानव तात ।

आरज-सुत पद कमल निनु, बादि जहाँ लगि नात ॥६८॥

पितु नैभव बिलास मैं डीठा । नृप मनि मुकुट मिलत पद पाठा ॥
सुरनिधान अस पितुगृह मोरे । पियबिहीन मन भाव न भोरे ॥
ससुर चक्रवइ कोसलराऊ । मुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई । अरथ सिंहासन आसन देई ॥
ससुर एतादिस अवधनिवासू । प्रिय परिवारु मातुसम सासू ॥
बिन रघुपति पद पदुम परागा । मोहि कोउ सपनेहु सुखद न लागा ॥
अगम पथ बन भूमि पहारा । करि केहरि सर सरित अपारा ॥
कोल किरात कुरग बिहगा । मोहि सब सुरजद प्रान पति-सगा ॥

दो०-सासु ससुर सन मोरि हुति, बिनय करब परि पाय ।

मोरि मोच जनि करिय कछु, मैं बन सुखी सुभाय ॥६९॥

प्राननाथ प्रियदेवर साथा । घोर घुरीन धरे वनु भाथा ॥
नहिं मग सम भ्रम दुरा मन मोरे । मोहि लगि सोच करिय जनि भोरे ॥
सुनि सुमत्र सिय सीतलपानी । मयउ विकल जनु फनि मनिहानी ॥
नयन सूझ नहि सुनइ न काना । कहिन सकइ कछु अति अकुलाना ॥

राम प्रबोध कीन्ह बहुभाँती । तदपि होत नहि सीतल छाती ॥
जतन अनेक साथहित कीन्है । उचित उत्तर रघुनन्दन दीहै ॥
मेदि जाइ नहि रामरजाई । कठिन करमगति कछु न बसाई ॥
राम तपन सिय पद सिर नाई । फिरेउ अनिक जिमि मूर गवाई ॥

दो०-रथ हाँकेउ हय रामवन, हेरि हेरि हिहिनाहिं ।

हेरि निपाव बिषान्वस, धुगहि सीम पछिताहि ॥१००॥

जासु ब्रियोग बिकल पसु ऐसे । प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे ॥
बरनस [राम सुमत्र पठाये । सुरसरितीर आप तब आये ॥
माँगी नाव न केवट आना । कहइ तुम्हार मरम मै जाना ॥
धरण-कमल-रज कहें सज कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तैं न काठ कठिनाई ॥
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उडाई ॥
णहि प्रतिपालउँ सब परिचारु । नहिं जानउँ कछु अउर कबारु ॥
जौ प्रभु पार अबसि गा चहइ । तौ पदपदुम परारन कहइ ॥

छट-पदपदम धोइ चढाइ नाव न नाथ उतराई चहउँ ।

मोहि राम राउर आन दसरथसपथ सब साँची कहउँ ॥

बर तीर मारहु लपन पै जब लगि न पाय पखारिहउँ ।

तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहउँ ॥

सो०-सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे ।

बिहँसे करना गेन, चितइ जानकी-लपन-तन ॥१०१॥

कृपासिंधु बोले मुसफाई । सोइ कर जेहि तब नाव न जाई ॥
बेगि आनु जल पाय पर्यारु । होत बिलब उतारहि पारु ॥
जासु नाम मुमिरत एक बारा । उतरहि नर भयसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपाल केवट हि निहोरा । जेहि जग किय तितैं पगहुँ तेथोरा ॥
पदनख निरगि देउसरि हरपी । सुनि प्रभुबचन मोह मति करपी ॥
केवट रामरजायसु पावा । पानि कठयता मरि लेइ आवा ॥

अति आनद उमग अनुरागा । चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरपि सुमन सुर सकल सिद्धाही । णहि सम पुन्य पुँज कोउ नाही ॥
दो०-पद परारि जलपान करि, आप सहित परिवार ।

पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लेइ पार ॥१०२॥

उतरि ठाढ भये सुरसरिरेता । सीय राम गुह लपन समेता ॥
केवट उतरि दडवत कीन्हा । प्रभुहिसकुच ण्हिनहिं कछु दीन्हा ॥
पियहिय की सिय जाननिहारी । मनिमुँदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपाल लेहु उतराई । केनट चरन गहेउ अकुलाई ॥
नाथ आज हम काह न पावा । मिटे दोष दुख-दारिद-दावा ॥
बहुत काल मै कीन्हि मजूरी । आज दीन्ह विधि बनि भलि भूरी ॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे । दीनदयाल अनुग्रह तोरे ॥
किन्ती बार मोहि जोइ देवा । सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा ॥
दो०-बहुत कीन्ह प्रभु लपन सिय, नहिं कछु केवट लेइ ।

विद्या कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बर देइ ॥१०३॥

तब मज्जनकरि रघुकुल नाथा । पूजि पारथिव नाथउ माथा ॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मात मनोरथ पुरउबि मोरी ॥
पति-देवर सँग कुसल बहोरी । आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ॥
मुनि सियबिनय प्रेम रस सानी । भइ तब बिमल बारि बरवानी ॥
मुनु रघुबीर प्रिया बैदेही । तब प्रभाउ जग बिदित न केही ॥
लोकप होहि यिलोकत तोरे । तोहि सेवहिं सय सिधि कर जोरे ॥
तुम्ह जो हमहि बहि प्रिय सुनाई । कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बढाई ॥
तन्पि देनि मैं देनि असीसा । सफल होन हित निजयागीसा ॥

दो०-प्राननाथ देवरसहित, कुसल कोसला आइ ।

पूजिहि सब मनकामना, मुजस रहिहि जग छाइ ॥१०४॥

गगयचन मुनि मगलमूला । मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाइ । सुनन सख मुख भा उर दाह ॥

दीन बचन गुह कह कर जोरी । विनय सुनहु रघु-कुल मनि मोरी
जाय साय रहि पद्य डेरार्ह । करि दिन चारि चरनसेवकाई
जहि वन जाइ रहन रघुआई । परनकुटी में करनि सुहाई
तब मोहि कहँ जसि देन रजाई । सोइ करिहउँ रघु-वीर-दोहाई
सदजसनेह राम लखि तासू । सग लीन्ह गुह इदय हुलासू
पुनि गुह प्राति बोलि सज लीन्हे । करि परितोष विदा तब कीन्हे
दो०-तय गनपति सिय सुमिरि प्रभु, नाइ मुरसरिहि माथ ।

सखा अनुज सिय-सहित धन, गवन कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

तेहि दिन भयउ विटप तर चासू । लपन संगी सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुआई । तीरथराजु देखि प्रभु जाई ॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रियनारी । माधवसरिस मीत हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भंडारू । पुन्य प्रदेश देस अति चारू ॥
छेत्र अगम गढ गाढ सुहावा । सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बरवीरा । कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥
सगम सिंहासन सुठि सोहा । छत्र अद्ययवट मुनिमन मोहा ॥
धर्वर जमुन अर गग तरगा । दखि होहिं दुख दारिद भगा ॥
दो०-मेवहि सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मन काम ।

बंदी वेद पुरान-गन, कहहि निमल गुनग्राम ॥१०५॥

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाउ । कलुष पुज कु जर-भृग राज ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा । सुखसागर रघुवर सुख पावा ॥
कहि सिय लपनहि सगहि सुनाई । श्रीमुख तीरथ राज उड़ाई ॥
करि प्रनाम देखत वन बागा । कहत महातम अतिअनुरागा ॥
एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी । सुभिरत सकल सुमगल देनी ॥
मुदित नहाइ कीन्ह सिवसवा । पूजि जयोबिधि तीरथदेवा ॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये । करत दण्डवत मुनि उर लाये ॥
मुनि-मन मोद न कछु कहि जाई । ब्रह्मानन्दरासि जनु पाई ॥

दो०-दीन्ह असीस मुनीस उर, अति अनद अस जानि ।

लोचनगोचर सुकृतफल, मनहुं किये बिधि आनि ॥१०७॥

कुसल प्रसन्न करि आसन दीन्हे । पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥

कन्द मूल फल अकुर नीके । दिये आनि मुनि मनहुं अमीके ॥

सीय लपन-जन-सहित सुहाये । अति रुचि राम मूलफल स्नाये ॥

भये विगतस्त्रम राम सुखारे । भरद्वाज मृदुवचन उचारे ॥

आजु सुफल तप तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग धिरागू ॥

सुफल सकल-सुभ साधन साजू । राम तुम्हहि अवलोकित आजू ॥

लाभ अवधि सुख अवधि नदूजी । तुम्हरे दरस आस सब पूजी ॥

अब करि कृपा देहु बर एह । निज-पद सरसिज सहज सनेह ॥

दो०-करम बचन मन छाडि छल, जब लगि जन न तुम्हार ।

तब लगि सुख सपनेहुं नहिं, किये कोटि उपचार ॥१०८॥

मुनि मुनिबचन राम मकुचाने । भाव भगति आनन्द अधाने ॥

तब रघुवर मुनि सुजस सुहावा । कोटि भौंति कहि सबहि सुनावा ॥

सो बड़ सो सय-गुन-गन गेह । जेहि मुनीस तुम्ह आदर देह ॥

मुनि रघुवीर परसपर नयहीं । बचन अगोचर सुख अनुभवहीं ॥

यह सुधि पाइ प्रयागनियासी । बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥

भरद्वाजआत्म मय आये । देखन दसरथसुधन सुहाये ॥

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू । मुदित भये लहि लोचन-लाहू ॥

देहि असीस परम सुख पाई । फिरे सगाहत सुन्दरताई ॥

दो०-राम कीन्ह बिसाम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ ।

चले सहित सिय लपन जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥१०९॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं । नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं ॥

मुनि मन बिहँसि राम सन कहहीं । सुगम सकल मग तुम्ह फहँ अहहीं ॥

नाथ लागि मुनि सिष्य बोलाये । मुनि मन मुदित पचासक आये ॥

बिन्ह राम पर प्रेम अपारा । सकल कहहि मग दीख हमारा ॥

मुनि बटु चारि सग तब दीन्हे । जिन्ह बहुजन्म सुकृत सब कीन्ह ।
 करि प्रनाम रिपि आयसु पाई । प्रमुदित हृदय चले रघुआई ।
 ग्राम निकट निकसहि जब आई । देखहि दरस नारिनर धाई ।
 होहि सनाथ जनमफल पाई । फिरहि दुखित मन सग पठाई ।
 दो०-बिदा किये बटु विनय करि, फिरे पाइ मन काम ।

उतरि नहाये जमुजल, जो सरीरसम स्याम ॥११०॥

सुनत तीरबासी नरनारी । धाये निज निज काज बिसारी ।
 लपन—राम—सिय—सुन्दरताई । देखि करहि निज भाग्य बडाई ।
 अति लालसा सबहिं मन माहीं । नाउँ गाउँ धूमत सकुचाई ।
 जे तिन्ह महीं बयबृद्ध मयाने । तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने ।
 सकलकथा तिन्ह सबहि सुनाई । बनहि चले पितुआयसु पाई ।
 सुनि सबिपाद भफल पछिताई । रानी राय कीन्ह भल नाहीं ।
 तेहि अवसर एक तापस आया । तेजपुज लघुबयस सुहाया ।
 कवि अलपितगति धेप बिरागा । मन बच करम राम अनुरागी ।

दो०-सजल नयन तन पुलकि निज, इष्टदेव पहिचानि ।

परेड दण्ड जिमि धरनितल, दसा न जाइ बरानि ॥१११॥

राम सप्रम पुलकि उर लावा । परमरक जनु पारस पावा ।
 मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ । मिलत धरे तन कह सब कोऊ ।
 बहुरि नपन पायन्ह सोइ लागा । लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा ।
 पुनि सिय-चरन धूरि धरि सीसा । जननि जान सिसु दीन्ह असीसा ।
 कीन्ह निपाद दढवत तेही । मिलेउ मुदित लखि रामसनेही ।
 पियत नयनपुट रूप पियूखा । मुदित मुअसनु पाइ जिमि भूखा ।
 ते पितु मातु कहहु सखि कैसे । जिन्ह पठये बन बालक तेसे ।
 राम-लखन सिय रूप निहारी । होहि सनेह विकल नरनारी ।

दो०-तब रघुवीर अनेकविधि, सरसहि सिरावा दीन्ह ।

रामरजायसु सीस धरि, भवन गवन तेइ कीन्ह ॥११२॥

पुनि सिय राम लपन कर जोरो । जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी ॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई । रवितनजा कै करत बढाई ॥
पथिक अनेक मिलहि मग जाता । कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राजलपन सब अग तुम्हारे । देखि सोच अति हृदय हमारे ॥
मारा चलहु पयादेहि पाये । ज्योतिष झूठ हमारेहि भाये ॥
अगम पथ गिरि कानन भारी । तेहि महुँ साये नारि सुकुमारी ॥
करि केहरि बन जाइ न जोई । हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई । फिरब बहोरि तुम्हहि सिर नाई ॥

दो०-एहि विधि पृच्छहि प्रेमबस, पुलक गात जल नैन ।

कृपासिंधु फेरहि तिन्हहि, कहि निनीत मृदु बैन ॥११३॥

जे पुर गाँव बसहि मग माहीं । तिन्हहि नाग-सुर-नगर सिहाही ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये । धन्य पुन्यमय परम मुहाये ॥
जहँ जहँ रामचरन चलि जाहीं । तिन्ह समान अमरावति नाहीं ॥
पुन्यपुज मग निकट निवासी । तिन्हहि सराहहिं सुर पुर-वासी ॥
जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं । सीता-लपन सहित धनस्यामहि ॥
जेहि सर सरित राम अगगाहहिं । तिन्हहि देव-सर मरित सराहहिं ॥
जेहि तनुतर प्रभु बैठहिं जाई । करहिं कलपतर तासु बढाई ॥
परसि राम पद पदुम परागा । मानति भूमि भूरि निजभागा ॥

दो०-छाँह करहिं धन बिबुधगन, घरपहि सुमन सिहाहि ।

देखत गिरि धन त्रिहंग भृग, राम चले मग जाहि ॥११४॥

सीता लपन-सहित रघुराई । गाँव निकट जब निकसहि जाई ॥
मुनि मध बाल वृद्ध नरनारी । चलहिं तुरत गृह काज बिसारी ॥
राम लपन सियरूप निहारी । पाइ नयनफल होहिं सुखारी ॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा । सब भये मगन देखि दोउ वीरा ॥
परनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहिं जनु रकन्ह सुर मनि-ढेरी ॥
गकन्ह एक चोलि सिस देहीं । लोचननाहु लेहु छन एहीं ॥

रामहिं देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहि सँग लागे ॥
एक नयामग छवि उर आनी । होहि सिथिल तन मन बरबानी ॥

दो०-एक देखि बटछाँह मलि, टासि मृदुल वृन पात ।

कहहिं गवाँइय छिनुक सम, गवनव अबहिं कि प्रात ॥१११॥

एक कलस भरि आनहिं पानी । अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी ॥
सुनि प्रियनयन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुसील विसेली ॥
जानी समित सीय मन माहीं । घरिक विलम्ब फीन्ह बटछाहीं ॥
मुदित नारिनर देखहिं सोभा । रूप अनूप नयन मन लोभा ॥
एकटक सब जोहहिं चहुँ ओरा । रामचद्र - मुम्वचद्र - बकोरा ॥
तरुन-तमाल धरन तन सोहा । देखत कोटि मदन मन मोहा ॥
दामिनिवरन लपन सुठि नीके । नरसिख सुभग भावते जोके ॥
मुनिपट कटिन्ह फसे तूनीरा । सोहहिं करकमलनि धनुवीरा ॥

दो०-जटा मुकुट सीसनि सुभग, उर मुज नयन प्रिसाल ।

सरद परब बिधु-बदन बर, लसत स्वेद कन-जाल ॥ १११६ ॥

वरनि न जाइ मनोहर जोरी । सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम - लपन - सिय - सुदरता । सब चितवहिं चित मन मतिलाई ॥
थके नारि नर प्रेम पियासे । मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे ॥
सीयसमीप प्रामतिय जाही । पूछत अतिसनेह सकुचाही ॥
घार घार सब लागहिं पाये । कहहिं बचन मृदु सरल सुभाये ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं । तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं ॥
स्वामिनि अविनय छमबिहमारी । बिलगु न मानव जानि गँवारी ॥
राजकुअर दोउ सहज सलोने । इन्हें लहि दुति मरकत सोने ॥

दो०-स्यामल गौर किसोर बर, सुदर सुखमा ऐन ।

सरद-मर्बरी नाथ-मुख, सरदसरोरुह नैन ॥ ११७ ॥

कोटि मनोज लजावाहिारे । सुमुख कहहु को अबहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहभय मजुल बानी । सकुचि सीय मन महुँ मुसुकानी ॥

तिनहि बिलोकि बिलोकति घरनी । दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ॥
 सकुचि सप्रेम बाल-भृग-नैनी । बोली मधुरबचन पिकवैनी ॥
 सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नाम लपन लघुदेवर मोरे ॥
 बहुरि बदनविधु अचल ढाँकी । पियतन चितइ भौह करि वाँकी ॥
 रजनमजु तिरीछे नैननि । निजपति कहैउ तिन्हहिँ सियसैननि ॥
 भई मुदित सब ग्रामवधूटी । रकन्ह रायरासि जनु लूटी ॥
 दो०-अति सप्रेम सियपाय परि, बहुविधि देहिँ असीस ।

सदा सोहागिन होहु तुन्ह, जब लगि महि अहिसीस ॥११८॥
 पारवती सम पतिप्रिय होहु । देवि न हम पर छाडव छोहु ॥
 पुनि पुनि बिनय करिय कर जोरी । जौँ एहि मारग फिरिय बहोरी ॥
 दरसन देब जानि निज दासो । लखी सीय सब प्रेमपियासी ॥
 मधुरबचन कहि कहि परितोपी । जनु कौमुदी कुमुदिनी पोपी ॥
 तथहि लपन रघुवररूप जानी । पूछैउ मगु लोगन्हि मृदुबानी ॥
 सुनत नारिनर भये दुरगारी । पुलकित गात बिलोचन बारी ॥
 मिठा मोद मन भये मलीने । विधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ॥
 समुक्ति करमगति धीरज कीन्हा । मोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा ॥

दो०-लपन जानकी सहित तव, गवन कीन्ह रघुनाथ ।

फेरे सब प्रियबचन कहि, लिये लाइ मन साथ ॥ ११९ ॥

फिरत नारिनर अति पछिताहीं । दैवहि दोष देहिँ मन माहीं ॥
 सहित निपाद परसपर कहडी । बिधि करतउ उलटे सब अहहीं ॥
 निपट निरकुम निठुर निसकू । जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलकू ॥
 रूप कलपतरु सागर सारा । तेहि पठये बन राजकुमारा ॥
 जौँ पै इन्हहिँ दीन्ह बनबासू । कीन्ह बादि विधि भोगनिलासू ॥
 ए विचराह मग बिनु पदत्राना । रचे बादि निधि वाहन नाना ॥
 ए महि पराह डासि कुसपाता । सुभगसेज कत सृजत विधाता ॥
 तरु-वर-वास इन्हहिँ निधि दीन्हा । धवलधाम रचि रचि स्रम कीन्हा ॥

दो -जौं ए मुनि पट धर जटिल, सुदर मुठि सुकुमार ।

विविधमौंति भूपन बसन, बादि किये करतार ॥ १२ ॥

जौं ॥ क मूल फल खाहों । बादि सुधादि असन जग माहीं ॥
एक कहति ए सहज सुहाये । आप प्रगट भये विधि न बनाये ॥
जहें लगि वेद कही विधिकरनी । स्रजन नयन मन गोचर बरनी ॥
देखहु र्योजि भुवन दसचारा । कहें अस पुरुष कहों अस नारा ॥
इन्हहि देखि विधि मनु अनुरागा । पटतर जोग बनावइ लागी ॥
कीन्ह बहुत मम एक न आये । तेहि इरिषा बन आनि दुराये ॥
एक कहति हम बहुत न जानहि । आपुहि परम वन्य करि मानहि ॥
ते पुनि पुन्यपुज हम लेखे । जे देखिहि देखहि निन्ह देखे ॥

दो०-एहि विधि कहि कहि वचन प्रिय, लेहि नयन भरि नीर ।

किमि चलहहि मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥ १०१ ॥

नारि सनेह बिकलबस होहीं । चकई सौंम समय जनु सौंदी ॥
मृदु-पद कमल कठिन मगु जानी । गहवर हृदय कहहि बरबानी ॥
परसत मृदुल चरन अरनारे । सकुचति महि जिम हृदय हमारा ॥
जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा । कस न सुमनमय मारग कीहा ॥
जौं माँगा पाइय निधि पाहीं । एरसिअहि सखि आसिन्ह माहीं ॥
जे नरनारि न अवसर आये । तिन्ह सिय राम न देखन पाय ॥
सुनि सुरुष चूकहि अकुलाई । अब लगि गये कहों लगि भाई ॥
समरथ धाइ बिलोकहि जाई । प्रमुदित फिरहि जनमफल पाई ॥

दो०-अबला बालक वृद्धजन, कर भीजहि पछिताहि ।

होहि प्रेमवस लोग इमि, राम जहाँ जहें जाहि ॥ १०० ॥

गाँव गाँव अस होइ अनन्द । देखि भानु कुल कैरव चन्द ॥
जे यह समाचार सुनि पावहि । ते नृप रानिहि दोष लगावहि ॥
कहति एक अतिमल नरनाह । दीन्ह हमहि जेहि लोचनलाह ॥
कहति परसपर लोग लोगी । बार्ते सरल सनेह सोहाई ॥

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये । धन्य सो नगर जहाँ ते आये ॥
 धन्य सो देस सैल वन गाऊँ । जहँ जहँ जाहिँ धन्य सो ठाऊँ ॥
 सुख पायउ विरचि रचि तेही । ए जेहि के सन भौति सनेही ॥
 राम-लखन सिय कथा सुहाई । रही सकल मग कानन धाई ॥

दो०-एहि विधि रघु-कुल-कमल रचि, मग लोगन्ह सुख देत ।

जाहिँ चले देरत निपिन, मिय सौमित्र समेत ॥१२३॥

आगे राम लपन बने पाछे । तापसबेष विराजत काछे ॥
 उभय बीच सिय सोहति कैसी । ब्रह्म - जीव - विच माया जैसी ॥
 बहुरि कहउँ छवि जसि मन बसई । जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥
 उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही । जनु बुध विधु बिच रोहिनि सोही ॥
 प्रभु पद रेख बीच विच सीता । धरति चरन मग चलति समीता ॥
 सीय - राम - पद - अक उराएँ । लपन चलहि मग दाहिन बाएँ ॥
 राम - लपन - सिय प्रीति सुहाई । वचन अगोचर किमि कहि जाई ॥
 मग मृग मगन देखि छवि होही । लिये चोरि चित राम बढोही ॥

दो०-जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सियसमेत दोउ भाइ ।

भय-मग अगम अनद तेइ, निनु छम रहे सिराइ ॥१२४॥

अजहुँ जासु उर सपनेहु काउ । बसहि लपन सिय राम बढाउ ॥
 राम वाम पथ पाइहि सोई । जो पथ पाव कवहुँ मुनि कोई ॥
 तब रघुनीर ममि सिय जानी । देखि निकट नद सीतल पानी ॥
 तहँ बसि कद मूल फल म्याटे । प्रात नहाइ चले रघुराई ॥
 देखत यन सर सैल सुहाये । बालमीकि आश्रम प्रभु आये ॥
 राम दीप मुनिनास सुहायन । सुन्दर गिरि कानन जल पावन ॥
 सरनि सरोज निटप वन फूले । गुँजत मजु मधुप रस भूले ॥
 मग मृग निपुल कोलाहल करही । विरहित वैर मुदित मन चरही ॥

दो०-सुचि सुदर आश्रम निरसि, हरये राजियनैन ।

मुनि रघु वर आगमन मुनि, आगे आयउ लैन ॥१२५॥

मुनि कहँ राम दहवत कीन्हा । आसिरवाद विप्रवर दीन्हा ॥
 देखि रामछत्रि नयन जुडाने । करि सनमान आत्ममहि आने ॥
 मुनिवर अतिथि प्रानप्रिय पाये । तन मुनि आसन दिये सुहाये ॥
 कद मूल फल मधुर मँगाये । सिय सौमित्र राम फल साये ॥
 बालमीकि मन आनँद भारी । मगलमूरति नयन निहाए ॥
 तन करकमल जोरि रघुराई । बोले बचन स्रवन-सुख-राई ॥
 तुम्ह त्रि काल दरसी मुनिनाथा । त्रिख ददर जिमि तुम्हरे हाया ॥
 अस कहि प्रभु सन कथा बजानी । जेहि जेहि भौंति दीन्ह घन रानी ॥

दो०-तात बचन पुनि मातुहित, भाइ भरत अस राउ ।

मौ कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सन मम पुन्यप्रभाउ ॥१०६॥
 देखि पाय मुनिराय तुम्हारे । भये सुकृत सब सुफल हमारे ॥
 अब जहँ राउर आयसु होई । मुनि उदबेग न पावइ कोई ॥
 मुनि तापस जिन्ह तें दुख लहहीं । ते नरेस निनु पावक दहहीं ॥
 मगल मूल विप्र परितोष । दहइ कोटि कुल भू-सुर-रोष ॥
 अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ । सिय-सौमित्र-सहित जहँ जाऊँ ॥
 तहँ रचि रुचिर परन वन शाला । बास करउँ कछु काल कृपाला ॥
 सहज सरल सुनि रघुवरजानी । साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी ॥
 कस न कहहु अस रघु कुल-केतू । तुम्ह पालक सवत स्रुतिसेतू ॥

छंद-स्रुति-सेतु पालक राम तुम्ह जगदीसमाया जानकी ।

जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥

जो सहस सीस अहीस महि धरु लपन स चराचर घनी ।

सुरकाज धरि नरराज तनु चल दलन खल-निसिचर अनी ॥

सो०-राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धिपर ।

अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥१०७॥

जग पेसन तुम्ह देखनिहारे । विधि हरि-समु-नचावनिहारे ॥

वेड न जानहि मरम तुम्हारा । अउर तुम्हहि को जाननिहार ॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनार्इ । जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई ।
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनदन । जानहि भगत भगत उर चदन ॥
चिदानंदमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नरतनु धरेउ सत-सुर-काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड मोहहि बुध होहि सुरगारे ॥
तुम्ह जो कहहु करहु सब साँचा । जस काखिय तस चाहिय नाँचा ॥

दो०-पूछेहु मोहि कि रहउँ कह, मैं पूछत सकुचाउँ ।

जहै न होहु तह देहु कहि, तुम्हहि-देखावउँ ठाउँ ॥१२८॥

सुनि सुनिअचन प्रेमरस साने । सकुचि राम मनमह मुसकाने ॥
बालमीकि हँसि कहहि बहोरी । बानी मधुर अभियरस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता । जहाँ बसहु सिय लपण-समेता ॥
जिन्ह के स्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहि निरतर होहि न पूरे । तिन्हके हिय तुम्ह कह गृह रूटो ॥
लोचन चातक जिन्ह करि रापे । रहहि दरस जलधर अभिलापे ॥
निदरहि सरित सिंधु सर भारी । रूपबिंदु जल होहि सुरगारी ॥
तिन्ह के हृदयसदन सुप्रदायक । बसहु बधु सिय-सह रघुनायक ॥

दो०-जस तुम्हार मानस बिमल, हसिनि जीहा जासु ।

मुकताफल गुनगत चुनइ, राम बसहु मन तासु ॥१२९॥

प्रमुप्रसाद सुचि सुभग सुवासा । सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं । प्रमुप्रसाद पट भूपन घरहीं ॥
सीस नवहि सुर गुरु-द्विज देखी । प्रीतिसहित करि भिनय बिसेखी ॥
कर नित करहि रामपद पूजा । रामभरोस हृदय नहि दूजा ॥
चरन रामतीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
मन्त्रराज नित जपहि तुम्हारा । पूजहि तुम्हहि सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहि बिधि नाना । बिप्र जेवाँइ देहि बहुदाना ॥
तुम्हते अधिक गुरुहि निय जानी । सकल भाय सेवहि सनमानी ॥

दो०-सब करि मोंगहि एकु फल, राम-चरन रति होउ ।

तिन्ह के मनमदिर बसहु, सिय रघुनदन दोउ ॥१३०॥
 काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
 जिन्ह के कपट दभ नहिं भाया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
 सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख-सरिस प्रससा गारी ॥
 कहहिं सत्य प्रियवचन विचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
 तुम्हहिं छाटि गति दूसरि नार्हा । राम बसहिं तिन्ह के मनमार्ही ॥
 जननीसम जानहिं परनारी । धन पराव विपतें निष भारी ॥
 जे हरपहि परसपति देखी । दुखित होहिं परविपति विसेली ॥
 जेन्हहि राम तुम्ह प्रान पियारे । तिन्ह के मन सुभसदन तुम्हारे ॥

दो०-स्वामि सरा पितु मातु गुरु, जिन के सब तुम्ह ताव ।

मनमदिर तिन्ह के बसहु, सीयसहित दोउ भ्रात ॥१३१॥
 अवगुन तजि सब के गुन गहर्ही । विप्र धेनु हित सुकट सहर्ही ॥
 नीतिनिपुन जिन्ह कह जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका ॥
 गुन तुम्हार समुझि निजदोसा । जेहि सब भौंति तुम्हार भरोसा ॥
 रामभगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित वैदेही ॥
 जाति पाँति धन वरम बडाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
 सब तजि तुम्हहि गहइ लउ लाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥
 सरग नरक अपवरग समाना । जहँ तहँ देख घरे धनुनाना ॥
 मन बच करम जो राउर चेरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥

दो०-जाहि न चाहिय कउहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह ।

बसहु निरतर तासु मन, सो राउर निजगेह ॥१३२॥
 एहि त्रिधि मुनिउर भवन देगाये । वचन सप्रेम राम मन भाये ॥
 बह मुनि मुनहु भानु डुल नायक । आसमु कहउँ समय सुखदायक ॥
 चित्रकूट गिरि परहु निवास । तहँ तुम्हार सब भौंति सुपास ॥
 सैल मुद्रावन पानन चारु । करि केहरि-मृग बिहंग विहार ॥

नदी पुरीत पुरान बसानी । अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ॥
सुरसरिधार नाउँ मदाकिनि । जो सब पातक-पोतक-डाकिनि ॥
अत्रि आदि मुनि वर बहु बसही । करहिं जोग जप तप तन कसही ॥
चलहु सफल स्रम सब कर करहु । राम देहु गौरव गिरिधरहु ॥

दो०-चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ ।

आइ नहाये सरितवर, सियसमेत दोड भाइ ॥१३३॥

रघुनर कहेउ लपन भल घाटू । करहु कतहुँ अज ठाहर ठाटू ॥
लपन वीक्ष पय उतर करारा । चहुँदिसि फिरेउ धनुष जिमिनारा ॥
नदी पनच सर सम दम दाना । सकलकलुष कलिसाउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुरुइ न चात मार मुठिभेरी ॥
अस कहि लपन ठाँव देखराया । थल बिलोकि रघुवर मुख पाया ॥
रमेउ राममन देवन्ह जाना । चले सहित सुरपति परधाना ॥
कोल किरात-बेष सब आये । रचे परन-रुन सदन सुहाये ॥
परनि न जाहिं मजु दुइ माला । एक ललित लघु एक बिसाला ॥

दो०-लपन-जानकी सहित प्रभु, राजत परन निकेत ।

सोह मदन मुनिनेप जनु, रति रितु-राज-समेत ॥१३४॥

अमरनाग किनर दिसिपाला । चित्रकूट आये तेहि काला ॥
राम प्रनाम कीन्ह सत्र काहू । मुदित देव लहि लोचनलाहू ॥
वरपि सुमन कठ देवसमाजू । नाथ सनाथ भये हम आजू ॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये । हरपित निज निज-सदन सिधाये ॥
चित्रकूट रघुनन्दन छाये । समाचार मुनि मुनि मुनि आये ॥
आवन देखि मुदित मुनिवृदा । कीन्ह दृढवत रघुबुल-चदा ॥
मुनि रघुवरहि लाइ उर लेहीं । सुफल होन हित आसिप देहीं ॥
सिय सौमित्र-राम छवि देराहि । साधन सकल मफल करि लेसहि ॥

दो०-जयाजोग सनमान प्रभु, बिदा किये मुनिवृन्द ।

करहिं जोग जप जागतप, निज आस्रमनि सुद्वन्द ॥१३५॥

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई । हरपे जनु नवनिधि घर आई ॥
 कद मूल फल भरि भरि दोना । चले रक जनु लूटन सोना ॥
 तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता । अपर तिन्हहिं पूछहिं मग जाता ॥
 कहत सुनत रघुवीर निकार्ई । आइ सबन्हि देखे रघुआई ॥
 करहिं जोहारु भेंट धरि आगे । प्रमुहिं बिलोकहि अति अनुरागे ॥
 चित्रलिखे जनु जहँ तहँ ठाढे । पुलक सरीर नयन जल बाढे ॥
 राम सनेहमगन सब जाने । कहि प्रियवचन सकल सनमाने ॥
 प्रमुहि जोहारि बहोरि बहोरी । बचन विनोत कहहिं कर जोरी ॥

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रमुपाय ।

भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय ॥१३६॥

धन्य भूमि बन पथ पहारा । जहँ जहँ नाथ पाउँ तुम्ह घारा ॥
 धन्य बिहँग मृग काननचारी । सफल जनम भये तुम्हहिं निहारी ॥
 हम सब वन्य सहित परिवारा । दीख दरस भरि नयन तुम्हारा ॥
 कौन्ह वास भल ठाउँ बिचारी । इहाँ सकल रितु रह्य सुखारी ॥
 हम सब भौंति करवि सेवकाई । करि केहरि अहि बाघ बर्राई ॥
 बन घेहड गिरिकदर खोहा । सब हमार प्रमु पग पग जोहा ॥
 जहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलावब । सर निरम्बर भल ठाउँ देखाव ॥
 हम सेवक परिवार समेता । नाथ न सकुचन आयसु देता ॥

दो०—वेदवचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुनापेन ।

वचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बैन ॥१३७॥

रामहिं केवल प्रेम पियारा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
 राम सकल वनचर तब तोपे । कहि मृदुवचन प्रेम परिपोये ॥
 विदा किये सिरु नाइ सिधाये । प्रभुगुन कहत सुनत घर आये ॥
 यदि विधि सियसमेत दोउ भाई । बसहिं विपिन सुर-मुनि सुखदाई ॥
 जय तें आइ रहे रघुनायक । तब तें भा वनु मंगलदायक ॥
 फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना । मजु बलित बर धेलि धिताना ॥

सुरतरु-सरिस सुभाय सुहाये । मनहुँ विबुधजन परिहरि आये ॥
गुज मजुतर मधुकर सैनो । त्रिविध वयारि बहइ सुरदेनी ॥
दो०-नीलकण्ठ कलकठ सुक, चातक चब चकोर ।

भाँति भाँति घोलहिं विहग, सबनसुरद चितचोर ॥१३८॥

करि केहरि कपि कोल कुरगा । विगतबैर विचरहिं सब सगा ॥
फिरत अहेर रामछनि देखी । होहिं मुदित मृगवृद प्रियेरी ॥
विबुधविपिन जहँ लगि जगमार्ही । देखि रामजन सकल सिंहाही ॥
सुरसरि सरसइ दिन-कर कन्या । मेकलसुता गोदाधरि धन्या ॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना । मदाकिनि कर करहिं बसाना ॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलास । मंदर मेरु सकल सुरवास ॥
सैल हिमाचल आदि जेते । चित्रकूटजस गावहिं तेते ॥
विंध मुदितमन सुरा न समाई । स्रम विनु विपुल बडाई पाई ॥

दो०-चित्रकूट के विहंग मृग, जेलि विटप वृज जाति ।

• पुन्यपुज सब वन्य अस, कहहि देव दिनराति ॥१३९॥
नयनवत रघुवरहिं विलोकी । पाइ जनमफल होहि विसोकी ॥
परति चरनरज अचर सुरारी । भये परमपद के अधिकारी ॥
सो वन सैल सुभाय मुहाजन । मंगलमय अति पावन पावन ॥
महिमा कहिय कवन त्रिधि तास । मुखसागर जह फीन्ह निवास ॥
पयपयोधि त्रिजि अवध बिहाई । जह सिय लपन राम रहे आई ॥
कहि न सकहि सुरमा जसि कानन । जौ सत सहस होहि सहसानन ॥
सो मैं बरनि कहौ त्रिधि केहीं । डाबर कमठ कि मंदर लेहीं ॥
सेवहि लपन करम-मन बानी । जाइ न सोल सनेह बसानी ॥

दो०-छिनु छिनु लरि सिय राम पद, जानि आपु पर नेह ।

करत न सपुनेहुँ लपन चित, बधु मातु पितु नेह ॥१४०॥

राम सग सिय रहति सुरारी । पुर परिजन गृह सुरति विसारी ॥
छिनु छिनु पिय विधु वदन निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी ॥

नाहनेह नित बढत बिलोकी । हरपित रहति दिवस निमि कोरी,
 सियमन रामचरन अनुरागा । अवध सहस सम वनप्रियलागा
 परनकुटी प्रिय प्रियतम सगा । प्रिय परिवारु कुरग बिहगा ।
 सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर । असन अमियसम कद मूलपर ।
 नाथसाथ साथरी मुहाई । मयन-सयन सय सम सुखदाई ।
 लोकप होहि बिलोक्त जासू । तेहि कि मोह सक विषय बिलासू ।

ढो०-मुमिरत रामहि तजहि जन, तृनसम प्रिय निलासु ।

रामप्रिया जगजननि सिय, कछु न आचरज तासु ॥१४१॥

सीय लपन जेहि बिधि सुग लहई । सोइ रघुनाथ करहि सोइ कहई ।
 कहहि पुरातन कथा कहानी । सुनिह लपन सिय अतिसुख मानी ।
 जन जब राम अवध सुधि करई । तब तब बारि बिलोचन भरई ।
 मुमिरि मातु पितु परिजन भाई । भरत - सनेह - मील-सेवकाई ।
 कृपासिधु प्रभु होहि दुखारी । धीरज धरहि कुसमठ निचारी ।
 लखि सिय लपन विकल होइ जाई । जिमि पुरुषहि अनुसर परिचारी ।
 प्रिया बधु-गति लगि रघुनदन । धीर कृपाल भगत-उर-चदन ।
 लगे कहन कहु कथा पुनीता । सुनि सुख लहहि लखनु अरु सीता ।

ढो०-राम-लखन-सीता सहित, सोहत परननिषेत ।

जिमि वासव धस अमरपुर, मची-जयत समेत ॥१४२॥

जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे । पलक बिलोचनगोलक जैसे ।
 मैरहि लपन सीय रघुवीरहि । जिमि अधिवेकी पुरुष सरीरहि ।
 गहि निधि प्रभु वन धसहि सुखारी । रग-भृग-सुर-तापस हितकारी ।
 कहेउ राम-चन-गवन मुहावा । मुनहु सुमत्र अवध जिमि आवा ।
 फिरेउ निपाट प्रभुहि पहुँचाई । मचिवसलित रथ देखेसि आई ।
 मंत्री निकल बिलोकि निपाट । कहि न जाइ जस भयउ विपाट ।
 राम राम सिय लपन पुकारी । परेउ धरनितल व्याकुल भारी ।
 गेगि दगिनदिमि न्य दिदिनाई । जनु विनु पग यहैग अगुनाई ।

दो०-नहिं तज चरहि न पियहिं जल, मोचहि लोचनवारि ।

व्याकुल भयउ निपाद सब, रघु बर-बाजि निहारि ॥१४३॥

धरि धीरज तज कहइ निपाद । अब सुमन परिहरहु विपाद ॥
तुम्ह पडित परमारथजाता । घरहु धीर लसि विमुख विधाता ॥
विविधकथा कहि कहि मृदुबानी । रथ बैठारेउ घरवस आनी ॥
सोकसिधिल रथ सकइ न हाँकी । रघु बर विरह पीर उर बाँकी ॥
तलफराहि भग चलहिं न घोरे । घनमृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अहुकि परहिं फिरि हेरति पीछे । रामबियोग बिकल दुख तीछे ॥
जो कह राम लपन बैदेही । हिकरि हिकरि हित हेरहि तेही ॥
बाजि विरहगति कहि किमि जाती । बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती ॥

दो०-भयउ निपाद रिपादवस, डेरत सचिवतुरग ।

घोलि मुसेउक चारि तय, दिये नारथी सग ॥१४४॥

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई । विरह रिपाद बरनि नहि जाई ॥
चले अग्रध लेइ रथहि निपादा । होहि छनहि छन मगन विपादा ॥
मोच सुमन बिकल दुख दीना । बिरु जीवन रघु वीर बिहीना ॥
रहहि न अतहु अधम सरीरु । जस न लहेउ बिछुरत रघुवीरु ॥
भये अजम अघ भाजन प्राणा । कवन हेतु नहि करत पयाना ॥
अहह मद मन अवसर चूषा । अजहु न हृदय होत दुइ दूका ॥
मौजि हाथ सिर बुनि पछितार्ई । मनहु वृषिन धनरासि गवाँई ॥
धिरद बाँधि बरवीरु कहाँ । चलेउ समर जनु मुभट पराई ॥

श्लो०-विप्र निबेफी वेदविद, समत साधु सुजाति ।

जिमि घोखे मदपान कर, सचिव सोच तेहि भाँति ॥१४५॥

जिमि कुलीनतिय साधु सयानी । पतिदेवता करम - मन - बानी ॥
रहइ करमवस परिहरि नाहू । सचिव हृदय तिमि दारुनदाहू ॥
लोचन सजल डीठ भई थोरी । मुनइ न सवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुह लाटी । जित न जाइ उर अवधिकपाटी ॥

विधरन भयउ न जाइ निहारो । मारेसि मनहु पिता महतापे ।
 रानि गलानि विपुल मन व्यापी । जमपुर पथ सोच जिमि पापे ।
 वचन न आउ हृदय पछितार्ह । अवध काह में देखत जाई ।
 रामरहित रथ बेसिहि जोई । सकुचिहि मोहि विलोकत साई ।
 दो०-वाइ पूछिहहि मोहि जव, त्रिकल नगर नर नारि ।

उतरु देव मैं सवहि तव, हृदय बज्र वैठारि ॥१४६॥
 पुछिहहि दीन दुरित जव माता । कह्य कहा में तिन्हहि बिधाता ।
 पूछिहि जवहि लपनमहतारी । कहिहउँ कवन सँदेस सुतारी ।
 रामजननि जय आइहि धाई । सुमिरि वच्छ जिमि घेनु लगई ।
 पूछत उतर देव में तेही । गे बन राम लपनु वैदेही ।
 जोइ पूछिहि तेहि उतरु देवा । जाइ अवध अब यह सुख लेग ।
 पुछिहहि जवहि राउ दुरादीना । जिवन जासु रघुनाथ अधीना ।
 देखहउँ उतरु कवन मुह लाई । प्रायेउँ कुसल कुअर पटुँचाई ।
 सुनत लपन सिय राम सँदेसू । वन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू ।

दो०-हृदय न त्रिदरेउ पक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर ।

जानत हौं मोहि दीन्ह विधि, यह जातना-सरीर ॥१४७॥

एहि विधि करत पथ पछितावा । तमसातीर तुरत रथ आवा ।
 चिदा किये करि विनय निपादा । फिरे पाँउ परि त्रिकल बिपादा ।
 पैठत नगर सचिव सकुचाई । जनु मारेसि गुरु धाम्हन-गाई ।
 बैठि थिटपतर दिवस गवाँवा । सौंम समय तव अवसर पावा ।
 अवधप्रवेस कीन्ह अधियारे । पैठि भरन रथ राखि दुआरे ।
 जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये । भूपद्वार रथ देखन आये ॥
 रथ पहिचानि बिकल लखि घोरे । गरहि गात जिमि आतप ओरे ।
 नगर नारि नर व्याकुल कैसे । निषटत नीर मीतगन जैसे ।

दो०-सचिव आगमन सुनत सब बिकल भयउ रनिवासु ।

भवनु भयकर लाग तेहि, मानहुँ प्रेतनिवासु ॥१४८॥

श्रुति आरत सब पूछहि रानी । उतरु न आव निकल भई वानी ॥
 नइ न सवन नयन नहि सूझा । कहहु कहा नृप जेहि तेहि वृष्णा ॥
 तसिन्ह दीप सचिव प्रिकलाई । कौसल्यागृह गई लेवाई ॥
 तइ सुमत्र दीप कस राजा । अमियरहित जनु चन्द विराजा ॥
 प्रासन - सयन - प्रिभूषन हीना । परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
 तेइ उसास सोच एहि भाती । सुरपुर तें जनु खँमेउ जजाती ॥
 तेव सोच भरि छिनु छिनु छाती । जनु जरि पर परेउ सपाती ॥
 जम राम कह राम सनेही । पुनि कह राम लपन वैदेही ॥

दो०-देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दृढ प्रनाम ।

सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमत्र कहँ राम ॥१४६॥

भूप सुमत्र लीन्ह उर लाई । बूढत कहु आधार जनु पाई ॥
 सहित सनेह निकट बैठारी । पूछत गउ नयन भरि वारी ॥
 रामकुसल कहु सरा सनेही । कहँ रघुनाथ लपन वैदेही ॥
 आने फेर कि धनहिं सिधाये । सुनत सचिवलोचन जल छाये ॥
 सोक निकल पुनि पूछ नरेसू । कहु सिय राम लपन सदेसू ॥
 राम - रूप - गुन - सील - सुभाऊ । सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥
 राज सुनाइ दीन्ह धनबासू । सुनि मन भयउ न हरप हरासू ॥
 सो सुत पिछुरत गये न प्राता । को पापी बड मोहि समाना ॥

दो०-सरा राम सिय-लपन जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ ।

नहिं त चाहत चलन अब, प्रात कहउँ सतिमाउ ॥१५०॥

पुनि पुनि पूछत मतिहि राऊ । प्रियतम-सुअन-सँदेस सुनाऊ ॥
 करहि सरा सोइ बेगि उपाउ । राम-लपन-सिय नयन देखाऊ ॥
 सचिव वीर धरि कह मृदुबानी । महाराज तुम्ह पडित जानी ॥
 वीर सुधीर धुरधर देवा । साधुसमाज सदा तुम्ह सेवा ॥
 जनम भरन सब सुख दुख भोगा । हानि लाभ प्रियमिलन वियोगा ॥
 काल करम बस होहि गोसाई । बरबस राति दिउस की नाई ॥

मस दरपदि जट दुरा थिलसाई । दोउ सम घोर धरहि मन मारी ।
 गोरज धरहु विवेक विचारी । छादिय सोच सकल हितकारी ।

श्री०-प्रथम वासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर ।

न्याय रहे जलपान करि, सियममेत दोउ गोर ॥१२॥

फेयट कीन्ह धरत सेरकाई । सो जामिनि सिंगवेर गगोई ।
 होत प्रात बटछीर मँगैया । जटामुकुट निज सीस बनाका ।
 रामसग्या तन नाय मँगई । प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुप्राई ।
 लपन बानधनु धरे जनाई । आपु चढ़े प्रमुखायसु पाई ।
 बिसल बिलोकि मोहि रघुनीरा । बोले मधुरवचन धरि धीरा ।
 तात प्रनाम तात सन कटेहू । बार बार पदपकज गहू ।
 करजि पाय परि बिनय जहोरी । तात करिय जनि चिंता मोरी ।
 बनमग मगल कुसल हमारे । कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे ।

छद-तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहू ।

प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहू ।

जननी सकल परितोपि परि परि पाय करि विनती घना ।

तुलसी करेहू सोर जतन जेहि कुसली रहहि कोसल घनी ।

श्री०-गुरु सन कहन सँदेस, बार बार पदपदुम गहि ।

करव सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति ॥१३॥

पुरजन परजन सकल निहोरी । तात सुनायेहु बिनती मोरी ।

सोइ सब भाति भोर हितकारी । जा तैं रह नरनाह सुखारी ।

कहव सँदेसु भरत के आये । नीति न तजिय रात्रपद पाये ।

पालेहु प्रजहि करम-मन बानी । सेयेहु मातु सकल सम जानी ।

अर निराहेहु भायष भाई । करि पितु-भातु मुजन सेवकाई ।

तात भौंति तेहि राख्य राउ । सोच मोर जेहि करइ न काउ ॥

लपन कहे कछु बचन कठोरा । बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥

बारबार निज सपय दिबाई । कहबि न तात लखन लरिकाई ॥

दो०-कहि प्रनाम कह्यु कहन लिय, सिय मइ सिथिल सनेह ।

यकित वचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह ॥१५३॥

तेहि अवसर रघुनर रुख पाई । केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघु कुल तिलक चले एहि भाँती । देखेउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती ॥
मैं आपन किमि कहउँ क्लेसू । जियत फिरउँ लेइ रामसदेसू ॥
अस कहि सचिव वचन रहि गयऊ । हानि गलानि सोच बस भयऊ ॥
सूत वचन सुनतहि नरनाहू । परेउ बरनि उर दाग्नदाहू ॥
तलफत विषम मोह मन मापा । माँजा मनहुँ मीन कहँ व्यापा ॥
करि विलाप सन रोयहि रानी । महा विपति किमि जाइ वरानी ॥
सुनि विलाप दुख हू दुख लागा । धीरज हू कर धीरज भागा ॥

दो०-भयउ कोलाहल अयध अति, सुनि नृप राउर सार ।

विपुल बिहँगवन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर ॥१५४॥

आए कठगत भयउ मुआलू । मनि निहीन जनु व्याकुल व्यालू ॥
इन्द्री सकल बिकल भई भारी । जनु सर सरसिज बन विनु वारी ॥
कौसल्या नृप दीख मलाना । रवि कुल रवि अथयेउ जियजाना ॥
उर धरि धीर राममहतारी । बोली वचन ममय अनुसारी ॥
नाथ समुक्ति भन करिय विचारू । राम वियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू । चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरज धरिय त पाइय पारू । नाहि त बूझिहि सन परिवारू ॥
जौ जिय धरिय विनय पिय मोरी । राम लपन मिय मिलहि बहोरी ॥

दो०-प्रिया वचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उधारि ।

तलफत मीन मलीन जनु, मीचेउ सीतलवारि ॥१५५॥

धरि धीरज उठि बैठि मुआलू । फहु सुमन कहँ राम कृपालू ॥
फाँ लपन कहँ रामसनेही । कहँ प्रिय पुन बधू बैडेही ॥

विलपत राउ निकल बहु भौंती । भइ जुगसरिस सिराति न ,
 तापस अध-साप सुधि आई । कौसल्यहि सन कथा सु ,
 भयउ बिकल घरनत इतिहासा । रामरहित धिग जीवन आसा
 सो तनु राखि करव मै काहा । जेहि न प्रेमपनु मोर निगइ ।
 हा रघुनन्दन प्रानपिरीते । तुम्ह निनु जियत बहुत
 हा जानकी लपन हा रघुवर । हा पितु हित चित-चातक छलवा

दो०-राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।

तनु परिहरि रघुवर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥१५६॥

जियन मरन फल दसरथ पावा । अह अनेक अमल जस द्वावा ।
 जियत राम विधु वदन निहारा । रामबिरह करि मरन सबौरा ।
 सोक बिकल सब रोवहि रानी । रूप सील बल तेज बखानी ।
 करहि विलाप अनेक प्रकारा । परहि भूमि तल धारहि चारा ।
 बिलपहि निकल दास अरु दासी । घर घर रुदन करहि पुरवासी ।
 अथयउ आजु भानु कुल भानू । घरमअवधि गुन रूप निधानू ।
 गारी सकल केकड़हि देही । नयन विहीन कीन्ह जग जेही ।
 एहि विधि विलपत रैन विहानी । आये सकल महामुनि ज्ञानी ।

दो०-तन वसिष्ठमुनि समयसम, कहि अनेक इतिहास ।

सोक नेवारेउ सबहि कर, निज बिज्ञान प्रकास ॥१५७॥

तेल नाव भरि नृपदन रासा । दूत बोलाइ बहुरि अस भासा ॥
 धारहु बेगि भरत पहि जाहु । नृप सुधि कतहु कहहु जानि काहु ।
 एतनेइ कहहु मरत सन जाई । गुरु बोलाइ पठयउ दोठ भाई ।
 सुनि मुनि आयसु घावन घाये । चले बेगि वर घाजि लनाये ।
 अनरथ अवध अरमेठ जब तैं । कुसगुन होहि मरत कहैं तब तैं ।
 देखहि राति भयानक सपना । जागि करहि कटु फोटि कलपना ।
 विप्र जेवौइ देहि दिन दाना । सिव अभिपेक करहि विधि नाना ।
 मोगहि हृदय महेस मनाई । कुसल मातु पितु परिजन भाई ।

दो०-एहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आई ।

गुरुअनुसासन स्रवन सुनि, चले गनेस मनाइ ॥१५८॥

चले समीरबेग हय हाँके । नाँवत सरित सैल बन धाँके ॥
हृदय सोच बढ़ कछु न सोहाई । अस जानाहि जिय जाउँ उदाई ॥
एक निमेष वरप सम जाइ । एहि विधि भरत नगर नियराई ॥
असगुन होहि नगर पैठारा । रटहि कुमाँति कुरसेत करारा ॥
सर सियार बोलहि प्रतिकूला । सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा । नगर बिसेपि भयावन लागा ॥
रग मृग हय गज जाहि न जोये । राम वियोग कुरोग पिगोये ॥
नगर नारिनर निपट दुखारी । मनहुँ सबन्हि सब सपति हारी ॥

दो०-पुरजन मिलहि न कहहि कछु, गवहि जोहारहि जाहि ।

भरत कुसल पूछि न सकहि, भय विपाद मन माहि ॥१५९॥

हाट बाट नहि जाहि निहारी । जनु पुर दह दिसि लागि दबारी ॥
आगत सुत सुनि कैक्यनदिनि । हरपी रवि कुल जल रह-बदिनि ॥
सजि आरती मुदित उठि घाई । झागहि भेंटि भवन लेइ आई ॥
भरत दुखित परिवार निहारा । मानहुँ तुहिन बनजयन मारा ॥
फैकेई हरपित एहि भौंती । मनहुँ मुदित दब लाइ किराती ॥
सुनहि ससोच देखि मन मारे । पूछति नैहर कुसल हमारे ॥
सकल कुसल कहि भरत सुनाई । पूछी निज कुल कुसल भलाई ॥
कहु कहै तात कहौ सब माता । कहै सिय राम लपन प्रियभाता ॥

दो०-सुनि सुतबचन सनेहमय, कपट नीर भरि जैन ।

भरत-स्रवन-मन-सूल सम, पापिन बोली बैन ॥१६०॥

तात बात मैं सकल सबोरी । भइ मथरा सहाय विचारी ॥
कछुक फाज बिधि बीच बिगारेव । भूपति सुर पति पुर पगु धारेव ॥

मुनत भरत भयबिबस निपादा । जनु सहमेउ करि केहरिनादा ॥
 तात तात हा तात पुकारी । परे भूमितल व्याकुल भारी ॥
 चलत न देगन पायउ तोही । तात न रामहि सँपेहु मोही ॥
 बहुरि धीर वरि उठे सम्भारी । कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥
 सुनि सुत वचन कहत कैकेई । मरसु पाछि जनु माहुर देई ॥
 आदिहु तँ सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन वरनी ॥

दो०-भरतहि बिसरेउ पितुमरन, सुनत राम जनगौन ।

हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे वरि मौन ॥१६१॥
 विकल पिलोकि सुतहि समुक्तावति । मनहुँ जरे पर लोन लगावति ॥
 तात राउ नहि सोचन जोगू । बिढइ सुकृत जस कँन्हेउ भोगू ॥
 जीवत सकल जनम फल पाये । अन्त अमर पति सदन सिधाय ॥
 अस अनुमानि सोच परिहरहू । सहित समाज राज पुर करहू ॥
 सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू । पाके छत जनु लाग अँगारू ॥
 धीरज धरि भरि लेहि उसासा । पापनि सबहिँ भौंति कुल नासा ॥
 जौँ पै कुरुचि रही अति तोही । जनमत काहे न मारोसि मोहा ॥
 पेढ काटि तै पालउ सींचा । भीनजियन हित गारि उलीचा ॥

दो०-हसतस दसरथ जनक, राम लपन से भाइ ।

जननी तू जननी भई, विधि सन कछु न बसाइ ॥१६२॥

जउतँ कुमति कुमत जिय ठयउ । राह राह होइ हृदय न गयऊ ॥
 वर माँगत मन भइ नहि पीरा । जनि न जीइ मुह परेउ न कीरा ॥
 भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही । मरनकाल निधि मति हरि लीन्ही ॥
 निधिहु न नारि हृदयगति जानी । सकल कपट अघ अवगुन राना ॥
 मरल सुसील धरमरत राऊ । सो किमि जानइ तीयसुभाऊ ॥
 अस को जीव जन्तु लग माहीं । जेहि रघुनाथ आनप्रिय नाहीं ॥
 भे अति अहित राम तेउ तोही । को तू अहसि सत्य कहु मोही ॥
 जो हसि सो हसि मुह ममिलाई । आखि ओटि उठि बैठहि जाई ॥

दो०-राम विरोधी हृदय तें, प्रगट कीन्ह विधि मोहि ।

मो समान को पातकी, चादि कहउँ कछु तोहि ॥१६३॥

मुनि सत्रुघ्न मातु कुटिलाई । जरहि गात रिस कछु न बसाई ॥

तेहि अवसर कुनरी तहँ आई । वसन विभूषन विविध बनाई ॥

लखि रिस भरेउ लपन लघु भाई । घरत अनल घृतआहुति पाई ॥

हुमगि लात तकि कूचर मारा । परि मुह भरि महि करत पुकारा ॥

कुनर टूटेउ फूट कपारु । दलितदसन मुख नधिरप्रचारु ॥

आह दइव मैं काह नसावा । करत नीक फल अनइस पावा ॥

सुनि रिपुहन लखि नर सिय खोटी । लगे घसीटन धरि धरि चोटी ॥

भरत दयानिधि कीन्ह छुड़ाई । कौसल्या पहिं गे दोउ भाई ॥

दो०-मलिनवसन प्रिवरन विकल, कृस सरीर दुखभार ।

कनक-कलप वर-बेलि नन, मानहुँ हनी तुपार ॥१६४॥

भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुखहित अबनि परी भई आई ॥

देखत भरत विकल भये भारी । परे चरन तनवसा बिसारी ॥

मातु तात कहँ तेहि देखाई । कह सिय रामलपन दोउ भाई ॥

केकड़ कत जननी जग माँझा । जौँ जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥

कुलकलक जेहि जनमेउ मोही । अपजसभाजन प्रिय-जन द्रोही ॥

को त्रिभुवन मोहिसरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥

पितु सुरपुर यन रघु नर-केतू । मैं केवल सब अनरथहेतू ॥

धिग मोहि भयउँ वेनु-वन आगी । दुसह - दाह दुख-दूपन भागी ॥

दो०-मातु भरत के वचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि ।

लिये उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६५॥

सरल सुभाइ माय हिय लाये । अतिहित मनहुँ राम फिरि आये ॥

मेंटेउ बहुरि लपन लघु भाई । सोक सनेह न हृदय समाई ॥

देखि सुभाय कहत सब कोई । राममातु अस काहे न होई ॥

माता . भरत गोद बैठारे । आँसु पौछि मृदुवचन उचारे ॥

अजहुँ वच्छ बलि धीरज धरहू । कुसमउ समुभि सोक परिहरू
जनि मानहु दिय हानि गलानी । काल-करम-गति अघटित जान ॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता । भा मोहि सब विधि वाम विधात
जो एतेहु दुख मोहि जियाया । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥

दो०-पितुआयसु भूपन वसन, तात तजे रघुवीर ।

बिसमठ हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर ॥१६६॥

मुख प्रसन्न मन राग न रोष । सबकर सय विधि करि परिवेष ॥
चले विपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम-चरन अनुरागी ॥
सुनतहि लपन चले उठि साथी । रहहि न जतन किये रघुनाथी ॥
तब रघुपति सबही सिर नाई । चले सग सिय अरु लघु भाई ॥
रामलपन सिय बनहि सिधाये । गइउँ न सग न प्रान पठाये ॥
एह सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे । तउ न तजा तनु प्रान अमागे ॥
मोहि न लाज निजनेह निहारी । रामसरिस सुत मैं महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना । मोर हृदय सत कुलिस-समाना ॥

दो०-कौसल्या के बचन सुनि, भरतसहित रनिवासु ।

व्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोकनिवासु ॥१६७॥

बिलपहि बिकल भरत दोउ भाई । कौसल्या लिये हृदय लगाई ॥
भौंति अनेक भरत समुझाये । कहि बिबेकमय बचन सुनाये ॥
भरतहु मातु सकल समुझाई । कहि पुरान स्मृति कथा सुहाई ॥
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी । बोले भरत जोरि जुगपानी ॥
जे अघ मातु पिता गुरु मारे । गाइ गोठ महि-सुर पुर जारे ॥
जे अघ तिय-बालक-बध कीन्हे । मीत महीपति माहुर दीन्हे ॥
जे पातक उपपातक अहर्ही । करम बचन मन भव कवि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता । जौं एहु होइ मोर मत माता ॥

दो०-जे परिहरि हरि-हर चरन, भजहि भूतगन घोर ।

तिन्ह कह गति मोहि देठ विधि, जौं जननी मत मोर ॥१६८॥

बेचहि वेद वरम दुहि लेही । पिसुन पराय पाप कहि देही ॥
 कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी । वेदविदूषक बिरवबिरोधी ॥
 लोभी लपट लोलुपचारा । जे ताकहि परधन परदारा ॥
 पावउँ मैं तिन्ह कै गति घोरा । जौं जननी यहु ममत मोरा ॥
 जे नहि साधुसग अनुरागे । परमारथपथ विमुख अभागे ॥
 जे न भजहि हरि नरतनु पाई । जिन्हहि न हरिहर सुजस सुहाई ॥
 तजि स्तुतिपथ वामपथ चलहीं । बचक बिरचि वेपु जग छलहीं ॥
 तिन्ह कहि गति मोहि शकर देऊ । जननी जौं एहु जानऊं भेऊ ॥

दो०-मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय ।

कहति रामप्रिय तात तुम्ह, मदा बचन मन काय ॥१६६॥

राम प्रान ते प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रान तैं प्यारे ॥
 पिबु विष चुवइ स्रवइ हिमु आगी । होइ बारिचर बारिविरागी ॥
 भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ॥
 मत तुम्हार एह जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥
 अस कहि मातु भरत हिय लाये । धन पय स्रवहि नयन जल छाये ॥
 करत निलाप बहुत एहि भौंती । बैठहि भीति गई सब राती ॥
 वामदेव बसिष्ठ तय आये । सचिव महाजन सकल बोलाये ॥
 मुनि बहुभौंति भरत उपदेसे । कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥

दो०-तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु ।

उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सब काजु ॥१७०॥

नृपतनु वेद विहित अन्हवावा । परमविचित्र विमान बनावा ॥
 गहि पग भरत मातु सन राखी । रही राम दरसन अभिलाखी ॥
 चन्दन अगर भार बहु आये । अमित अनेक सुगन्ध सुहाये ॥
 सरजु तीर रुचि चिता बनाई । जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई ॥
 एहि विधि दाइक्रिया सब कीन्ही । विधिवत न्हाइ विलाजलि दीन्ही ॥
 सोधि सुमृति सब वेद पुरानो । कीन्ह भरत दसगात विधाना ॥

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा । तहँ तस सहस भौंति सब ॥
भय विशुद्ध दिये सब दाना । धेनु वाजि गज वाहन नाना ॥

दो०-सिंहासन भूपन वसन, अन्न धरनि धन वाम ।

दिये भरत लहि भूमिसुर, मे परिपूरन काम ॥१७१॥

पितुहित भरत कीन्ह जस करनी । सो मुख लाखहु जाइ ॥
सुदिन सोधि मुनिवर तन आये । सचिव महाजन सपल
बैठे राजसभा सब जाई । पठये धौलि भरत दोउ भारी
भरत वसिष्ठ निकट बैठारे । नीति वरम मय वचन उचार
प्रथम कथा सब मुनिवर वरनी । फेकइ कुटिल कीन्ह जसि करनी
भूप धरमव्रत सत्य भराहा । जेहि तनु परिहरि प्रेम निराग
कहत राम गुन-सील-सुभाऊ । मजल नयन पुलकैउ मुनिपद
बहुरि लपन सिय प्रीति बखानी । सोक सनेह मगन मुनि ॥

दो०-सुनहु भरत भावी प्रबल विलखि कहेउ मुनिनाथ ।

हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ ॥१७२॥

अस विचारि केहि देख्य दोष । व्यर्थ काहि पर कीजिय राख
तात निचार करहु मन माहीं । सोच जोग दसरथ नृप नार्ही
सोचिय विप्र जो वेदबिहीना । तजि निज धरम विषय लबली
सोचिय नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समान
सोचिय वयसु कृपन धनवानू । जो न अतिथि सिधमगति सुजा
सोचिय सूद्र विप्र अपमानी । मुग्गर मानप्रिय ज्ञानगुनाना
सोचिय पुनि पतिवचक नारी । कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारा
सोचिय बटु निव्रत परिहरई । जो नहिं गुरु आयसु अनुसर ॥

दो०-सोचिय गृही जो मोहवस, करइ करमपथ त्याग ।

सोचिय जती प्रपचरत, विगत त्रिवेक विराग ॥१७३॥

वैषाणस सोइ सोचन जोगू । तप निहाइ जेहि भावइ भोग
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी । जननि-जनक गुरु बधु विरोधी ॥

बविधि सोचिय परअपकारी । निज-तनुपोषक निरदय मारी ॥
 वेनीय सबही विधि सोई । जो न छाडि छल हरिजन होई ॥
 वेनीय नहि कोसलराऊ । भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
 यड न अहइ न होनिहुदारा । भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥
 अधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा । धरजहि सत्र दसरथ-गुन-गाथा ॥

दो०—कहहु तात फेहि भौंति कोउ, करहि बडाई तासु ।

राम लपन तुम सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु ॥१७४॥

तब प्रकार भूपति बडभागी । बादि बिपाद करिय तेहि लागी ॥
 गह सुनि समुक्ति सोच परिहरहु । सिर धरि राजरजायसु करहु ॥
 राय राजपद तुम्ह कहँ ठीन्हा । पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा ॥
 तजे राम जेहि बचनहि लागी । तनु परिहरेउ रामबिरहागी ॥
 नृपहि बचन प्रिय नहि प्रिय प्राना । करहु तात पितु बचन प्रमाना ॥
 करहु सीस धरि भूपरजाई । यह तुम्ह कहँ सब भाति भलाई ॥
 परसुराम पितु आज्ञा राखी । मारी मातु लोग सब साखी ॥
 तनय जजातिहि जौनन दयऊ । पितु अज्ञा अध अजस न भयऊ ॥

दो०—अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहि पितु बैन ।

ते भाजन सुरा मुजस के, बसहि अमरपति ऐन ॥१७५॥

अवसि नरेस बचन फुर करहु । पालहु प्रजा सोक परिहरहु ॥
 सुरपुर नृप पाइहि परितोषू । तुम्ह कहँ सुकृतसुजस नहि दोषू ॥
 बेदबिहित समत सबही का । जेहि पितु देइ सो पायइ टीका ॥
 करहु राज परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी ॥
 सुनि सुरा लहब राम बैदेही । अनुचित कहब न पडित केही ॥
 कोसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजासुख होहि सुगारी ॥
 प्रेम तुम्हार राम सब जानहि । सो सत्रविधि तुम्हसज भल मानहि ॥
 सौंपहु राज राम के आये । सेवा करहु सनेह मुहाये ॥

लीन्ह विधयन अपजसु आपू। दीन्हैठ प्रजहि सोकु सता।
 मोहि दीन्ह मुख सुजस सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर कानू।
 एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका।
 कैकइजठर जनमि जग माहीं। यह मो कहँ कछु अनुचित नाहीं।
 मोरि बात सब विधहि बनाई। प्रजा पच कत करहु सहाई।

दो०-ग्रहग्रहीत पुनि घातवस, तेहि पुनि वीछी मार।

ताहि पियाइय बारुनी, कहहु कवन उपचार॥१८॥

कैरइसुअन जोग जग जोई। चतुर विरचि दीन्ह मोहि सोई।
 दसरथतनय राम - लघु - भाई। दीन्ह मोहि विधि वादि बडाई।
 तुम्ह सब कहहु कढायन टीका। रायरजायसु सब कहँ नीका।
 उत्तर देउँ केहि विधि केहि केही। कहहु सुखेन जथारचि जहा।
 मोहि कुमातु समेत निहाई। कहहु कहिहि को कीन्ह भलाई।
 मो निनु को सचराचर माहीं। जेहि सियराम प्रानप्रिय नाहीं।
 परमहानि सब कह बड लाहू। अदिन मोर नहि दृपन काहू।
 ससय मील प्रेम बस अहहू। सबइ उचित सब जो कछु कहहू॥

दो०-राममातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेम विसेरि।

कहइ सुभाय सनेहबस, मोरि दीनता देखि॥१९॥

गुरु निवेक सागर जग जाना। जिन्हहि बिस्व कर-बदर समाना।
 मो कहँ तिलकसाज सज सोऊ। भयेविधि विमुख विमुख सब काऊ।
 परिहरि राम सीय जग माहीं। कोठ न कहिहि मोर मत नाहीं।
 सो मैं सुनय सहव सुख मानी। अतहु कीच तहाँ जह पाना।
 डर न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहि न सोचू।
 एकहि उर बस दुसह दवारी। मोहि लागि भेसिय राम दुखारी।
 जीवनलाहु लखन भल पावा। सब तजि राम-चरन मन लावा।
 मोर जनम रघुनर बन लागी। मूठ काह पछिताउँ अभागी॥

दो०-आपनि दारुन दीनता, कहउँ सबहि सिर नाइ ।

देखे त्रिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ ॥१८३॥

आन उपाउ मोहि नहि सूझा । को जिय कै रघुबर बिन बूझा ॥
एकहि आँक इहइ मन माहीं । प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ॥
यद्यपि मैं अनभल अपराधी । भइ मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहि कृपा बिसेजी ॥
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ । कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ ॥
अरिहु क अनभल कोन्ह न रामा । मैं सिंसु सेवक जद्यपि बामा ॥
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी । आयसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहि बहुरि राम रजधानी ॥

दो०-जद्यपि जनम कुमातु ते, मैं सठ सदा सदाँस ।

आपन जानि न त्यागिहहि, मोहि रघु बीर भरोस ॥१८४॥

भरत बचन सब कहैं प्रिय लागे । राम-सनेह-सुधा जनु पागे ॥
लोग बियोग बिषम विष दागे । मत्र सबीज सुनत जनु जागे ॥
मातु सचिय गुरु पुर-नर नारी । सकल सनेहधिकल भये भारी ॥
भरतहि कहहि सराहि सराही । राम प्रेम मूरति-तनु आही ॥
जात भरत अस काहे न कहूँ । प्रानसमान रामप्रिय अहूँ ॥
जो पामर अपनी जडताई । तुम्हहि सुगाइ मातुकुटिलाई ॥
सो सठ कोटिख पुरुष समेता । बसहि कलपसत नरक निकेता ॥
अहि अथ अवगुन नहिं भनि गहई । हरइ गरल दुरय दारिद दहई ॥

दो०-अवसि चलिय वन राम जहँ, भरत मत्र भल कोन्ह ।

सोकसिंधु बूढत सबहिं, तुम्ह अवलबन दोन्ह ॥१८५॥

भा सबके मन मोद न थोरा । जनु घनघुनि सुनि चातक मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनड नीके । भरत प्रानप्रिय मे सबही के ॥
मुनिहि बदि भरतहि सिर नाई । चले सकल घर बिदा कराई ॥

धन्य भरत जीवन जग माहीं । सील सनेह सराहत जाहीं ॥
 कहहिं परसपर भा बड काजू । सकल चलइ कर साजहिं साजू ॥
 जेहि राखहिं रहु घर रखवारी । सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥
 कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । को न चहइ जग जीवनलाहू ॥

दो० जरउ सो सपति सदनमुख, सुहृद मातु पितु भाइ ।

सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ ॥१८६॥

घर घर साजहिं बाहन नाना । हरष हृदय परभात पयाना ॥
 भरत जाइ घर कीन्ह विचारू । नगर बाजि गज भवन भँडारू ॥
 सपति सब रघुपति कै आही । जौं विनु जतन चलउँ तजि ताही ।
 तौ परिनाम न भोरि भलाई । पापसिरोमनि साइँ दोहाई ॥
 करइ स्वामिहित सेवक सोई । दूरन कोटि देइ किन कोई ॥
 अस विचारि मुचि सेवक बोले । जे सपनेहुँ निजधरम न डोले ॥
 कहि सब मरम धरम सब भारा । जो जेहिलायक सो तहँ राखा ॥
 करि सब जतन राखि रखवारे । राममातु पहुँ भरत सिधारे ॥

दो०-आरत जननी जानि सब, भरत सनेहसुजान ।

कहेउ सजावन पालकी, सजन मुखसन जान ॥१८७॥

चक चकई जिमि पुर-नर नारी । चलथ प्रात उर आरत भारी ॥
 जागत सत्र निसि भयउ निहाना । भरत घोलाये सचिव सुनाना ॥
 कहेउ लेहु सत्र तिलकसमाजू । बनहिं देख मुनि रामहि राजू ॥
 बेगि चलहु मुनि सचिव जोहारे । तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥
 अरधती अर अगिनिसमाजू । रथ चढि चले प्रथम मुनिराजू ॥
 विप्रवृद्ध चढि बाहन नाना । चले सकल तप-तेज निधाना ॥
 नगर लोग सब सजि सजि नाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
 सिधिका मुभग न जाहिं बखानी । चढि चढि चलत भई सत्र रानी ॥

दो०-सौं पि नगर मुचि सेवकन, सादर सवहिं चलाइ ।

मुमिरि राम सिय-चरन तन, चले भरत दोउ भाइ ॥१८८॥

राम दरस-बस सब नरनारी । जनु करि करिनि चले तकि बारी ॥
 बन सिय राम समुक्ति मन माहीं । सानुज भरत पयादेहि जाहीं ॥
 देखि सनेह लोग अनुरागे । उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
 जाइ समीप राखि निजहोली । राममातु मृदुबानी बोली ॥
 तात चढ़हु रथ बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवार दुखारी ॥
 तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू । सकल सोककृस नहिं मग जोगू ॥
 सिर धरि चचन चरन सिर नाई । रथ चढ़ि चलत भये दोड भाई ॥
 तमसा प्रथमदिवस करि बासू । दूसर गोमतितीर निधासू ॥

दो०-पय अहार फल असन एक, निमि भोजन एक लोग ।

करत रामहित नेम धृत, परिहरि भूषन भोग ॥१८६॥

सई तीर बसि चले बिहाने । स्रग्वेरपुर सब नियराने ॥
 समाचार सब सुने निपादा । हृदय विचार करइ सबिपादा ॥
 कारन कवन भरत धन जाहीं । है कछु कपटभाउ मन माहीं ॥
 जौ पै जिय न होति कुटिलाई । तौ कत लोन्ह सग कटकाई ॥
 जानहि सानुज रामहि मारी । करवैं अकटक राज सुराारी ॥
 भरत न राजनीति उर आनी । तथ कलक अब जीवनहानी ॥
 सकल सुरासुर जु रहिं जुकारा । रामहिं समर न जीतनिहारा ॥
 का आचरज भरत अस करहीं । नहिं विषबेलि अमियफल फरहीं ॥

दो०-अम विचारि शुद्ध ज्ञाति सन, कहेउ सजग सब होहु ।

दृढबोँसटु बोरहु तरनि, कीजिय धाटारोहु ॥१८७॥

होहु सँजोइल रोकहु धाटा । ठाटहु सकल मरइ के ठाटा ॥
 सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । जियत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥
 समर मरन पुनि सुरसरि तीरा । रामकाज अनभगु सरीरा ॥
 भरत भाइ नृप मैं जन नीचू । बडे भाग असि पाइव मीचू ॥
 स्वामिकाज करिहउँ रन रारी । जस धवलिहउँ, भुवन दस चारी ॥
 तजउँ प्राण रघु-नाथ निहोरे । दुहूँ हाथ मुदमोदक मोरे ॥

साधुसमाज न जा कर लेखा । रामभगत महेँ जासु
जाय जियत जग सो महिभारू । जननी - जीवन बि

दो०-विगतविपाद निपादपति, सबहि घटाइ उछाड़ि
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सना

बैगहि भाइहु सजहु सँजोऊ । सुनि रजाइ कदराइ
भलेहि नाथ सब कहहिँ सहरपा । एकहिँ एक बढावा
चले निपाद जोहारि जोहारी । सूर सकल रन रु
सुमिरि राम पद पकज पनही । भायी बाँधि बढाई
अँगरी पहिरि कूडि सिर धरहीं । फरसा बाँस सेल स
एक कुसल अति ओडन राँडे । बूढ़हिँ गगन मनहुँ छि
निज निज साज समाज बनाई । गुहरायतहि जोहारे
धेरि सुभट सब रायक जाने । लेइ लेइ नाम सकल

दो०-भाइहु लावहु धोर जनि, आजु फाज बड मोहि
सुनि सरोप बोले सुभट, ग्रीर अधीर न होहि

रामप्रताप नाथ बल तोरे । करहि कटकु बिनु भट
जीवत पाउ न पाछे धरही । रुड मुड मय मेदिनि
वीर, निपादनाथ भल टोल । कहेउ बजाउ जुमा
एतना कहत छीक भइ बाये । कहेउ सगुनिअन्ह रेत
बूढ़ एक कह सगुन विचारी । भरतहि मिलिय न हो
रामहिँ भरत मनाउन जाहीं । सगुन कहइ अस बिप्रा
सुन गुह कहइ नीक कह बूढ़ा । सहसा करि पछिताहि
भरत-सुभाउ सील बिनु बूके । बडि हितहानि जानि

दो०-गहहु घाट भट सिमिटि सन, लेउँ मरम मिलि जा
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तसि करिहउँ आ

लखब सनेहु सुभाय सुहाये । वैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये ॥
 अस कहि भेंट सँजोउन लागे । कद मूल फल रग मृग माँगे ॥
 मीन पीन पाठीन पुराने । भरि भरि भार कहारन्ह आने ॥
 सकल साजु सजि मिलन सिधाये । मगलमूल सगुन सुम पाये ॥
 देखि दूरि ते कहि निजनामू । कीन्ह मुनीसहि दण्डप्रनामू ॥
 जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा । भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥
 रामसखा सुनि स्यदन त्यागा । चले उत्तरि उमगत अनुरागा ॥
 गाउँ जाति गुह नाउँ सुनाई । कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ॥
 दो०-करत दहजत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ।

मनहुँ लपन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ॥१६४॥

भेंटत भरत ताहि प्रतिप्रीती । लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
 धन्य धन्य धुनि मगलमूला । सुर सराहि तेहि बरिसहि फूला ॥
 लोक जेद सब भौंतिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइय सीचा ॥
 तेहि भरि अक राम-लघु भ्राता । मिलत पुलकपरिपूरित गाता ॥
 राम राम कहि जे जमुहार्दी । तिन्हहि न पाप पुंज समुहार्दी ॥
 एहि तौ राम लाइ उर लीन्हा । कुलसमेत जग पावन कीन्हा ॥
 करम नास जल सुरसरि परई । तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
 उलटा नाम जपत जग जाना । बालमीकि भये ब्रह्मसमाना ॥
 दो०-स्वपच सवर रास जनम जड, पामर कोल किरात ।

राम कहत पावन परम, होत भुवन विरयात ॥१६५॥

नहिं अचरज जुग जुग चलि आई । केहि न दीन्ह रघुबीर बडाई ॥
 राम नाम-महिमा सुर कहहीं । सुनि सुनि अवध लोग सुखलहहीं ॥
 रामसखाहि मिलि भरत सप्रेमा । पूछी कुसल सुमगल छेमा ॥
 देखि भरत कर सील सनेहू । भा निपाद तेहि समय विदेहू ॥
 सकुच सनेह मोट मन बाढा । भरतहिं चितैवत एकटक ठाढा ॥
 परि घोरज पद बदि, बहोरी । विनय सप्रेम करत कर जोरी ॥

कुसलमूल पदपकज पेखी । मैं तिहुँ काल कुसल निन लेखी ॥
अन प्रभु परम अनुग्रह तोरे । सहित कोटि कुन मगल मोरे ॥

दो०-समुझि मोरि करतृति कुल, प्रभु महिमा जिय जोइ ।

जो न भजइ रघु-बीर पद जग विधिवचित सोइ ॥१६६॥

कपटी फायर कुमति कुजाती । लोक वेद बाहर सब भौंठा ।
राम कीन्ह आपन जघही तैं । भयउ भुवन भूषन तबही तैं ।
देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई । मिलेउ बहोरि लखन लघु भाई ।
कहि निपाद निज नाम सुजानी । सादर सकल जोहारी रानी ।
जानि लपनसम देहिं असीसा । जियहु सुखी सय लाख बरोसा ।
निरखि निपाद नगर-नर-नारी । भये सुखी जनु लपन निहारी ।
कहहिं लहेउ एहि जीवन लाहू । भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू ।
सुनि निपाद निज भाग-बढाई । प्रमुदित मन लै चलेउ लेबाई ॥

दो०-सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ ।

घर तरु तर सर बाग बन, वास बनायन्हि जाइ ॥१६७॥

सृ गबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेहबस अग सिथिल तब ।
सोहत दिये निपादहि लागू । जनु तनु धरे बिनय अनुपागू ।
एहि विधि भरत सेन सब सगा । दीख जाइ जगपावनि गगा ।
रामघाट कहैं कीन्ह प्रनामू । भा मन मगन मिले जनु रामू ।
करहिं प्रनाम नगर-नर-नारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ।
करि मज्जनु माँगहिं कर जोरी । रामचन्द्रपद प्रीति न थोरी ।
भरत कहेउ सुरसरि तब रेनू । सकल-सुखद-सेवक-सुर धेनू ।
जोरि पानि बर मागउँ एहू । सीय राम पद सहज सनेहू ॥

दो०-एहि विधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ ।

मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लेबाइ ॥१६८॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा । भरत सोधु सचही कर लीन्हा ॥
गुरु सेवा करि आयसु पाई । राममातु पहिं गे दोउ भाई ॥
चरन चापि कहि कहि मृदुवानी । जननी सकल भरत सनमानी ॥
भाइहि सौपि मातुसेवकाई । आपु निपादहि लीन्ह बोलाई ॥
चले मरग कर सों कर जोरे । सिथिल सरीर सनेहु न थोरे ॥
पूछत सरसहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन मन जरनि जुठाऊ ॥
जहँ सिय राम लपन निसि सोये । कहत भरे जल लोचनफोये ॥
भरत बचन सुनि भयड निपादू । तुरत तहाँ लेइ गयड निपादू ॥

दो०-जहँ सिंसुषा पुनीत तरु, रघुबर किय बिस्रामु ।

अतिसनेह सादर भरत, कीन्हे दड प्रनामु ॥१६६॥

कुस-साथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकारी ॥
कनकरिंदु दुइ चारिक देखे । राखे सीस सीयसम लेखे ॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी । कहत सखा सन बचन सुबानी ॥
श्रीहत मीयविरह दुतिहीना । जथा अवध नरनारि मलीना ॥
पिता जनक देउ पटतर केही । करतल भोग जोग जग जेही ॥
ससुर भानु कुल भानु भुआलू । जेहि सिहात अमरावतिपालू ॥
प्राननाथ रघुनाथ गोसाई । जो बढहोत सो रामबडाई ॥

दो०-पतिदेवता ॥ तीय-मनि, सीय साथरी देखि ।

बिदरत हृदय न हहरि हर, पवितें कठिन बिसेरि ॥२००॥

लालनजोग लपन लघु लोने । भे न भाय अस अहहि न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे । सिय-रघु वीरहिं प्रानपियारे ॥
मृदुमूरति सुकुमार सुभाऊ । ताति बाउ सन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहिं विपति सब भौंती । निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥
राम जनमि जगु कीन्ह उजागर । रूप सील सुख सब गुनसागर ॥

पुरजन परिजन गुरु पितु माता । राम सुभाउ सनहिं सुखगता ॥
 बैरिउ राम नइहई करहीं । चोलनि मिलनि निनय मन हरहीं ॥
 सारद कोटि कोटि सत सेखा । करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ॥

दो०-सुखसरूप रघुवस मनि, मगल-मोद निधान ।

ते सोवत कुस डासि महि, निधिगति अति बलवान ॥२०१॥

राम सुना दुरा कानन काऊ । जीवनतरु जिमि जोगवत राऊ ॥
 पलक नयन फनि मनि जेहिभाँती । जोगवहिं जननि सकल दिनराती ॥
 ते अब फिरत धिपिन पदचारी । कन्द-मूल फल-फूल अहारी ॥
 धिग कैकेइ अमगल मूला । भइसि प्राण प्रियतम प्रतिबूला ॥
 मैं धिगधिग अघउदधि अभागी । सन उतपात भयउ जेहि लागी ॥
 कुलकलक करि सृजेउ निधाता । साइँद्रोह मोहि कीन्ह कुमाता ॥
 सुनि सप्रेम समुझाय निपादू । नाथ करिय कत यादि निपादू ॥
 राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रियरामहिं । एह निरजोस दोसु निधि वामहिं ॥

छद-विधि धाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बायरी ।
 तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रायरी ॥
 तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतम कहत हौं सौँहें किये ।
 परिनाम मगल जानि अपने आनिये धीरज दिये ॥

सो०-अन्तरजामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन ।

चलिय करिय विश्राम, यह विचार दृढ आनि मन ॥२०२॥

सखाबचन सुनि उर धरि वीरा । बास चले सुमिरत रघुवीरा ॥
 यह सुधि पाइ नगर नर नारी । चले बिलोकन, आरत भारी ॥
 परदछिना करि करहिं प्रनामा । देहिं कैकइहि खोरि निकामा ॥
 भरि भरि चारि विलोचन लेहीं । वाम विधातहि दूपन देहीं ॥
 एक सराहहिं भरत मनेहू । कोउ कह नृपति निनाहेउ नेहू ॥
 निदहिं आपु सराहि निपादहिं । को कहि सकइ बिमोह विपादहिं ॥

एहि बिधि राति लोग सब जागा । भा भिनुसारु गुदारा लाग्ग ॥
गुरुहि सुनाव चढाइ सुहाई । नई नाव सब मातु चढाई ॥
दड चारि महुँ भा सज पारा । उत्तरि भरत तब सबहि सँभारा ॥

दो०-प्रातःक्रिया करि मातु पद, वदि गुरुहि सिर नाइ ।

आगे किये निपादगन, दीन्हैउ कटक चलाइ ॥२०३॥

कियेउ निपादनाथ अगुआई । मातु पालकी सकल चलाई ॥
साथ बुलाइ भाइ लघु दीन्हा । विप्रन सहित गवन गुरु कीन्हा ॥
आपु सुरसरहि कीन्ह प्रनामू । सुमिरे लपनसहित सियरामू ॥
गवने भरत पयादेहि पाये । कोतल सग जाहि डोरिआये ॥
कहहि सुसेवक चारहि वारा । होइय नाथ अस्स असवारा ॥
रामु पयादेहि पाय सिधाये । हम कहँ रथ गज बाजि बनाये ॥
सिरयल जाउँ उचित अस मोरा । सबतें सेवकधरम कठोरा ॥
देसि भरतगति सुनि भृदुवानी । सब सेवकगन गरहि गलानी ॥

दो०-भरत तीसरे पहर कह, कीन्ह प्रवेसु प्रयाग ।

कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०४॥

मलका मलकत पायन कैसे । पकजकोस ओसकन जैसे ॥
भरत पयादेहि आये आजू । भयउ दुखित सुनि सकलसमाजू ॥
खरि लीन्ह सब लोग नहाये । कीन्ह प्रनाम त्रिधेनिहि आये ॥
सविधि सितासित नीर नहाने । दिये दान महिसुर सनमाने ॥
देवत स्यामल - धवल - हिलोरे । पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल - काम - प्रद तीरथराऊ । बेदबिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
मोंगउँ भीर त्यागि निजधरमू । आरत वाढ़ न करइ कुकरमू ॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी । सफल करहि जग जाचकवानी ॥

दो०-अरय न धरम न काम रधि, गति न चहउँ निरवान ।

जनम जनम रति रामपद, यह वरदान, न आन ॥२०५॥

जानहु राम कुटिल करि मोही । लोग कहउ गुरु-साहिब-श्रीही
 सीता राम - चरन रति मोरे । अनुदिन बढउ अनुग्रह तारे ।
 जलद जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जल पबिपाहन डारउ
 चातक रटनि घटे घटि जाई । बढे प्रेम सब भौति भलाई ।
 कनकहि बान चढइ जिमि दाहे । तिमि प्रिय तम पद नेम निवाह ।
 भरत बचन सुनि मोंफ त्रिवेनी । भइ मृदुवानि सु - मगल दली ।
 तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । राम - चरन - अनुराग अगाधू ।
 बादि गलानि करहु मन माही । तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाही ।

दो०-तनु पुलकेउ हिय हरप सुनि, येनिबचन अनुकूल ।

भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरपित बरपहि फूल
 प्रमुदित तीरथ - राज - निवासी । वैपानस बडु गृही उवासी ।
 कहहि परसपर मिलि दस पाँचा । भरत सनेह सील सुधि साचा ।
 सुनत राम - गुन - ग्राम सुहाये । भरद्वाज मुनिवर पहि आवे ।
 बडप्रनाम करत मुनि देखे । मूरतिवत, भाग निज
 धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्हि असीस कृतारथ
 आसन दीन्ह नाइ सिर बैठे । चाहत सकुच गृह जनु भनि पैठे ।
 मुनि पूछव कछु यह बड सोचू । बोले रिपि लखि सीलसक ।
 सुनहु भरत हम सन सुधि पाई । विधिकरतब पर कछु न बसाई ।

दो०-तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति ।

तात कैकइहि दोष नहि, गई गिरा मतिधूति ॥२०॥
 यहउ कहत भल कहहि न कोऊ । लोक वेद दुषसमत दोऊ ।
 तात तुम्हार बिमलजस गाई । पाइहि लोकउ वेद बढाई ।
 लोक वेद समत सब कहई । जेहि पितु देइ राजु सो लडाई ।
 राठ सत्यव्रत तुम्हहि बोलाई । देत राज सुख घरम बढाई ।
 रामगवन घन अनरयमूला । जो सुनि सकल बिस्व भइ मूला ।
 सो भावीवस रानि अयानी । करि कुचालि अतहु पछितानी ।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू । कहइ सो अधम अयान असाधू ॥
करतेहु राज त तुम्हहिं न दोषू । रामहिं होत सुनत सतोषू ॥
दो०-अब अति कीन्हेहु भरत भल, तुम्हहिं उचित मत एहु ।

सकल सुमगल-मूल जग, रघुवरचरन सनेहु ॥२०८॥

सो तुम्हार धन जीवन प्राणा । भूरि भाग को तुम्हहिं समाना ॥
यह तुम्हार आचरज न ताता । दसरथसुअन राम प्रिय भ्राता ॥
सुनहु भरत रघुपति मन माहीं । प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाहीं ॥
लपन राम सीतहिं अति प्रीती । निसि सब तुम्हहिं सराहत बीती ॥
जाना मरम नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेह रघुचर के । सुरज जीवन जग जस जडनर के ॥
यह न अधिक रघुवीर बडाई । प्रनत - कुटुब - पाल रघुराई ॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहु । धरे देह जनु रामसनेहु ॥
दो०-तुम कहँ भरत कलक यह, हम सब कहँ उपदेसु ।

राम भगति रस सिद्ध हित, भा यह समय गनेसु ॥२०९॥

नयविंधु निमल तात जसु तोरा । रघुनर किंकर - कुमुद - चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहू ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥
फोक तिलोक प्रीति अति करही । प्रभु प्रतापु रवि छविहि न हरही ॥
निसि दिन सुखद सदा सन काहू । प्रसिहि न कैकइकरतन राहू ॥
पूरन राम - सुप्रेम - मियूपा । गुरुअवमान दोख नहिं दूपा ॥
रामभगत अय अमिय अघाहू । कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू ॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी । सुमिरत सकल - सुमगल-खानी ॥
दसरथ गुन-गन बरिन न जाहीं । अधिक कहाजेहि सम जग नाहीं ॥
दो०-जासु सनेह-सकोच बस, राम प्रगट भए आइ ।

जे हर हिय-नयननि कबहुँ, निरखे नाहिं अघाइ ॥२१०॥

फोरति विंधु तुम्ह कीन्ह अनूपा । जहं बस राम प्रेम-मृग रूपा ॥
तात गलानि करहु जिय जाये । डरहु दरिद्रहि पारस पाये ॥

सुनहु भरत हम मूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन
 सब साधन कर सुफल सुहावा । लपन राम सिय-दरसन
 तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा । सहित प्रयाग सुभागा हमारा ।
 भरत धन्य तुम्ह जग जस जयऊ । कहि अस प्रेनमगन ॥
 सुनि मुनिवचन समासद हरपे । साधु सरहि सुमन सुर बर
 धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा । सुनि सुनि भरत भगन ॥

दो०—पुलकगात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नैन ।

करि प्रनाम मुनिमडलिहिं, बोले गदगद बेन ॥ ७११ ॥

मुनि समाज अरु तीरथराजू । साचिहु सपथ अघाइ अकारू ।
 एहि थल जौं कह्यु कहिय बनाई । एहि सम अधिक न अघ अघमाई
 तुम्ह सर्वज्ञ कहउँ सतिभाऊ । उर - अतरजामी रघुराऊ ।
 मोहि न मातुकरतब कर सोचू । नहिं दुर जिय जग जानहिं पावू
 नाहिं न डर विगरहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोचू
 सुकृत सुजस भरि सुवन सुहाये । लछमन राम सरिस सुत
 रामगिरह तजि तन छनभगू । भूप सोच कर कवन प्रसू
 राम लपन सिय विनु पग पनहीं । करि मुनिवेप फिरहिं

दो०—अजिन बसन फल असन महि, सयन डसि दुस पात ।

बसि तरुतर नित सहत हिम, आतप बरपा बात ॥ ७१२ ॥

एहि दुख दाह दहइ नित छाती । भूर न बासर नींद न राती ।
 एहि कुरोग कर औपघ नाही । सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं ।
 मातु कुमत घटई अघमूला । तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ।
 कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजत्रू । गाढि अवधि पढि कठिन कुमत्रू ।
 मोहि लागि यह कुठाटु तेहिं ठाटो । घालेसि सब जग चारह बाटो ।
 मिटइ कुजोग राम फिरि आये । बसइ अवघ नहिं आन उपाये ।
 भरतवचन सुनि मुनि सुर पाई । सबहिं कीन्ह बहु भौंति बढाई ।
 तात फरट अनि सोच विसेरौ । सब दुख मिटिहि रामपग देखी ।

दो०-करि प्रबोध मुनिवर कहेद, अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।

कद मूल फल फूल हम, देहि लेहु करि छोहु ॥२१३॥

मुनि मुनिवचन भरत हिय सोचू । भयउ कुअवसर कठिनसँकोचू ॥
जानि गरुड गुरुगिरा बहोरी । चरन बदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा । परमधरम यह नाथ हमारा ॥
भरतवचन मुनिवर मन भाये । सुवि सेवक सिपनिकट बोलाये ॥
चाहिय कीन्ह भरतपहुनाई । कद मूल फल आनहु जाई ॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाये । प्रमुदित निज निज काज सिधाये ॥
मुनिहि सोच पाहुन बड नेवता । तसि पूजा चाहिय जस देवता ॥
मुनिरिधिसिधि अनिमादिफ आई । आयसु होइ सो करहि गोसाई ॥

दो०-रामविरह व्याकुल भरत, सानुज सहित समाज ।

पहुनाई करि हरहु राम, कहा मुदित मुनिराज ॥२१४॥

रिधिसिधिसिर धरि मुनिवर बानी । बडभागिति आपुहि अनुमानी ॥
कहहि परसपर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि राम-लघु भाई ॥
मुनिपद बदि करिय सोइ आजू । होइ सुखी सब राजसमाजू ॥
अस कहि रचे रुचिर गृह नाना । जेहि बिलोकि बिलखाहि बिमाना ॥
भोग निभूति भूरि भरि राखे । देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साजु सब लीन्हे । जोगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हे ॥
सबसमाज सजि सिधि पल माही । जे सुख सुरपुर सपनेहुं नाही ॥
प्रथमहि बास दिये सब केही । सुन्दर सुखद जथारुचि जेही ॥

दो०-बहुरि सपरिजन भरत कहँ, रिपि अस आयसु दीन्ह ।

बिधि-विसमय दायक विभव, मुनिवर तपबल कीन्ह ॥२१५॥

मुनिप्रभाउ जब भरत बिलोका । सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुखसमाज नहिं जाइ बखानी । देखत विरति बिसारहिं छानी ॥
आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहँग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमियसमाना । बिमल जलासय बिबिधविधाना ॥

असन पान सुचि अमिय अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
 सुरसुरभी सुरवरु सबही के । लखि अभिलाप सुरेस सची के ॥
 रितु वसन्त बह त्रिविध वयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारों
 स्रक चन्दन बनतादिक भोगा । देखि हरख बिसमयवस लोग ॥

दो०-सपति चकई भरत चक, मुनिआयसु खेलवार ।

तेहि निसि आश्रम पीजरा, राखे भा भिनुसार ॥२१६॥

कीन्ह निमज्जन तीरथराजा । नाइ मुनिहिं सिह सहित समाना ॥
 रिपिआयसु असीस सिर राखी । करि दण्डवत विनय बहु भारी ॥
 पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे । चले चित्रकूटहि चित दीन्हे ॥
 रामसरण कर दीन्हे लागू । चलत देहधरि जनु अनुरागू ॥
 नहिं पदत्रान सीस नहिं छाया । प्रेम नेम व्रत धरम अमाया ॥
 लपन राम - सिय - पथ-कहानी । पूछत सरपहि कहत मृदुबानी ॥
 राम बास-थल घिटप विलोके । उर अनुराग रहत नहिं रोके ॥
 देखि दसा सुर वरपहिं फूला । भइ मृदु महि मग मगलमूला ॥

दो०-किये जाहिं छाया जलद, सुखद बहइ बरबात ।

तस मग भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहिं जात ॥२१७॥

जड चेतन मग जीव घनेरे । जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ॥
 ते सब भये परम - पद - जोगू । भरतदरस मेढा भवरोगू ॥
 यह बडि थात भरत कह नहिं । सुमिरत जिनहिं राम मनमाहिं ॥
 चारेक राम कहत जग जेऊ । होत तरनतारन नर तेऊ ॥
 भरत राम प्रिय पुनि लघु आता । कस न होइ मग मगलदाता ॥
 सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं । भरतहिं निरखि हरप हिय लहहीं ॥
 देखि प्रभाव सुरेसहि सोचू । जग भल भलेहि पोच कहँ पोचू ॥
 गुरु सन कहेउ करिय प्रभु सोई । रामहिं भरतहिं भेंट न होई ॥

दो०-राम सकोची प्रेमवस, भरत सप्रेम पयोधि ।

बनी थात विगरन चाहति, करिय जतन छल सोधि ॥२१८॥

वचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने । सहस नयन बिनु लोचन जाने ॥
 कह गुरु यादि छांभ छल छाड़ू । इहाँ कपट कर होइहि माँड़ू ॥
 माया पति-सेवक सन माया । करइ ते चलदि परइ सुरराया ॥
 तब कह्यु कीन्ह रामरूप जानी । अत्र कुचाल करि होइहि हानी ॥
 सुनु सुरेस रघुनाथ स्वमाऊ । निजअपराध रिसाहिं न काऊ ॥
 जो अपराध भगत कर करई । राम रोप पायक सो जरई ॥
 लोकहु वेद विदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुरवासा ॥
 भरतसरिस को रामसनेही । जग जप राम राम जप जेही ॥

दो०-मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुवर भगत अकाज ।

अजस लोक परलोक दुख, दिन दिन सोकसमाज ॥ २१६ ॥

सुनु सुरेस उपदेशु हमारा । रामहिं सेवक परमपियारा ॥
 मानत सुख सेवकसेवकाई । सेनकबैर वैर अधिकाई ॥
 यद्यपि सम नहिं राग न रोपू । गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू ॥
 करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सोतसफल चाखा ॥
 तदपि करहिं सम विषम बिहारा । भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
 अशुन अलेख अमान एक रस । राम सगुन भये भगत-प्रेम बस ॥
 राम सदा सेवकरुचि राखी । बेद - पुरान - साधु-सुर-सारसी ॥
 अस जिय जानि तजहु कृटिलाई । करहु भरत पद-प्रीति सुहाई ॥
 दो०-रामभगत परहितनिरत, परदुख दुखी दयाल ।

भगतसिरोमनि भरत तैं, जनि डरपहु सुरपाल ॥ २२० ॥

सत्यसय प्रभु सुरहित फारी । भरत राम आयसु-अनुसारी ॥
 स्वारथबिबस भिकल तुम्ह होहू । भरतदोस नहिं रावर मोहू ॥
 मुनि सुरवर सुर-गुरु वर चानी । भा प्रमोद मन मिटी गलानी ॥
 वरपि प्रसून हरपि सुरराऊ । लगे सराहन - भरत सुभाऊ ॥
 एहि विधि भरत चले मग जाहीं । दसा देखि मुनि सिद्ध सिद्धाहीं ॥
 जेहिं राम कहि लेहिं उसासा । उभगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा ॥

द्रवहिं वचन सुनि कुलिस पपाना । पुरजन प्रेम न जाइ बसाना ॥
बीच वास करि जमुनहिं आये । निरखि नीरु लोचन जल छापे ॥

दो०-रघु-नर-वरन-निलोकि वर, बारि समेत समाज ।

होत भगन बारिधि बिरह, चढे विवेक जहान ॥ २२१ ॥

जमुनतीर तेहि दिन करि वासू । भयउ समयसम सगहिं सुवासू ॥
रातिहिं घाट घाट की तरनी । आई अगनित जाहिं न बरती ॥
प्रात पार भये एकहिं रेवा । तोपे रामसखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहिं सिर नाई । साथ निपादनाथ दोउ भाई ॥
आगे मुनि-वरबाहन आछे । राजसमाज जाइ सय पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बधु पयादे । भूपन बसन बेप सुठि सादे ॥
सेवक सुहृद सचिबसुत साथी । सुभिरत लपन सीय रघुनाथी ॥
जहँ जहँ राम वास बिस्रामा । तह तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥

दो०-मगबासी नरनारि सुनि, धामकाम तजि धाइ ।

देखि सरूप सनेह सब, मुदित जनमफलु पाइ ॥ २२२ ॥

कहहि सप्रेम एक एक पाहीं । रामलपन सखि होहिं कि नाहीं ॥
धय बपु बरन रूपु सोइ आली । सील सनेह सरिस सम चाली ॥
बेप न सो सरि सीय न सगा । आगे अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्नमुख मानस रोदा । सरि सदेह होइ येहि भेदा ॥
तासु तरक तियगन मन मानी । कहहिं सकल तोहि समन सयाना ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी । बोली मधुरवचन तिय दूजी ॥
कहि सप्रेम सब कथाप्रसंग । जेहि बिधि राम-राज-रस-भंग ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी । सील सनेह सुभाय सुभागी ॥

दो०-चलत पयादेहि खात फल, पिता दीन्ह तजि राज ।

जात मनावन रघुवरहिं, भरतसरिस को आज ॥ २२३ ॥

मायप भगति भरत आचरनू । कहत मुनत दुख-दूषन-हरनू ॥
जो कह्यु कह्य थोर सखि सोई । रामबधु अस काहे न होई ॥

हम सब सानुज भरतहिं देखे । भयउ धन्य जुवतीजन लेखे ॥
 सुनि गुन देखि दसा पछिताही । कैकेइ-जननि जोग सुत नाहीं ॥
 कोउ कह दूषन रानिहि नाहि न । बिधि सब कीन्ह हमहिं जो दाहिना ॥
 कहँ हम लोक-वेद बिधि हीनी । लघुतिय कुल करतूति-मलीनी ॥
 वसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा । कह यह दरसु पुन्यपरिनामा ॥
 अस अनद अचरज प्रतिग्रामा । जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥
 दो०-भरतदरस देखत खुलेउ, मग लोगन्ह कर भागु ।
 जनु सिंहल बासिन्ह भयउ, बिधिबस सुलभ प्रयागु ॥२२४॥

निज-गुन-सहित राम-गुन गाथा । सुनत जाहि सुमिरित रघुनाथा ॥
 तीरथ मुनिआश्रम सुरधामा । निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥
 मनुहीं मन माँगहिं नर-गहू । सीय-राम - पद - पदुम सनेहू ॥
 नी । बैरानस बडु जती उदासी ॥
 ती । केहि बन लपनु रामु बैदेही ॥
 १ । भरतहिं देखि जनमफलु लहहीं ॥
 ॥ ते प्रिय राम-लपन सम लेखे ॥
 । सुनत राम बन-बास कहानी ॥

चले सुमिरि रघुनाथ ।

भरत सरिस सब साथ ॥२२५॥

फरकहिं सुरगद बिलोचन बाहू ॥

मेलहिं राम मिटिहि दुरगदाहू ॥

गहिं सनेहसुरा सब छाके ॥

हवल बचन प्रेमवस बोलहिं ॥

नसिरोमनि सहज सुहावा ॥

रसमेत वसहिं दोउ घीरा ॥

जय जानकिजीवन रामा ॥

फिरि अवध चले रघुराजू ॥

०१८५

दो०-भरत प्रेम तेहि। समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।

कविहि अगम जिमि ब्रह्मसुख, अह मम मलिन-जनेषु॥

सकलसनेह सिथिल रघुबर के। गये कोस दुइ दिनकर ढरक।
जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरत॥
उहाँ राम रजनीअवसेरया। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आये। नाथ बियोग ताप तन ताप॥
सकल मलिनमन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सियसपन भरे जल लोचन। भये सोचबस सोच विमोचन॥
लपन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कई॥
अस कहि बधुसमेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

छन्द-सनमानि सुर मुनि बदि बैठे उत्तर दिसि देखत भये।

नभ धूरि रग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आलस गये॥

तुलसी उठे अवलोकि फारनु काह चित सचकित रहे।

सब समाचार किरात कोलन्हि आई तेहि अवसर कहे॥

सो०-सुनत सुमगल नैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।

सरदसरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥२२॥

बहुरि सोचबस भे सियरमनू। कारन कवन भरत आगमनू॥
एक आई अस कहा बहोरी। सेन सग चतुरग न थोरी॥
सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितुबच उत बधुसँकोचू॥
भरतसुभाउ समुक्ति मन माहीं। प्रमुचित हितथिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महुँ साधु सयाने॥
लपन लपेट प्रमु-हृदय रम्यारू। कहत समयसम नीतिविचारू॥
बिन पूछे कहुँ गोसाईं। सेवकसमय न ढीठ डिठाई॥
तुम्ह सर्वज्ञ सिरोमनि स्वामी। आपनि समुक्ति कहउँ अनुगामी॥

दो०-नाथ सुहृद सुठि सरलचित, सील-सनेह निधान।

सय पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥२३॥

विषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ मोहबस होहि जनाई ॥
 भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभु-पद प्रेम सकल जग जाना ॥
 तेऊ आज राजपद पाई । चले धरममरजाद भेटाई ॥
 कुटिल कुबधु कुअवसर ताकी । जानि राम बनवास एकाकी ॥
 करि कुमत्र मन माजि समाजू । आये करइ अकटक राजू ॥
 कोटिप्रकार कलपि कुटिलाई । आये दल बटोरि दोड भाई ॥
 जौं निय होति न कपट कुचाली । केहि सोहाति रथ याजि गजाली ॥
 भरतहि दोष देइ को जाये । जग बौराइ राजपद पाये ॥

दो०-ससि गुरु तिय गामी नहुष, बढेउ भूमि-सुर-जान ।

लोकवेद तें विमुख भा अधम न येनु समान ॥२२६॥

सहसबाहु सुरनाथ प्रिसकू । केहि न राजमद दीन्ह कलकू ॥
 भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ । रिपु रिन रच न राख्य काऊ ॥
 एक कीन्ह नहिं भरत भलाई । निदरे राम जानि असहाई ॥
 समुक्ति परिहि सोउ आजु विसेरी । समर सरोख राममुख पेखी ॥
 इतना कहत नीतिरस भूला । रन रस बिटप पुलकमिस फूला ॥
 प्रभुपद बदि सीस रज राखी । बोले सत्य सहज बल भाखी ॥
 अनुचित नाथ न मानन मोरा । भरत हमहिं उपचार न थोरा ॥
 कहै लागि सहिय रहिय मन मारे । नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥

दो०-धृतिनाति रघु कुल जनम, राम अनुज जग जान ।

लातहुं भारे चढति सिर, नीच को धूरिसमान ॥२३०॥

उठि कर जोरि रजायसु माँगा । मनहु बीर रस सोवत जागा ॥
 बाँधि जटा सिर फसि कटि भाया । साजि सरासन सायक हाया ॥
 आज राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहिं समर सिखावन देऊँ ॥
 नामनिरादर कर फल पाई । सोवहु समरसेज दोड भाई ॥
 आइ यत्ना भक्त सकल समाजू । अकट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
 जिमि करि निकर दलइ मृगराजू । लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥

तसेहि भरतहि सेनसमेता । सानुज निदरि निपातउ स्नेहा ।
जौ सहाय कर सकर आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ।

दो०-अतिसरोप मापे लपन, लखि सुनि सपथ प्रवान ।

सभय लोक सब लोकपति, धादत भभरि भगान ॥२३१॥

जग भयमगन गगन भइ बानी । लपन-बाहु बल विपुल बहानी ।
तात प्रतापप्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहार ।
अनुचित उचित काज कछु होऊ । समुझि करिय भल कह सब काज ।
सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहि बेद बुध ते बुध नाहीं ।
सुनि सुरवचन लपन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सनतें कठिन रावमद माई ।
जो अँचवत मातहि नृप तेई । नाहि न साधु सभा जेहि सँई ।
सुनहु लपन भल भरतसरीसा । विधिप्रपच महुँ सुना न दीसा ।

दो०-भरतहि होइ न राजमद विधि हरि हर पद पाइ ।

कबहुँ कि काँजीसीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥२३२॥

तिमिर तरुन तरनिहि सकु गिलई । गगन मगन सकु मेघहि मिलई ।
गोपद जल बूढहि घटजोनी । सहज छमा बरु छाडइ छोनी ।
मसकफूँक करु मेरु उडवाई । होइ न नृपमद भरतहि भाई ।
लपन तुम्हार सपथ पितुआना । सुचि सुबधु नहिँ भरत समाना ।
सगुनछीर अवगुनजल ताता । मिलइ रचइ परपच निधाना ।
भरत हस रवि-वस तडागा । जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा ।
गहि गुन पय तजि अवगुनबारी । निज जस जगत कीन्ह उजियारी ।
कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ । प्रेमपयोधि मगन रघुराऊ ।
दो०-सुनि रघुबर बानी विबुध, देखि भरत पर हेतु ।

सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु ॥२३३॥

जौ न होत जग जनम भरत को । सकल घरम धुर धरनि धरत को ।
कवि कुल-अगम भरत गुन गाया । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ।

नपन राम सिय मुनि सुरवानी । अतिसुख लहेउ न जाइ वखानी ॥
हौं भरत सय सहित सहाये । मन्दाकिनी पुनीत नहाये ॥
रितसमीप राखि सब लोगा । माँगि मातु-गुरु-सचिव नियोगा ॥
क्ले भरत जहँ सियरघुराई । साथ निपादनाथ लघुभाई ॥
समुक्ति मातुकरतब सकुचाहीं । करत कुतर्क कोटि मन माहीं ॥
राम-लपन सिय मुनि मम नाऊँ । उठि जनिअनत जाहिँ तजि ठाऊँ ॥

दो०-मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु कहहिँ सो थोर ।

अघअवगुन छमि आदरहिँ, समुक्ति आपनी ओर ॥२३४॥

जौं परिहरहिँ मलिन मन जानी । जौं सनमानहिँ सेवक मानौ ॥
मोरे सरन राम की पनहीं । राम सुखामि दोष सब जनहीं ॥
जग जसभाजन चातक मीना । नेम प्रेम निज निपुन नधीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह मिथिल सब गाता ॥
फेरति मनहिँ मातुकृत खोरी । चलत भगतिबल धीरजधोरी ॥
जब समुक्त रघुनाथसुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरतदसा तेहि अवसर कैसी । जलप्रवाह जल अलि-गति-जैसी ॥
देखि भरत कर सोच सनेहू । भा निपाद तेहि समय विदेहू ॥

दो०-लगे होन भगल सगुन, मुनि गुनि कहत निपाद ।

मिटहिँ सोच होइहिँ हरप, पुनि परिनाम बिपाद ॥२३५॥

सेवकबचन सत्य सब जाने । आसन्न निकट जाइ नियराने ॥
भरत दीप्त बन सैल-समाजू । मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी । त्रिविध ताप पीडित ग्रहभारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुभारी । होहिँ भरतगति तेहि अनुहारी ॥
रामबास बनसपति भ्राजा । सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिय विराग विवेक नरेसू । विपिन सुहावन पावन देसू ॥
मट जमनियम सैल रजधानी । साँति सुमति सुखि सुन्दर रात्री ॥
सकल अग सपन्न सुराऊ । रामचरनआसित चित चाऊ ॥

दो०-जीवि मोह-महि पाल दल, सहित विवेक मुञ्चाल ।

करत अकटक राज्य पुर, सुख सपदा सुकाल
वनप्रदेस मुनिवास घनेरे । जनु पुर नगर गाउँगन
विपुल विचित्र विहग मृग नाना । प्रजासमाज न जाई बल
खगहा करि हरि घाघ बराहा । देखि महिष घृष सा ११९
बयर बिहाय बरहिँ एक सगा । जह तहँ मनहुँ सेन बतुरा
भरना भरहिँ मत्तगज गाजहिँ । मनहुँ १२०

चक चकोर चातक सुक पिक गन । कूजत मजु मराल मुदितमन
अलिगन गावत नाचत मोरा । जनु सुराज मगल चहुँ ओरा
बेलि विटप वृन सफल सफूला । सत्र समाज मुद मराल-मूला

दो०-रामसल सोभा निरखि, भरत हृदय अतिप्रेम ।

तापस तपफल पाइ जिमि, सुराजी सिराने नेम ॥ १२१ ॥
तब केवट ऊचे चढि धाई । कहेउ भरत सन भुज उठाई ।
नाथ देखियहि विटपबिसाला । पाकरि जनु रसाल
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य वटु सोहा । मजु बिसाल देखि मन मोहा ।
नील सघन पल्लव फल लाला । अबिचल छाँह सुखद सब बाला ।
मानहुँ तिमिर-अरुन मय रासी । विरची विधि सकेलि सुखमासी ।
एहि तरु सरितसमीप गोसाई । रघुवर परन कुटी जहँ छाई ।
तुलसी तरुवर विविध सुहाये । कहुँ सिय पिय कहुँ लपन लगाये ।
बटछाया वेदिका बनाई । सिय निज-पानि सरोज सुहाई ।

दो०-जहों वैठि मुनि गन-सहित, नित सिय राम सुजान ।

सुनहिँ कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥ १२२ ॥
सप्तावचन सुनि विटप निहारी । समगे भरत बिलोचन बारी ।
करत प्रनाम खले दोउ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचार्थ ॥
हरपहिँ निरखि राम पद अका । मानहुँ पारस पायेउ रका ॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिँ । रघुवर मिलन सरिससुख पावहिँ ॥

देखि भरतगति अकथ अतीवा । प्रेम मगन मृग राग जडजीवा ॥
सखहि सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपथ सुर बरसहि फूला ॥
निरखि सिद्धसाधक अनुरागे । सहससनेह सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाव भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।
दो०-प्रेमअमिय मदर निरह, भरत पयोधिगंभीर ।

मधि प्रगटे सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुवीर ॥ २३६ ॥

सखासमेत मनोहर जोटा । लखेउ न लपन सघन बन ओटा ॥
भरत दीरा प्रमुआस्रम पावन । सकल सु मगल-सदन सुहावन ॥
करत प्रवेस मिटे दुरदाया । जनु जोगी परमारथ पावा ॥
देखे भरत लपन प्रमु आगे । पूछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनिपट बाँधे । तून कसे कर सर धनु काँधे ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू । सीयसहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन जटिल तन स्यामा । जनु मुनिवेष कीन्ह रतिकामा ॥
करकमलनि धनुसायक फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥

दो०-लसत मजु मुनिमडली, मध्य सीय रघुचद ।

ज्ञानसभा जनु तनु धरे, भगति सचिदानंद ॥ २४० ॥

सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरप सोक सुर दुख-गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई । भूतल परे लकुट की नाई ॥
बचन सप्रेम लपन पहिचाने । करत प्रनाम भरत जिय जाने ॥
बधुसनेह सरस एहि ओरा । इत सादियसेवा बरजोरा ॥
मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई । सुकवि लपनमन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढी चग जनु रौच खेलारू ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहूँ पट कहूँ निपग धनु तीरा ॥

दो०-बरवस लिये उठाइ चर, लाये कृपानिधान ।

भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहि अपान ॥ २४१ ॥

मिलनि प्रीतिकिमि जाइ बर्यानी । कवि कुल अगम करव मन बाँकी
 परम-प्रेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसर्यो
 कहहु सुप्रेम प्रगट को करई । केहि छाया कवि मति अनुसर्यो
 कविहिं अरथ आखर बल साँचा । अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा ।
 अगमसनेह भरतरघुवर को । जह न जाइ मनु निधि-हरि-हरको
 सो मैं कुमति कहउ केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँढरतौली
 मिलनि बिलोकि भरत रघुवर की । सुरागन सभय धकधकी धरका
 समुझाये सुरगुरु जह जागे । धरपि प्रमून प्रससन लागे ॥

दो०-मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम ।

भूरि भाय भेंटे भरत, लखिमन करत प्रनाम ॥२४२॥

भेंटेउ लपन ललकि लघु भाई । बहुरि निपाद लीन्ह उर लाई ।
 पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बदे । अभिमत आसिप पाइ अन्दे
 सानुज भरत उमगि अनुरागा धरि सिर सिय पद पदुम परागा
 पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये । सिर करकमल परसि बैठाये
 सीय असीस दीन्हि मन माहीं । मगन सनेह देहसुधि नार्ही
 सबविधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपहर बीता
 कोउ फछु कहइ न कोउ कछु पूछा । प्रेम भरा मन निजगति छूछा
 तेहि अवसर केवट धीरज धरि । जोरि पानि दिनवत प्रनाम करि ॥

दो०-नाथ साथ मुनि नाथ के, मातु सकल पुरलोग ।

सेवक सेनप सचिव सब, आये विकल वियोग ॥२४३॥

सीलसिधु मुनि गुरुआगमनू । सिय समाम राखे रिपुदमनू ॥
 चले सप्रेम राम तेहि काला । धीर - धरम - धुर दीनदयाला
 गुरुहि देखि सानुज अनुरागे । दण्डप्रनाम करन प्रमु लागे ॥
 मुनिधर धाइ लिये उर लाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥

म पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि ते दडप्रनामू ॥
 तामसरत्ता रिपि बरवस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥
 धुपति भगति सुमगल मूला । नभ सराहि सुर वरिपहि फूला ॥
 हि सम निपट नीच कोउ नाहीं । बड वसिष्ठ को सम जग माहीं ॥

दो०—जेहि लखि लपनहुँ तें अधिक, मिले मुदित मन राउ ।
 सो सीता पति भजन को, प्रगट प्रतापप्रभाउ ॥२४४॥

भारत लोग राम सब जाना । फरुनाकर सुजान भगवाना ॥
 जो जेहि भाय रहा अभिलासी । तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी ॥
 सानुन मिलि पल महुँ सब चाहू । कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू ॥
 यह बडि घात राम कै नाहीं । जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं ॥
 मेलि केवटहि उमगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहि भागा ॥
 ऐसी राम दुखित महतारी । जनु सुनेलि अबली हिम मारी ॥
 यम राम भेंटी कैकेई । सरल सुभाय भगति मति भेई ॥
 ग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी । काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥

दो०—भेंटी रघुवर मातु सन, करि प्रबोध परितोष ।
 अथ ईस आधीन जग, काहु न देख्य दोष ॥२४५॥

रु तिय पद-बदे दुहुँ भाई । सहित बिप्रतिय जे सँग आई ॥
 ग-गौरि सम सन सनमानी । देहि असीस मुदित मृदुबानी ॥
 हि पद लगे सुमित्राअफा । जनु भेंटी सपति अति रफा ॥
 नि जननीचरननि दोड आवा । परे प्रेम व्याकुल सब गाता ॥
 ति अनुराग अथ उर लाये । नयन सनेह सलिल अन्हवाये ॥
 हि अवसर फर हरप विपादू । किमि कबि कहइ मूक जिमि स्वादू ॥
 लि जननिहि सानुज रघुराऊ । गुरुसन कहेउ कि धारिय पाऊ ॥
 जन पाइ मुनीसनियोगू । जल थल तकि तकि उत्तरे लोगू ॥

दो०—महिमुर मत्री मातु गुरु, गने लोग लिये साथ ।
 पायन आस्रम गमनु किय, भरत लपन रघुनाथ ॥२४६॥

सीय आइ मुनि वर पग लागी । उचित असीस लही मनमोहि ।
 गुरुपतिनिहिं मुनितियन्ह समेता । मिली प्रेम कहि जाइ न नगा ।
 बंदि यदि पग सिय सगही के । आसिरवचन लहे प्रिय चीरे ।
 सासु सकल जन सीय निहारी । मूँदे नैन सहमि सुकुमार ।
 परी अधिकनस मनहुँ भराली । काह कीन्ह करता दुचाल ।
 तिन्ह सिय निरखि निपट दुख पावा । सो सब सहिये जो दैव सहावा ।
 जनकसुता तब उर धरि धीरा । नील-नलिन-लोयन भरि नीरा ।
 मली सकल सासुन्ह सिय जाई । तेहि अंगसर फरना महि छाई ।

दो०-लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग ।

हृदय असीसहिं प्रेमनस, रहिहु भरा सोदाग ॥१४६॥
 निकल मनेह मीय मन रानी । बैठन सगहिं कहेउ गुरदास ।
 कहि जगगति मायिक मुनिनाथा । कहे कछुक परमारगगा ।
 नृप कर मुर-पुर-गगन सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुस पावा ।
 मरनहेतु निजनेह चिचारी । भे अति निकल धीर धुर धारा ।
 कुलिसकठोर सुनत कटुवानी । निलपत लपन सीय सब रानी ।
 सौकरनिकल अति सकल समाजू । मानहुँ राज अफानेउ आइ ।
 मुनिनर बहुरि राम समुझाये । सहित समाज सुरसरित द्वावे ।
 व्रत निरनु तेहि दिन प्रभु कीन्हा । मुनिहु कहे जल काहु न लान्हा ।

दो०-भोर भये रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीट ।

सद्धा-भगति समेत प्रभु, सो सब सादर कीह ॥१४७॥
 करि पितृक्रिया वेद जमि भरनो । भे पुनीत पातरुत्तम-नरना ।
 जानु नाम पावक अघतूला । सुमिरत सकल सु भगल मूला ।
 मुद्ध मो भयउ साधु समेत अस । तीरथ-प्रावाहन सुरसरि जम ।
 सुद्ध भये दुइ वासर धीते । बोले गुरुसन राम पिरित ।
 नाय लोग सब निपट दुखारी । कंद मूल फल अंबु अहाए ।
 सानुज भरते सखिय मन माता । देखि मोहि पल जमि जुग नगा ।

सबसमेत पुर धोरिय पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
 बहुत कहैउ सन कियउ छिठाई। उचित होइ तस करिय गुसाई ॥
 दो०-धर्मसेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम ।
 लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहु नितानाम ॥२४६॥
 रामबचनसुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महँ विकल जहाजू ॥
 सुनि गुरुगिरा मगल मूला। भयहु मनहुँ मारुत अनुकूला ॥
 पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघओघ नसाहीं ॥
 मगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहि हरपि दडवत करि करि ॥
 राम-सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल कतहुँ दुख नाहीं ॥
 भरना भरहि सुधासम चारी। त्रि विधि ताप हर त्रिविध बयारी ॥
 बिटप बेलि रुत अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
 सुन्दर सिला सुजद तरु छाहीं। जाड वरनि बन छनि केहि पाहीं ॥
 दो०-सरनि सरोरुह जल विहग, कूजत गुजत भृङ्ग ।
 बैर निगत निहरत निपिन, मृग विहग बहुरग ॥२४७॥
 कोल किरात भिल्ल बनवासी। मधु सुचि सुन्दर स्वादु सुधा सी ॥
 भरि भरि परनपुटी रचि रूरी। कद मूल फल अकुर जूरी ॥
 समहि देहि करि विनय प्रनामा। कहि कहि स्वादुभेद गुन नामा ॥
 देहि लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं ॥
 कहहि सनेहमगन मृदुबानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी ॥
 तुम्ह सुकृती हम नीच निपादा। पावा दरसन रामप्रसादा ॥
 हमहि अगम अति दरस तुम्हारा। जस मेरुधरनि देव घुनि धोरा ॥
 रामकृपाल निपाद नेवाजा। परिजन प्रजैउ चाहिये जस राजा ॥
 दो०-यह जिय जानि सँकोच तजि, करिय छोड सँसि नेहु ।
 हमहि कृतारथ करन लगि, फल तन अकुर लेहु ॥२४८॥
 तुम्ह प्रिय पाहुन बन पग घारे। सेवाजोग न भाग हमारे ॥
 देन पहा हम तुमहि गोसाई। ईधने पाते किराते मितार्इ ॥

यह हमारि अति बडि सेवकाई । लेहिं न बासन बसन चोराई ।
 हम जड जीव जीव गन धाती । कुटिल कुचाली कुमति बुनाती ।
 पाप करत निसि बासर जाहीं । नहिं पटकटि नहिं पेट अपाहीं ।
 सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ । यह रघु नदन-दरस प्रभाऊ ।
 जब तैं प्रमु पद पदुम निहारे । मिटे दुसह दुख दोष हमार ।
 बचन सुनत पुरजन अनुरागे । तिन्ह के भाग सराहन लाग ॥

छन्द-लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनायहीं ।

बोलनि मिलनि सिय राम-चरन सनेह लखि सुख पावहीं ॥
 नरनारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा ।
 तुलसी कृपा रघु बस-मनि की लोह लेइ नौका तिरा ॥

सो०-बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब ।

जल ज्यों दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥२५०॥

पुरजन नारि मगन अतिप्रीती । बासर जाहिं पलक सम बीती ॥
 सीय सासु प्रति बेप बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥
 लखन न मरम राम निनु काहू । माया सब सियमाया भाहू ॥
 सीय सासु सेवा बस कीन्ही । तिन्ह लहि सुरसिस आसिपदाही ॥
 लखि सियसहित सरल दोड भाई । कुटिल रानि पछितानि अपाई ॥
 अवनि जमहि जाचति कैकेई । महि न धीचु विधि बीच न दई ॥
 लोकहु बेद निदित कवि कहहीं । राम विमुख थल नरक न लहहीं ॥
 यह ससउ सब के मन भाही । राम गमन निधि अवध कि नाहीं ॥

दो०-निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरत बिकल सुठि सोच ॥

नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल सकोच ॥२५१॥

कीन्दि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पातक साली ॥
 केहि विधि होइ राम अभिपेकू । मो कहैं पुरत उपाउ न एकू ॥
 अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी । मुनि पुनि कहव रामरुचि जानी ॥
 मातु फेहे छद्म हरहिं रघुराऊ । रामजननि हठ करबि कि काऊ ॥

मोहि अनुचर कर केतिक बाता । तेहि महुँ कुसमउ बाम बिधाता ॥
जौ हठ करउँ त निपट कुररमू । हरगिरि तें गुरु सेवकधरमू ॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहिँ रैन बिहानो ॥
प्रात नहाइ प्रभुहिँ सिर नाई । बैठत पठये रिपय बोलाई ॥

दो०-गुरु पद कमल प्रनाम करि, वैठे आयसु पाइ ।

निप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५४॥

बोले मुनिवर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरमधुरीन भानु-कुल-भानू । राजा राम स्वयंस भगवानू ॥
सत्यसध पालक स्रुतिसेतू । रामजनम जग भगलहेतू ॥
गुरु पितु मातु-वचन-अनुसारी । रत्न-दल-दलन देव हित-कारी ॥
नीनि प्रीति परमारथ स्वारथ । कोउ न रामसम जान जयारथ ॥
विधिहरि हर ससिरनि दिसिपाला । माया जीव करम कुलि काला ॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई । जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
करि निचार जिय देखहु नीके । रामरजाइ सीस सनही के ॥

दो०-राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ ।

समुक्ति सयाने करहु अब, सब मिलि समत सोइ ॥२५५॥

सब कहँ सुखद रामअभिपेकू । भगल-मोद-मूल भग एकू ॥
केहि विधि अयध चलहिँ रघुराऊ । कहहु समुक्ति सोइ करिय उपाऊ ॥
सब सादर मुनि मुनि वर पानी । नय-परमारथ-स्वारथ-भानी ॥
दतर न आय लोग भये भोरे । सब सिर जाइ भरत कर जोरे ॥
भानुवस भये भूप घनेरे । अधिक एक तें एक बडेरे ॥
जनम हेतु सब कह पितु माता । करम सुभासुभ देइ निधाता ॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याणा । अस असीस राखरि जग जाना ॥
सोइ गोसाईं विधिगति जेहि छेकी । सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

दो०-यूक्तिय मोहि उपाय अब, सो सत्र मोर अभाग ।

मुनि सनेह-भय-वचन गुरु, उर उमगा अनुराग ॥२५६॥

तात-वात, फुरि, राम कृपाहीं । रामप्रमुख सिधि सपनेहु नाहीं ।
 सकुचउँ तात कहत एक बाता । अरध तजहि बुध, सरवस जग ।
 तुम्ह कानन गगनहु दोउ भाई । फेरिय लपन सीय, रघुराई ॥
 सुनि सुगचन हरये दोउ आता । भे प्रमोद परि पूरन गाता ॥
 मन प्रसन्न तनु तेज निराजा । जनु जिय राव राम भये राजा ॥
 बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी । सम दुखसुख सः रोवहि राना ।
 कहहि भरत मुनि कहाँ सो कीन्हे । फल जग जीवन प्रभिमत् दाहे ।
 कानन करउँ जन्म भरि वासू । एहि तँ अधिक न मोर सुपात ॥

दो०-अन्तरजामी राम सिय, तुम सरवज्ञ सुजान ।

जो फुर कहहु त नाथ निज, कीजिय बचन प्रमान ॥०५॥

भरतबचन सुनि देखि सनेह । सभासहित मुनि भयउ निह ॥
 भरत-महा महिमा जलरासी । मुनिमति ठाढि तीर अगला सा ॥
 गा चह पार जतनु हिय हेरा । पाति नाथ न बोहित घेरा ॥
 अडर करहि को भरत बढाई । सर सीपी की सिंधु समार ॥
 भरत मुनिहि मनभीतर भाये । सहितसमाज राम पहि आये ॥
 प्रभु प्रनाम करि दीन्ह सुआसन । बैठे सब सुनि मुनि अनुसासन ॥
 बोले मुनिवर बचन विचारी । देम काल अवसर अनुहार ॥
 सुनहु राम सरवज्ञ सुजाना । धरम-नीति-गुन ज्ञान निधाना ॥

दो०-सबके उर अन्तर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ ।

पुरजन-जननी मरद हित, होय सो कहिय उपाउ ॥०६॥

आरतकहहि विचारि न काऊ । सुम्ह जुआरिहि आपुन दाऊ ।
 सुनि मुनिगचन कहत रघुराऊ । नाथ-तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
 सब कर हित रग्य रागरि राखे । आयसु बिये मुनि पुर भावे ॥
 प्रथम जो आयसु मो-फहँ होई । माये मानि, करउँ सिस सार ॥
 पुनि जेहि फहँ जस कहन गोमाई । सो सः भाति करिहि सेवकाई ॥
 कह मुनि राम मत्य तुम भागा । भरत-सनेह विचार न राखा ॥

हि तें कहउ बहोरि बहोगी । भरत भगति-वस भइ मति मोरी ॥
तोरे जान भरतरुचि राखी । जो कोजियसो सुभसिव साखी ॥
दो०-भरतबिनय सादर सुनिय, करिय विचार बहोरि ।

करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५६॥

गुरुअनुराग भरत पर देखी । रामद्वय आनन्द बिसेरी ॥
भरतहि धरम धुर धर जानी । निज सेवक तन मानस-धानी ॥
जोले गुरु आयसु-अनुकूल । बचन मजु मृदु मंगलमूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुवन भरतसम भाई ॥
जे गुरु पद-अबुज अनुरागी । ते लोकहुँ वेदहुँ घटभागी ॥
राउर जा पर अस अनुराग । को कहि सकइ भरत कर भाग ॥
लखि लघुबधु नुद्धि सकुचाई । करत बदन पर भरतरडाई ॥
भरत कहहि सोइ किये भलाई । अस कहि राम रहे अरगाई ॥
दो०-तन मुनि बोले भरत सन, सन सँकोच तजि तात ।

कृपामिथु प्रियवधु सन, कहहु द्वय कइ वात ॥ २६० ॥

मुनि मुनि बचन राम रस पाई । गुरु साहिब अनुकूल अघाई ॥
लगि अपने सिर मज छरभार । कहिन सकहि कहु करहि निचार ॥
पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े । नीरजनयन नेहजल धाढ़े ॥
कह्य मोर मुनिनाथ निवाहा । णहि ते अधिक कहउँ मैं दाहा ॥
मैं जानउँ निजनाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेरी । गेलत खूनस न कनहुँ देखी ॥
सिसुपन तें परिहरेउ न सगू । कवहुँ न कीन्ह मोर मन भगू ॥
मैं प्रसु कृपारीत जिय जोही । हारेहु खेल जिताचहि मोही ॥

दो०-महूँ सनेह-सकोच बस, सनमुख कहे नैन ।

तरसन कृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ॥२६१॥
विधि न सकेव सहि मोर दुलारा । नीच बीच जननी मिस पारा ॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोमा । अपनी सनुमि साधु मुचि कोभा ॥

मातु मद मैं साधु सुचाली । उर अस आनत ॥
 फरइ कि कोदव बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि सबुक ताली
 सपनेहु दोस कलेस न काहू । मोर अभाग उदधिअवगाहू
 विनु समुझे निज अघ परिपाकू । जारिउँ जाय जननि कहि काकू
 हृदय हेरि हारेउँ सन ओरा । एकहि भाँति भलेहि भल माण
 गुरु गोसाईं साहिव सियरामू । लागत मोहि 'नीक' परिनामू ॥

दो०-साधु सभा गुरु प्रभु निकट, कहउ सुथल सतिभाउ ।

प्रेम प्रपच कि मूठ फुर, जानहि मुनि रघुराउ ॥२६॥

भूपतिमरन प्रेमपनु राखी । जननी कुमति जगत सन ॥
 देखि न जाहि बिकल महतारी । जरहि दुसह ज्वर पुर नर-नारा
 मही सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहेउ सब सुना
 सुनि बनगवन कीन्ह रघुनाथा । करि मुनिवेष लपन सिय-साथा
 निन पानहिन्ह पयादेहि पाये । सकर सापि रहेउँ एहि धारे ।
 बहुनि निहार निपादसनेहू । कुलिस कठिन उर भयउ न बहू
 अब सन आँसिन्ह देखेउँ आई । जियत जीव जड सबइ सहार
 जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी । तजहिं निपमधिप तामस ताबी ॥

दो०-तेइ रघुनदन लपन सिय, अनहित लागे जाहि ।

तासु तनय तजि दुसह दुरत, दैव सहायइ काहि ॥२७॥

सुनि अतिविकल भरत वर बानी । आरति प्रीति बिनय-नय-सानी ॥
 सोरुमगन सन सभा खमारू । मनहुँ कमलबन परेउ तुषारू
 कहि अनेकविधि कथा पुरानी । भरतप्रबोध कीन्ह मुनि शानी
 बोले उचितवचन रघुनदू । दिन-कर-कुल - कैरव-धन चदू
 तात जाय जिन करहु गलानी । ईसअधीन जीवगति जानी ॥
 तीनि काल त्रिभुवन मत मोरे । पुन्यसलोक तात तर तोरे ॥
 उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोक - परलोक - नसाई ॥
 दोष देहिं जननिहि जड तेई । जिन्ह गुरु-साधु सभा नहिं सेई ॥

॥ दो०-मिटिहहिं पाप प्रपच सब, अखिल अमगल भारे ।

॥ लोकरु सुजस परलोक सुर, सुमिरत नाम तुम्हार ॥२६४॥

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ॥

तात कुतर्क करहु जनि जाये । वैर प्रेम नहिं दुरइ दुराये ॥

सुनि गुनिनिफट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥

हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुषतनु गुन क्षान - निधाना ॥

तात तुम्हहिं मैं जानउँ नोके । करउँ काह असमजस जी के ॥

राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥

तासु बचन मेटन मन सोचू । तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू ॥

ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा । अवसिजो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥

॥ दो०-मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सोइ आजु ।

सत्य सध - रघुवर - बचन, सुनि भा सुरी समाजु ॥२६५॥

सुर-गन सहित समय सुरराजू । सोचहि चाहत होन अफाजू ॥

धनत उपाय करत कह्यु नाहीं । रामसरन सब गे मन माहीं ॥

बहुरि विचारि परसपर कहहीं । रघुपति भगत भगति बस अहहीं ॥

सुधि करि अनरीष दुरबासा । भे सुर सुरपति निपट निरामा ॥

सहे सुरन्ह बहुकाल निपादा । नरहरि किये प्रगट प्रह्लादा ॥

लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा । अब सुरकाज भरत के हाथा ॥

आत उपाय न देखिय देवा । मानत राम सु - सेवक-सेवा ॥

हिय सप्रेम सुमिरहु सन भरतहिं । निज-गुन-सौल रामरस करतहिं ॥

॥ दो०-सुनि सुमरत सुरगुरु कहेउ, मल तुम्हार बड भाग ।

सकल सु-भगल मूल जग, भरत - चरन अनुराग ॥२६६॥

सीता - पति - सेवक - सेवकाई । काम धेनु सय सरिस सुहाई ॥

भरतभगति तुम्हरे मन आई । तजहु सोच निधि बात बनाई ॥

देख देवपति भरतप्रभाऊ । सहज - सुभाय-निबस रघुराऊ ॥

मन धिर करहु देव डर नाहीं । भरतहिं जानि रामपरिछाहीं ॥

सुनि सुरगुरु-सुर समत सोचू। अतरजामी प्रभुहिं सकाचू।
निजसिर भार भरत जिय जाना। करत कोटिविधि उर अनुमान।
करि प्रिचार मन दीन्हा टीका। रामरजायमु आपन नाछ।
निजपन तजि राखेउ पन मोरा। छोह सनेह कीन्ह नहिं धारा।

दो०-कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सन विधि सीतानाथ।

करि प्रनाम बोले भरत, जोरि जल-ज-जुग-हाथ ॥ ६४ ॥

कहउँ कहावउ का अत्र स्वामी। कृपा अबु - निधि अतरनाम।
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी भलिन मनकलपित सूका।
अपडर डरेउँ न सोच समूले। रत्रिदिन दोष देव दिसि भूष।
मोर अभाग मातकुटिलाई। त्रिधिगति विपम फालफठिनाई।
पाउँ रोपि सव मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला।
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु वेद निदित नहिं गाई।
जग अनभल भल एक गोसाई। कहिय होय भल कासु भलाई।
देव देव - तरु - सरिस सुभाऊ। सनमुख त्रिमुख न काहुदि काऊ।

दो०-जाड निकट पहिचान तरु, छाहँ समनि सव सोच।

मौगत अभिमत पाव जग, राउ रक भल पोच ॥ ६५ ॥

लरि सन विधि गुरु स्वामि सनेह। मिटेउ छोभ नहिं मन सह।
अव फरनाकर कीजिय सोई। जनहित प्रभुचित छोभ न हाई।
जो सेवक साहिबहिं सकोची। निजहित चहइ तासु मति पोची।
सेवकहित - साहिब - सेवकाई। करइ मकल सुर लोभ निहाई।
स्वार्थ नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि-निधि नीसा।
यह स्वार्थ - परमार्थ - सार। सकलसुकृत फल सुगति सिंगार।
देव एक प्रिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करन घहोरी।
तिलकममाजु माजि सन आना। करिय मुफल प्रभु जो मनमाना।

दो०-सानुज पठइय मोहि धन, कीजिय सनहिं सनाथ।

न तरु फेरियहि बन्धु दोउ, नाथ चलउँ में माथ ॥ ६६ ॥

तह जाहि वन तीनउँ भाई । वहु रिय सीयसहित रघुराई ॥
हि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुनासागर कीजिय सोई ॥
व दीन्ह सब मोहि सिर भारू । मोरे नीति न धरम बिचारू ॥
हुउ बचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत के चित चेतू ॥
सर देख सुनि स्वामिरजाई । सो सेवक लखि लाज लजाई ॥
स मैं अवगुन उदधि अगाधू । स्वामि सनेह सराहत साधू ॥
व कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाइ न पावा ॥
मु पद सपथ कहउँ सतिभाऊ । जग - मगल - हित एक उपाऊ ॥

दो०-प्रभु प्रसन्नमन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव ।
सो सिर धरि धरि करहि सब, मिटिहि अनट अवरेव ॥२७०॥

रत बचन सुनि सुनि सुर हरपे । साधु सराहि सुमन सुर वरपे ॥
मममजसवस अनधनिवासी । प्रमुदित मन तापम वन बासी ॥
बुपहि रहे रघुनाथ सँकोची । प्रभुगति देखि सभा सब सोची ॥
जनकदत्त तेहि अवसर आये । मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाये ॥
रि प्रनाम तिन्ह राम निहारे । बेप देखि भये निपट दुरारे ॥
तन्ह मुनिवर वृक्षी बाता । कहहु विदेह भूप कुशलाता ॥
मुनि सकुचाइ नाइ महि माथा । बोले चरवर जोरे हाथा ॥
धूमन राठर सादर साई । कुसलहेतु सो भयउ गोसाई ॥

दो०-ताहि त कोशलनाथ के, साथ कुसल गइ नाथ ।
मिथिला अवध प्रसप तें, जगु सब भयउ अनाथ ॥२७१॥

कोशलपति गति सुनि जनकौरा । भे सब लोक सोकवस बौरा ॥
जेहि देगे तेहि ममय विदेह । नाम सत्य अस लाग न केहू ॥
रानि कु चाल सुनत नरपालहि । समन कछु जस सनि विनुन्यालहि ॥
भरतराज रघुर - वन - बासू । भा मिथिलेसहि हृदय हरासू ॥
नृप वृमे बुध सचिव ममाजू । कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुक्ति अवध प्रसमजस दोऊ । चलिय कि रहियन कह कछु कोऊ ॥

नृपहिं धीर धरि हृदय विचारी । पठये अवध चतुर चर चारी
बूझि भरत गतिभाव कुमाऊ । आयहु बेगि न होइ लखऊ

दो०-गये अवधि चरभरतगति, बूझि देखि करतूति ।

चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहुति ॥१५३॥

दूतन्ह आइ भरत कै करनी । जनकसमाज जथामति बरनी ।
मुनि गुरु परिजनसचिव महीपति । मे सय सोच सनेह बिकल अति ।
धरि धीरज करि भरत बढाई । लिये सुभट साहनी बोलै ।
घर पुर देस राखि रखवारे । हय गय रय बहु जान मैवारे ।
दुधरी साथि चले तरकाला । किय विस्राम न मग महिषास ।
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा । चले जमुन उत्तरन सन लाग ।
रखरि लेन हम पठये नाथा । तिन्ह कहि अस महि नायड माया ।
साथ किरात असातक दीन्हे । मुनिवर तुरत विदा चर कीन्हे ।

दो०-सुनत जनक आगवन सय, हरपेउ अवधसमाज ।

रघुनन्दनहिं सकोच बड, सोचरिषस सुरराज ॥१०३॥

गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहइ कोहि दूयत देखै ।
अस मन आनि मुदित नरनारी । भयउ बहोरि रहव दिन चारी ।
एहि प्रकार गतबासर सोऊ । प्राण नहान लाग सब काऊ ।
करि भज्जन पूजहि नरनारी । गनपति गौरि पुरारि तमारी ।
रमा - रमन - पद बन्दि बहोरी । बिनवहिं अजलि अचल जारी ।
राजा राम जानकी रानी । आनैद अवधि अनघ रनधानी ।
सुनस बसउ किरिसहित समाजा । भरतहिं राम करहु सुरराजा ।
एहि सुखसुधा साँचि सब काहू । देव देहु जग - जीवन लाहू ।

दो०-गुरुसमाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ ।

अद्यत रामराजा अवध, मरिय माँग सब कोउ ॥१०४॥
मुनि सनेह भय पुर-जन-बानी । निदहिं जोग त्रिरति मुनि ज्ञानी ।
एहि विधिनित्यकरम करि पुरजन । रामहिं करहिं प्रनाम पुलकि तन ॥

नीच नीच मध्यम नरनारी । लहहिं दरस निज निज अनुहारी ॥
 निवधान सबही सनमानहिं । सकल सराहत कृपानिधानहिं ॥
 परिकाइहि तैं रघुवरबानी । पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
 नील सैंकोच - सिंधु रघुराऊ । सुमुख सुलोचन सरलसुभाऊ ॥
 ब्रहत राम-गुन गन अनुरागे । सब निजभाग सराहन लागे ॥
 हम सम पुन्यपुज जग थोरे । जिन्हहिं राम जानत करि मोरे ॥

दो०-प्रेममगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेस ।

सहित सभा सभ्रम उठेउ, रवि कुल कमल दिनेस ॥२७५॥

माइ सचिव गुरु पुरुजन - साथी । आगे गवन कीन्ह रघुनाथा ॥
 गेरिवर दीप्त जनकपति जवहीं । करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबहीं ॥
 हम - दरस लालसा - उछाह । पथस्रम लेस कलेस न फाह ॥
 इन तहैं जहैं रघुवर बैदेही । बिनु मन-तन दुरसमुख सुधि केही ॥
 पावत जनक चले एहि भौंती । सहित समाज प्रेम मद भौंती ॥
 प्राये निकट देखि अनुरागे । सादर मिलन परसपर लागे ॥
 रगे जनक मुनि-जन पद बदन । रिपिन्ह प्रनाम कीन्ह रघुनन्दन ॥
 गइन्ह सहित राम मिलि राजहिं । चले लेवाइ समेत समाजहिं ॥

दो०-आत्मम सागर सातरस, पूरन पावन पाथ ।

सेन मनहुं करुनासरित, लिये जाहिं रघुनाथ ॥ २७६ ॥

रेरति ज्ञान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ॥
 तेच वसास समीरतरगा । धीरज तट-तरु बर कर भगा ॥
 एम विपाद तोरावति धारा । भय भ्रम भँवर अचरत अपारा ॥
 बट बुध निद्या बडि नावा । सकहिं न खेइ एक नहिं आवा ॥
 नचर कोल किरात बिचारे । थके बिलोकि पथिक द्विय हारे ॥
 आत्म उदधि मिली जव जाई । मनहुं उठेउ अदुधि अकुलाई ॥
 एक बिकल दोउ राजसमाजा । रक्षा न ज्ञान न धीरज लाजा ॥
 परूप - गुन सील सराही । रोबहिं सोकसिंधु अचगाही ॥

धन-अग्रगाहि सोकसमुद्र' सोचहि नारि नर व्याकुल महा।
 देह दोष सकल सरोप धोलहि वाम निधि कौहो
 सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह का।
 तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह का।
 मो०-किये अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरह।
 धीरज धरिय नरेस, कहेउ यमिष्ठ निदेह सन। ॥ १४ ॥

जासु ज्ञान रति भव निसि नासा। वचन किरन मन ५ मल वि।
 तेहि कि मोह ममता नियराई। यह सिय राम सनेह बड़ा।
 निपयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिनिध जीव जग वेद बखाने।
 राम सनेह सरस मन जासू। साधुसभा बडि आनर।
 सोह न रामप्रेम बिनु जानू। करनधार बिनु निम कल।
 मुनि बहुविधि विदेह समुझाये। रामघाट सब लोग।
 सकल सोक-सकुल नरनारी। सो वासर बीतेउ बिनु ५
 पसु खग मृगन्हन कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कवन निवार।
 दो०-दोउ समाज निमिराज रघु राज नहाने प्रात।

वैठे सब धट बिटप तर, मन 'मलीन' कृस गात ॥ १५ ॥
 जे महिसुर दसरथ पुर वासी। जे मिथिला पति-नगर निवाला।
 हस-बस गुरु जनकपुरोधा। जिन्ह जग मग परमारथ सोव।
 लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरमनय धिरति बिदका।
 कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सैन समा सुगता।
 तव रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सन रहू।
 मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ धीति दिन पहर छडाई।
 रिपि रूप लखि कह तिरहुतिराजू। इहाँ उचित नहि असन अनाइ।
 कहा भूप भल सवहि सुहाना। पाइ रजायसु चले नहाना।
 तो०-तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
 लेइ आये वनचर त्रिपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥ १६ ॥

रामद भो गिरि रामप्रसोदा । अबलोकत अपहरत बिषादा ॥
 र सरिता वन भूमि त्रिभागा । जनु उमगत आनंद अनुरागा ॥
 तिलि पिटप सेव सफल सफूला । बोलत रग मृग अलि अनुकूला ।
 हि अवसर वन अधिक उद्याहू । त्रिविधि समीर सुरद सब काहू ॥
 जाइ न वरनि मनोहरताई । जनु महि करति जनक पहनाई ॥
 तय सन लोग नहाइ नहाई । राम जनक मुनि आयसु पाई ॥
 देखि देखि तरुवर अनुरागे । जह तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
 दल फल मूल कउ त्रिवि नाना । पावन सुन्दर सुधासमाना ॥

दो०-सादर सन कह रामगुरु, पठये भरि भरि भार ।

पूजि पितर मुर अतिथि गुरु, लगे करन फलहार ॥२०॥

एहि त्रिवि बासर बीते चारी । रामनिरगि नरनारि सुखारी ॥
 दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । त्रिनु सियराम फिरव भल नाहीं ।
 सीताराम सग वनवासू । कोटि अमर पुर-सरिस सुपासू ॥
 परिहरि लपन-राम वैदेही । जेहि घर भाग वाम त्रिवि तेही ॥
 दाहिन देव होइ जय सयही । रामसमीप बसिय वन तयहीं ॥
 मदाकिनिमज्जन तिहुँकाला । रामदरस मुद-मगल माला ॥
 अटन राम गिरि वन तापस थल । असन अमियसम कद मूल फल ॥
 सुरसमेत मयत दुइ साता । पलसम होहि न जनियहिं जाता ॥

दो०-एहि सुरज जोग न लोग सब, कहहिं कहों अस भाग ।

सहज सुभाय समाज दुहँ, राम चरन अनुराग ॥२१॥

एहि त्रिवि सकल मनोरथ करहीं । वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
 सीयमातु तेहि समय पठाई । दासी देखि सुखवसर आई ॥
 सायकास सुनि सन सिय भासू । आयउ जनक राज रनिवासू ॥
 पौमन्या सादर सनमानी । आसन दिये समयसन आनी ॥
 मोल सनेह सकल दुहुँ थोरा । द्रवहिं देखि सुनि बुलिस कठोरा ॥
 पुनक सिधिल तनु वारि निलोचन । महिनस लिसन लगी सबसोचन ॥

सब सिय राम प्रीति की मूरति । जनु करुना बहुवेप ॥ १०॥
सीयमातु कह विधिबुधि बाँकी । जो पयफेनु फोर परिटाँकी ।

दो०—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल ।

जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥ ११॥
सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा । विधिगति बडि विपरीत ॥ १२॥
जो सृजि पालइ हरइ यहोरी । बाल केलि सम विधिमति भाए
कौसल्या कह दोसु न काहू । करमनिबस दुर सुख छति
कठिन करमगति जान बिधाता । जो सुभ असुभ ॥ १३॥
ईस रजाइ सीस सबही के । उतपति धिति लय ॥
देबि मोहबभ सोचिय बादी । निधि प्रपच अस अचल अना
भूपति जियब भरब डर आनी । सोचियसगिलसि निज हित हानी
सीय मातु कह सत्य सुनानी । सुकृती अवधि अवध पति रानी

दो०—लपन राम सिय जाहु धन, भल परिनाम न पोच ।

गहवरि हिय कह कौसला, मोहि भरत कर सोच ॥ १४॥
ईसप्रसाद असीस तुम्हारी । सुत - सुत बधू देव-सरि बाए ।
रामसपथ में कीन्ह न काऊ । सो करि कहउँ सती सतिभाए ।
भरत सील गुन विनय बडाई । भायप भगति भरोस भलाई ।
कहत सारदहु के मति हीचे । सागर सीप कि जाहि उलाव ।
जानउ सदा भरत कुलदीपा । बार बार मोहि फहेउ महापा ।
फसे फनक मनि पारितो पाये । पुरुष परित्यगि समय सुभाए ।
अमुचित आजु कह्य अस मोरा । सोक सनेह सयानप थाए ।
सुनि मुर सरि-सम पावनि वानी । भई सनेह बिकल सर रानी ॥ १५॥

दो०—कौसल्या कह धीर धरि, सुनहु देनि मिथिलेसि ।

यो त्रियेक निधि यल्लभहि, तुम्हहि सकइ उपदेसि ॥ १६॥
रानि राय सन अवसरु पाई । अपनी भाति कह्य समुम्हई ।
रगियहि लपन भरतगवनहि धन । जौ यह मत मानइ महीपनन

भल जतन करव सुबिचारी । मोरे सोच भरत कर भारी ॥
 ह सनेह भरत मन माहीं । रहे नीक मोहि लागत नाहीं ॥
 खि सुभाउ सुनि सरल सुबानी । सब भइ मगन करुनरस रानी ॥
 भ प्रमून करि धन्य धन्य धुनि । सिथिल सनेह सिद्ध जोगी मुनि ॥
 खरनिवास बिथकि लगि रहऊ । तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ ॥
 बि दह जुग जामिनि वीती । रामभातु सुनि उठी सप्रतीती ॥
 दो०-पेगि पाय धारिय थलहि, कह सनेह मतिभाय ।
 हमरे तौ अब ईस गति, कै मिथिलेस सहाय ॥२८५॥
 खरि सनेह सुनि बचन प्रीनोता । जनकप्रिया गहि पाय पुनीता ॥
 नि उचित, अस प्रिनय तुम्हारी । दसरथ-घरनि राम महतारी ॥
 सु अपने नीचहु आदरहीं । अगिनि धूमगिरि सिरवृन धरहीं ॥
 वैष्णव । राउ करम-भन-बानी । सदा सहाय महेस भवानी ॥
 उरे अग जोगु जग को है । दीप सहाय कि दिनकर सोहै ॥
 राम जाइ घन करि सुर काजू । अचल अवधपुर करिहहि राजू ॥
 प्रमर नाग नर राम जाहुनल । सुरत नसिहहि अपने अपने थल ॥
 प्रह सन जागनलिक कहि राग्या । देबि न होई मुखा मुनि भार्या ॥
 दो०-अस कहि पग परि प्रेम अति, सियहित प्रिनय सुनाइ ।
 सियसमेत सियमातु तन, धली सुखायसु पाइ ॥२८६॥
 प्रिय परिजनहि मिली वैदेही । जो जेहि जोगु भौंति तेहि तेही ॥
 तापसनेप जानकी देखी । भा सब बिकल बिपाद यिसेसी ॥
 जनक रामगुरु आयसु पाई । चले यलहि सिय देखी आई ॥
 लोन्ह लाइ उर जनक जानकी । पाहुनि पावन प्रेम प्रान की ॥
 उर उमगोउ अनुधि अनुरागू । मयहु भूपमन मनहुँ प्रयागू ॥
 सियसनेह यहु घाढत जोहा । तापर राम प्रेम सिसु सोहा ॥
 चिरजीयी मुनि ज्ञान निवल जनु । बूढत लहेउ बालअचलननु ॥
 मोह मगन मति नहि बिदेह की । महिमा सिय रघुनर सनेह की ॥

दो०-सिय पितु-मातु सनेह उस, निकल न सकी सँभारि।

घरनिसुता धीरज घरेउ, समउ सुधरमु रिचारि॥

तापसनेप जनक सिय देखी। भयउ श्रेम परितोष नितस
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवलजग कह सर कउ
जिति सुरसरि कीरतिसरि तोरी। गवनु कीन्ह निधि अड करत
गग अनिथल तीनि बडेरे। एहि किय साधुसमान धन
पितु कह सत्य सनेह सुगानी। सीय सकुचि महि मनहुँ समान।
पुनि पितु मातु लीन्ह उर लाई। सिर आसिप हित दीह सुराई।
कहित न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसव रजनी भल नाई।
लखि रुख रानि जनायेउ राऊ। हृदय सराहत सील सुभाऊ।

दो०-बार बार मिलि भेंटि सिय, निदा कीन्ह सनमानि।

कही समय सिर भरतगति, रानि सुधानि सयानि ॥८८॥

सुनि, भूपाल भरतव्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससिसारू।
मूदे सजल नयन पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित मन।
सानधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरतकथा भय-वय रिमावनि।
वरम राजनय ब्रह्मनिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू।
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहिइ काह छलि छुअति न द्यौहीं।
निधि गनपति अहिपति सिय सारद। करि कोनिद बुध बुद्धिविसारद।
भरत चरित कीरति करतूली। धरम सील गुन निमल विभूली।
समुभत सुनत सुराद सब काह। सुचि सुरसरि रचि निदर सुभाह।

दो०-निरवधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरतसम जानि।

कहिय सुमेरु कि सेरसम, कवि कुल-मति सकुचानि ॥८९॥

अगम सवहि वरनत बग्वरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरना।
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहि राम न सकहि बसाना।
वरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तियजिय की रचि लखि कह राऊ।

रहिं लपन भरत बन जाहीं । मव कर भल सब के मन माहीं ॥
 न परन्तु भरत रघुवर की । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
 त सनेह अथधि ममता की । जयपि राम सीव समता की ॥
 मारथ स्वारथ मुख सारे । भरत न सपनेहुं मनहुं निहारे ॥
 धन सिद्धि रामपग नेह । मोहि लखि परत भरतमत एहू ॥

श्री०-भोरेहुं भरत न पेलिहहिं, मनसहुं रामरजाइ ।

करिय न सोच सनेहबस, कहेंच भूप बिलयाइ ॥२६०॥

म भरत-गुन गनत सप्रीती । निसि उपतिहि पलकसम बीती ॥
 मसमाज प्रात जुग जागे । न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥
 न्हाइ गुरु पहिं रघुराई । वदि चरन धोले रख पाई ॥
 गय भरत पुरजन महतारी । सोकविकल बनबास दुखारी ॥
 हित समाज राठ मिथिलेसू । बहुत दिवस भये सहत कलेसू ॥
 चित होइ सोइ कीजिय नाथा । हित सबही कर रवरे हाथा ॥
 स कहि अतिसकुचे रघुराऊ । मुनि पुलके लखि सील सुभाऊ ॥
 न्ह बिनु राम सकल मुख साजा । नरकसरिस दुहुं राजसमाजा ॥

श्री०-प्रात प्रात के जीव के, जिय मुख के मुख राम ।

तुम्ह तजि तात सुहात गृह, जिन्हहिं तिन्हहिं बिधि वाम ॥२६१॥

गि मुख धरम करम जरि जाऊ । जहँ न राम पद पकज भाऊ ॥
 गोग कुजोग ज्ञान अज्ञान । जहँ नहिं रामप्रेम परधान ॥
 न्ह पिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही । तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केही ॥
 गार आयसु सिर सनही के । पिदित कृपालहिं गति मव नीके ॥
 प्राप् आस्रमहिं धारिय पाऊ । मयब सनेहसिथिल मुनिराऊ ॥
 रि प्रनाम तव राम सिवाये । रिपि धरि धीर जनक पहिं आये ॥
 रामरचन गुरु नृपहिं सुनाये । सील सनेह सुभाय सुहाये ॥
 निहाराज अथ कीजिय सोई । सन कर धरमसहित हित होई ॥

दो०-ज्ञाननिधान सुजान सुचि, धरमधीर नरपाल ।

तुम्ह बिन असमजससमन, को समरथ एहिकाल ॥२६॥
 सुनि मुनिचन जनक अनुरागे । लखि गति ज्ञान विराग नि
 सिथिल सनेह गुनत मन माहीं । आये इहाँ कीन्ह मल नार
 रामहिं राय कहेउ धन जाना । कीन्ह आपु प्रिय
 हम अब चन तें धनहिं पठाई । प्रमुदित फिरव विवेक बर
 तापस मुनि महिसुर सुनि देखी । भये प्रेमनस निकल विसर
 समउ समुक्ति धरि धीरज राजा । चले भरत पहिं सहितसमाज
 भरत आइ आगे भइ लीन्हे । अचसरसरिस सुआसन
 तात भरत कह तिरहुतिराऊ । तुम्हहिं बिदित रघुबीर सुम

दो०-राम सत्यव्रत धरमरत, सब कर सील सनेहु ।

सकट सहत सँकोचबस, कहिय जो आयसु देहु ॥२७॥
 सुनि तन पुलकि नयनभरि धारी । बोले भरत धीर धरि भा
 प्रभु प्रिय पूज्य पितासम आपू । कुल गुरु सम हितमायन
 कौसिकादिमुनि सचिवसमाजू । ज्ञान अबु निधि आपुन
 सिसु सेवक आयसु अनुगामी । जानि मोहि सिख देख्य
 एहि समाज थल ब्रूमब राउर । मौन मलिन मैं बोलब रा
 छोटे बदन कहउँ बडि वाता । छमब तात लखि बाम विरा
 आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । मेवाधरम कठिन जग जान
 स्वामि धरम स्वारथहिं विरोधू । चैरअध प्रेमहिं न प्रब

दो०-राखि राम रूप धरमुव्रत, परावीन मोहि जानि ।

सब के समत सर्वहित, करिय प्रेम पहिचान ॥२८॥
 भरतवचन सुनि देखि सुभाऊ । सहितसमाज सराहत रा
 सुगम अगम मृदु मजु कठोरे । अरथ अमित अति आखर ध
 व्योँ मुग्ध मुकुर मुकुर निजपानी । गहि न जाइ अस अदभुत
 भूप भरत मुनि साधु समाजू । गो जहँ त्रिबुध कुमुद द्विज ए

ये सुधि सोच निकल सब लोग । मनहुँ मीनगन नवजल जोगा ॥
 प्रथम कुल-गुरु-गति देखी । निरसि विदेह सनेह विसेखी ॥
 न भगनि मय भरत निहारे । सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥
 ब कोउ राम प्रेममय पेखा । भये अलेख सोचवस लेखा ॥
 दो०-राम सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराज ।

रचहु प्रपचहि पच मिलि, नाहिं त भयउ अकाज ॥२६५॥

एन्ह सुमिर सारदा सराही । देवि देव सरनागत पाही ॥
 रिर भरतमति करि निजमाया । पालु निबुधकुल करि छलछाया ॥
 विबुधनिनय सुनि देवि सयानी । बोली सुर स्वारथ जड जानी ॥
 गी सन कहहु भरत मति फेरू । लोचन सहस न सूक्त सुमेरू ॥
 विधि-हरि-हर माया बडि भागे । सोउ न भरतमति सकइ निहारी ॥
 सो मति मोहि कहत कह भोरी । चाँदिनि कर कि चदकर चोरी ॥
 भरतहृदय सिध राम निगामू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू ॥
 मस कहि मारद गइ विधिलोका । विबुध बिकल निसि मानहुँ कोका ॥

दो० सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमत्र कुठाडु ।

रचि प्रपच माया प्रबल, मय भ्रम अरति उचाडु ॥२६६॥

रि कुचालि सोचत सुरराजू । भरतहाथ सन काजु अकाजू ॥
 ये जनक रघुनाथसमीपा । सनमाने सन रवि कुल दीपा ॥
 मय समाज धरम अविरोधा । बोले तथ रघु बस पुरोधा ॥
 तनक भरत सवाद सुनाई । भरत कहाउति कही सुनाई ॥
 गत राम जम आयसु देहू । सो सन करइ मोर मत एहू ॥
 सुनि रघुनाथ जोरि जुगपानी । बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥
 निदामान आपुन मिथिलेसू । मोर कहव सब भाँति भदेसू ॥
 राखर राय रजायसु होई । राखरि सपथ मही सिर सोई ॥

दो०-रामसपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभासमेत ।

सकल निलोकत भरतमुख, बनइ न ऊतरु देत ॥ २६७ ॥

सभा सकुचनस भरत निहारी । रामबधु धरि धीरन
कुसमउ देखि सनेह सँभारा । घटव विधिनिमिघटन नि
सोक फनकलोचन मत छोनी । हरी विमल-गुनगन जग
भरतविवेक बराह विसाला । अनायास उधरी तेहि कान
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे । राम राउ गुरु साधु निहार
छमव आजु अतिअनुचित मोरा । कहँ बचन मृदु वचन
हिय सुमिरी सारदा सुहाई । मानस तँ मुखपक्व कर
विमल विवेक धरम नय साली । भरतभारती मजु मराई

दो०-निरखि विवेक विलोचनन्हि, सिथिल सनेह समाउ ।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराजु ॥

प्रभु पितु मातु सुदृढ गुरु स्वामी । पूज्य परमहित
सरल सुसाहिय सीलनिधानू । प्रनतपाल सर्वज्ञ
समर्थ सरनागत हितकारी । गुनगाहक अवगुन
स्वामि गोसाईँ हिं सरिस गोसाईँ । मोहि समान मैं स्वामि
प्रभु पितु वचन मोहवस पेत्ती । आयेउँ इहाँ समान सकल
जग भल पोष ऊँच अर नीचू । अमिय अमरपद माहुर मर
रामरजाइ भेट मन माही । देखा सुना कतहुँ कोउ नहि
सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई । प्रभु मानी सनेह सेवराई

दो०-कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर ।

दूपन भे भूपनसरिस, सुजस चारु बहूँ ओर ॥ ६४ ॥
राउरिरीति सुवानि बढाई । जगत विदित निगमागन गढ़ाई
पूर कुटिल रल कुमति कलकी । नीच निसील निरीस
तेउ सुनि सरन सामुहे आये । सकत प्रनाम किये अपनार
देखि दोष कबहुँ न उर आने । सुनि गुन साधुसमान
को साहिय सेवकहि नेवाजी । आपु समान साज सब साज
निज परतूति न समुक्किय सपने । सेवक सकुच सोच उर अपन

१ गोसाईं नहि दूसर कोपी । भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी ॥
मु नाचत सुक पाठ प्रवीना । गुनगति नट पाठक आधीना ॥

दो०—यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर ।

को कृपाल बिनु पालिहइ, बिरदावलि बरजोर ॥ ३०० ॥

गोकु सनेह कि बाल सुभाये । आयउँ लाइ रजायसु धाये ॥
जहुँ कृपालु हेरि निज ओरा । सग्रहि भौनि भल मानेउ मोरा ॥
तेरेउँ पाय सु-मगल-मूला । जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ॥
पडे समाज बिलोकेउँ भागू । बडी चूक साहिबअनुरागू ॥
कृपा अनुग्रह अग अघाई । कीन्हि कृपानिधि सब अधिकारि ॥
तारा मोर दुलार गोसाई । अपने सील सुभाय भलाई ॥
नाथ निपट मैं कीन्हि ठिठाई । स्वामि समाज सकोच विहाई ॥
भयिनय बिनय जथारुचि धानी । छमहि देव अतिआरति जानी ॥

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहव बडि खोरि ।

आयसु देख्य देव अन, सबइ सुधारिय मोरि ॥ ३०१-॥

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई । सत्य सुकृत सुरससीवँ सुहाई ॥
सा करि कहउँ हिये अपने की । रुचि जागत सोयत सपने की ॥
सहज सनेह स्वामिसेवकाई । स्वारथ छल फल चारि त्रिहाई ॥
आशा सम न सुसाहिबसेवा । मो प्रसाद जन पाग्रहि देना ॥
अस कहि प्रेमनिबस भये भारी । पुलक शरीर बिलोचन बारी ॥
प्रभु-पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेह न सो कहि जाई ॥
कृपासिंधु सनमानि सुजानी । बैठाये समीप गरि पानी ॥
भरतनिनय सुनि देखि सुभाऊ । सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥

३०२—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज सुनि मिथिलाधनी ।

मन महुँ सराहत भरत-भायप भगनि महिमा घनी ॥

भरतहि प्रससत विबुध वरपत सुमन मानसमलिन से ।

तुलसी पिबल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से ॥

सो०-देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नरनारि सब ।

मधवा महामलीन, मुयेहिं मारि मगल चाहत ॥३००॥

कपट कुचालि-सीव सुरराजू । पर अक्राज प्रिय आपन काजू ॥
काकसमान पाक रिपु रीती । छली मलीन कतहुँ न प्रतीती ॥
प्रथम कुमत करि कपट सकेला । सो उचाट सत्रके सिर मेला ॥
सुरमाया सत्र लोग बिमोहे । राम प्रेम अतिशय न निछोहे ॥
भये उचाटवस मन थिर नाहीं । छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं ॥
दुबिध मनोगत प्रजा दुखारी । सरित सिंधु सगम जनु बारी ॥
दुचित कतहुँ परितोष न लहहीं । एक एक सन मरमन कहहीं ॥
लखि हिय हंसि कह कृपानिधानू । सरिस स्यान मधवान जुगानू ॥

दो०-भरत जनक मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ ।

लागि देन माया सगहिं, जयाजोग जन पाइ ॥३०१॥

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे । निजसनेह सुर पति छल भारे ॥
सभा राउ गुरु महिसुरि मंत्री । भरत भगति सब कै मति जंत्री ॥
रामहिं चितनत चित्र लिये से । सकुचत बोलत वचन सिये से ॥
भरत - प्रीति - नति बिनय बढाई । सुनत मुखद बरनत कठिनाई ॥
जासु निलोकि भगति लवलेसू । प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू ॥
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी । भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी ॥
आपु छोटि महिमा बडि जानी । कविकुल कानि मानि सकुचानी ॥
कहि न सकति गुन रुचि अधिकारै । मतिगति बालवचन की नाई ॥

दो०-भरत त्रिमल-जस बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि ।

उदित विमल जन हृदय नभ, एक टक रही निहारि ॥३०४॥

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ । लघुमति चापलता कवि छमहूँ ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ॥
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को । जेहि न सुलभ तेहि सरिस वाम को ॥
देखि दयाल दसा सबही की । राम सुजान जानि जन जी की ॥

धरमधुरीन धीर नयनागर । सत्य सनेह सील सुख सागर ॥
 देस काल लखि समयसमाजू । नीति - प्रीति - पालक रघुराजू ॥
 बोले बचन बानि सरबस से । हित परिनाम सुनत ससिरस से ॥
 तात भरत तुम्ह धरमधुरीना । लोक - वेद - बिद परमप्रवीना ॥

दो०-करम बचन मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात ।

गुरुसमाज लघु-बधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥३०५॥

जानहु तात तरनि-कुल रीती । सत्यसध पितु कीरति प्रीती ॥
 समउ समाज लाज गुरुजन की । उदासीन हित अनहित मन की ॥
 तुम्हहिं निदित सबही कर करमू । आपन मोर परमहित धरमू ॥
 मोहि सब भाति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ॥
 तात तात बिनु बात हमारी । केवल गुरु कुल-रूपा सँभारी ॥
 न तरु प्रजा पुरजन परिवारू । हमहिं सहित सब होत सुआरू ॥
 जो निनु अवसर अथय दिनेसू । जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
 तस उतपात तात बिधि कीन्हा । मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥

दो०-रामकाज सह लाज पति, धरम धरनि धन धाम ।

गुरुप्रभाउ पालिहि सनहिं, भल होइहि परिनाम ॥३०६॥

सहित समाज तुम्हार हमारा । धर बन गुरुप्रसाद रसवारा ॥
 मातु - पिता गुरु-स्वामि - निदेसू । सकलधरम धरनीधर सेसू ॥
 सो तुम्ह करहु करावहु मोहू । तात तरनि-कुल पालक होहू ॥
 साधक एक सकलसिधि देनी । कीरति सुगति भूतिमय वेनी ॥
 सो विचार सहि सकट भारी । करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥
 बाढी त्रिपति सबहि मोहि भाई । तुम्हहिं अवधि भरि बडि कठिनाई ॥
 जानि तुम्हहिं मृदु कहहु कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥
 होहिं कुठाय सुबधु सहाये । ओडियहि हाथ असनि के घाये ॥

दो०-सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिव होइ ।

तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहिं सोइ ॥३०७॥

सभा सकल सुनि रघुवर बानी । प्रेम पयोधि अमिय जनु सानी ॥
 सिथिलसमाज सनेह समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी ॥
 भरतहिं भयउ परम सतोषू । सनमुख स्वामि विमुख दुख दोषू ॥
 सुख प्रसन्न मन मिटा रिपादू । भा जनु गुँगेहि निरा प्रसादू ॥
 कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी । बोले पानिपकरह जोरी ॥
 नाथ भयउ सुर साथ गये को । लहेउ लाहु जग जनम भये को ॥
 अब कृपाल जस आयसु होई । करउँ सीस वरि मादर सोई ॥
 सो अवलब देव मोहिं देई । अवधि पार पावउँ जेहि सेई ॥

दो०-देव देव अभिपेक हित, गुरुअनुसासन पाइ ।

आनेउँ सय तीरथसलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०८॥

एक मनोरथ बढ मन माहीं । सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
 कहहु तात प्रभुआयसु पाई । बोले यानि सनेह सुहाई ॥
 चित्ररूढ मुनि थलतीरथ बन । रगमृग सरिसर निर्मर गिरिगन ॥
 प्रभु पद अफित अगनि बिसेखी । आयसु होइ त आवउँ देखी ॥
 अवसि अत्रिआयसु सिर धरहू । तात रिगतभय कानन चरहू ॥
 सुनिप्रसाद बन मगल दाता । पावन परम सुहावन भ्राता ॥
 रिपिनायक जहँ आयसु देही । राखेउ तीरथजल थल तेही ॥
 सुनि प्रभुवचन भरत मुख पावा । मुनि पद कमल मुदित सिर नावा ॥

दो०-भरत - राम - सवाद सुनि, सकल सुमगल-मूल ।

सुर स्वारथी सराहि कुल, वरपत सुरतरु-कूल ॥३०९॥

धन्य भरत जय राम गोसाईं । कहत देव हरपत वरिआई ॥
 सुनि मिथिलेस सभा सब काहू । भरत वचन सुनि भयउ उछाहू ॥
 भरत - राम - गुन - भाम सनेहू । पुलकि प्रससत राउ विदेहू ॥
 सेवक स्वामी भाउ सुहावन । नेम प्रेम अति पावन पावन ॥

मतिअनुसार सराहत लागे । सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
 सुनि सुनि राम भरत सबादू । दुहुँ समाज हिय 'हरप' विषादू ॥
 राममातु दुख-सुख-सम जानी । कहि गुन राम प्रबोधी 'रानी' ॥
 एक कहहिं रघुवीर बडाई । एक सराहत भरत भलाई ॥

दो०-अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप ।

राखिय तीरथतोय तहँ, पावन अमिय अनूप ॥३१०॥

भरत अत्रिअनुसासन पाई । जलभाजन सब दिये चलाई ॥
 सानुज आप अत्रि मुनि साधू । सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥
 पावन पाथ पुन्य थल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
 तात अनादिसिद्ध थल एहू । लोपेउ काल बिदित नहिं केहू ॥
 तप सेवकन्ह सरस थल देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेरा ॥
 त्रिधिवस भयउ बिखडपकारू । सुगम अगम अति धरम त्रिचारू ॥
 भरतकूप अय कहिहहिं लोगा । अतिपावन तीरथ जलजोगा ॥
 प्रेम सनेम निमज्जत प्राणी । होइहहिं बिमल करम मनबानी ॥

दो०-कहत कूपमहिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ ।

अत्रि सुनायउ रघुवरहिं, तीरथ-पुन्य प्रभाउ ॥३११॥

कहत धरम इतिहास सप्रीती । भयउ भोर निसि सो सुख बीती ॥
 नित्य निवाहि भरत दोउ भाई । राम - अत्रि - गुरु आयसु पाई ॥
 सहित समाज साज सन सादे । चले राम धन अटन पयादे ॥
 कोमल चरन चलत बिनु पतही । भइ मृदु भूमि सकुचि मनमनहीं ॥
 हुस कटक कौकरी कुराई । कटुक कठोर कुनस्तु दुराई ॥
 महि मजुल मृदु मारग कीन्हे । वहत समीर त्रिविध सुख लीन्हे ॥
 सुमन वरपि सुर धन करि छाहीं । बिटप फूल फल तृन मृदुताहीं ॥
 भृग विलोकि रस बोलि सुनानी । सेवहिं सकल रामप्रिय जानी ॥

दो०-सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात ।

राम प्रान प्रिय भरत कहँ, यह न होइ घटि घात ॥३१२॥

एहि निधि भरत फिरत बनमाहीं । नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाहीं ॥
 पुन्य जलास्रय भूमि विभागा । रम मृगत रुतन गिरि वनवागा ॥
 चारु बिचित्र पवित्र विसेखी । ब्रूकत भरत दिव्य सब देखी ॥
 सुनि मन मुदित कहत रिपिराऊ । हेतु नाम गुन पुण्य प्रभाऊ ॥
 कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा । कतहुँ विलोकत मन अभिरामा ॥
 कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई । सुमिरत सीयसहित दोउ भाई ॥
 देखि सुभाउ सनेह सुसेवा । देखि असीस मुदित वनदेवा ॥
 फिरहिँ गये दिन पहर अढाई । प्रभु-पद कमल विलोकहिँ आई ॥

दो०—देखे थलतीरथ सकल, भरत पाँच दिन भौंम ।

कहत सुनत हरिहर सुजस, गयउ दिवस भइ सौंम ॥३१३॥

भोर न्हाइ सय जुरा समाजू । भरत भूमिसुर तिरहुतिराजू ॥
 भल दिन आजु जानि मन माहीं । राम कृपालु कहत सकुचाहीं ॥
 गुरु नृप भरत सभा अवलोकी । सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी ॥
 सील सराहि सभा सन सोची । कहूँ न रामसम स्वामि सँकोची ॥
 भरत सुजान रामरूप देखी । उठि सप्रेम धरि धीर विसेखी ॥
 करि दडवत कहत कर जोरी । राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥
 मोहि लागि सबहिँ सहेउ सतापू । बहुत भौंति दुरस पावा आपू ॥
 अन गोसाईँ मोहि देउ रजाई । सेवउँ अवध अवधि भर जाई ॥

दो०—जेहि उपाय पुनि पाय जन, देखइ दीनदयाल ।

सो सिर देइए अवधि लागि, कासलपाल कृपाल ॥३१४॥

पुरजन परिजन प्रजा गोसाई । सब सुचि सरस सनेह सगाई ॥
 राउर यदि भल भव दुर-दाह । प्रभु विनु वादि परम पद-लाह ॥
 स्वामि सुजान जानि सब ह्री की । रुचि लालसा रहनि जन जीकी ॥
 प्रनतपाल पालहिँ सब काहू । देव दुहू दिसि ओर निनाहू ॥
 अस मोहि सब विधि भूरि मरोसो । किये निचार न सोच खरो सो ॥
 आरति मोर नाथ कर छोहू । दुहू मिलि कीन्ह ढोठ हठि मोहू ॥

यह बड़ दोष दूरि कर स्वामी । तजि सँकोच सिराइय अनुगामी॥
भरतविनय सुनि सवहि प्रससी । छीर - नीर विवरन गति हसी ॥

दो०-दीनबधु सुनि बधु के, बचन दीन छल हीन ।

देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रवीन ॥३१५॥

सात तुम्हारि मोरि परिजन की । चिता गुरुहि नृपहि घर बन की॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू । हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ॥
मोर तुम्हार परमपुरुषारथ । स्वारथ सुजन धरम परमारथ ॥
पितृआयसु पालिय दुहुँ भाई । लोक बेद भल भूपभलाई ॥
गुरु पितु मातु स्वामि सिर पाले । चलेहु कुमग पग परहि न खाले॥
अस विचारि सब सोच विहाई । पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥
देस कोस पुरजन परिवारू । गुरुपद रजहिँ लाग छरु भारू ॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिखमानी । पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥

दो०-मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक ।

पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥३१६॥

राज - धरम - सरबसु एतनोई । जिमि मन माहँ मनोरथ गोई ॥
बधुप्रबोध कीन्ह बहु भाती । बिनु अधार मन तोष न साती ॥
भरत सील गुरु सचिव समाजू । सकुच सनेह निबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पावैरी दीन्ही । सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥
चरनपीठ कहनानिधान के । जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
सपुट भरत सनेह रतन के । आसर जुग जनु जीवजतन के ॥
कुलकपाट कर कुशल करम के । विमलनयन सेवा-सु वरम के ॥
भरत मुदित अवलन लहे तैं । अस मुख जस सियराम रहैतैं ॥

दो०-मागेठ त्रिदा प्रनाम करि, राम लिये सर लाइ ।

लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसरु पाइ ॥३१७॥

सो कुचालि सन कहँ भइ नीकी । अवधि आससमजीवनिजीकी॥
न तर लपन सिय राम त्रियोगा । हहरि भरत सब लोग कुरोगा ॥

रामकृपा अवरैव सुधारी । त्रिबुधधारि भइ गुनद गोहारी ॥
 भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो । राम प्रेम रस कहि न परत सो ॥
 तन मन यचन उमग अनुरागा । धीर धुर धर धीरज त्यागा ॥
 धारिजलीचन मोचत धारी । देखि दसा सुरसभा दुरगारी ॥
 मुनिगन गुरुजन धीर जनक से । जानअनल मन कमे फनक से ॥
 जे निरचि निरलेप उपाय । पदुमपत्र जिमि जग जलजाये ॥

दो०—तेउ धिलोकि रघुनर भरत प्रीति अनूप अपार ।

भये मगन मन तन यचन, सहित निराग निचार ॥३१८॥

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बडि खोरी ॥
 वरनत रघुवर भरत - नियोगू । सुनि कठोर कनि जानिहि लोगू ॥
 सो सकौच रस अकथ सुगानी । समउ सनेह सुमिरि सकुचानी ॥
 भेंटि भरत रघुनर समुझाये । पुनि रिपुदमन हरिपि हिय लाये ॥
 सेवक सचिव भरत रस पाई । निज निज काज लगे सब जाई ॥
 सुनि दारनदुरा दुहू समाजा । लगे चलन के साजन साजा ॥
 प्रभु पद-पदुम बदि दोउ भाई । चले सीस धरि रामरजाई ॥
 मुनि तापस धनदेव निहोरी । सव सनमानि बहोरि बहोरी ॥

दो०—लखनहिं भेंटि प्रनाम करि, सिर धरि सिय पद धरि ।

चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमगल-भूरि ॥३१९॥

सानुज रामे नृपहिं सिर नाई । कीन्हि बहुत विधि बिनय बडाई ॥
 देव दयावस बड दुख पायेउ । सहित समाज काननहिं आयेउ ॥
 पुर पग धारिय देइ असीसा । कीन्ह धीर धरि गवन महीसा ॥
 मुनि महिदेव साधु 'सनमाने । बिदा किये हरि-हर-सम जाने ॥
 सासुसमीप गये दोउ भाई । फिरे बदि पग आसिप पाई ॥
 कौसिक बामदेव जाबाली । परिजन पुरजन सचिव सुचाली ॥
 जथाजोग करि बिनय प्रनामा । बिदा किये सब सानुज रामा ॥
 पुरुष लघु मध्य बडेरे । सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥

दो०-भरत मातु पद बदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि ।

विदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सन भेंटि ॥३२०॥

परिजन मातु पितहि मिलि सीता । फिरी प्रान प्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनाम भेटी सन सासू । प्रीति कहत कनि हिय न हुलासू ॥
मुनि सिरा अभिमत आसिष पाई । रहो सीय दुहुँ प्रीति समाई ॥
रघुपति पद पालकी मँगाई । करि प्रणोधु सब मातु चढाई ॥
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई । सम सनेह जननी पहुँचाई ॥
साजि बाजि गज बाहन नाना । भूप भरतदल कीन्ह पयाना ॥
हृदय राम सिय लरान समेता । चले जाहि सन लोग अचेता ॥
धसह बाजि गज पशु हिय हारे । चले जाहि परनस मन मारे ॥

दो०-गुरु गुरु तिय पद बदि प्रभु, सीता लपन समेत ।

फिरे हरष बिसमय सहित, आये परननिकेत ॥३२१॥

निदा कीन्ह सनमानि निपादू । चलेउ हृदय बड विरह रिपादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु मिय लपन बैठि बट छाहीं । प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेह सुभाव सुवानी । प्रिया अनुज सन कहत बरसानी ॥
प्रीति प्रतीति वचन मन करनी । श्रीमुख राम प्रेमवस धरनी ॥
तेहि अवसर लग मृग जल मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना ॥
बिबुध निलोकि दशा रघुनर की । बरपि सुमन कहि गति धर धर की ।
प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न लरो सो ॥

दो०-सानुज सीयसमेत प्रभु, राजत परनकुटीर ।

भगति ज्ञान बैराग जुनु, सोहत धरे सरीर ॥३२२॥

मुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू । रामविरह सन साज विहालू ॥
प्रभु-गुन-प्राप्त गुनत मन माहीं । सब चुपचाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उतरि पार सब भयऊ । सो बासर बिनु भोजन गयऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर दासू । रामसखा सब कीन्ह सुपासू ॥

सई उतरि गोमती नहाये । चौथे दिवस अवधपुर आये ॥
 जनक रहे पुर वासर चारी । राज काज सब साज सँभारी ।
 सौँपि सचिव गुरु भरतहि राजू । तिरहुति चले साजि सब साजू ॥
 नगर नारि नर गुरु सिरा मानी । वसे सुखेन राम रज धानी ॥
 दो०-रामदरस लागि लोग सत्र, करत नेम उपवास ।

‘तजि तजि भूपन भोग सुख, जियत अवधि की आस ॥३२३॥
 सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निजनिज काज पाइ सिरा ओवे ॥
 पुनि सिरा दीन्ह बोलि लघु भाई । सौँपी सकल मातु सेवकाई ॥
 भूसुर बोलि भरत कर जोरे । करि प्रनाम वरचिनय निहोरे ॥
 ऊँच नीच कारज भल पोचू । आयसु देव न करव सँफोचू ॥
 परिजन पुरजन प्रजा बोलाये । समाधान करि सुखस बसाये ॥
 सानुज गे गुरुगेह बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ॥
 आयसु होइ त रहउँ सनेमा । बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा ॥
 समुक्क कहव करव तुम्ह जोई । धरमसार जग होइहि सोई ॥
 दो०-सुनि सिरा पाइ असीस वडि, गनक बोलि दिन साधि ।

सिंहासन प्रमुपादुका, बैठारे निरुपाधि ॥३२४॥

राममातु गुरुपद सिरा नाई । प्रभु-पद पीठ रजायसु पाई ॥
 नदिगाव करि परनकुटीरा । कीन्ह निवास धरम धुर-धीरा ॥
 जटाजूट सिर मुनिपद धारी । महि रानि कुससाधरी सवारी ॥
 असन बसन वासन घत नेमा । करत कठिन रिपिधरम सप्रेमा ॥
 भूपण बसन भोग सुख भूरी । मन तन बचन तजे तन तूरी ॥
 अवधराज सुरराज सिंहाई । दसरथवन सुनि धनद लजाई ॥
 तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चचरीक जिमि चपक बागा ॥
 रमाविलास राम अनुरागी । तजत वमन जिमि जन बड भागी ॥

दो०-राम प्रेम भाजन भरत, बडे न यहि करतूति ।

चातर हस सराहियत, टेक प्रियेक प्रिभूति ॥३२५॥

देह दिनहुँ दिन दूबर होई । घट न तेज बल मुखछवि सोई ॥
 नित नव राम प्रेम पन पीना । बढत धरमदल मन न मलीना ॥
 जिमि जल निघटत सरद प्रकासे । बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
 सम दम सयम नियम उपासा । नखत भरत हिय विमल अकासा ॥
 द्रुव विद्यास अवधि राकासी । स्वामिसुरति सुरयीधि बिकासी ॥
 राम प्रेम बिधु अचल अदोखा । सहित समाज सोह नित चोरै ॥
 भरत रहनि समुक्तनि करतूली । भगति निरतिगुन निमल निभूती ॥
 बरनत सकल सुखि सकुचाहीं । सेस - गनेस - गिरा-गमु नार्हीं ॥

दो०-नित पूजत प्रभु पार्वरी, प्रीति न हृदय समाति ।

मौंगि मौंगि आयसु करत, राज कान बहु भौंति ॥३२६॥

पुलकि गात हिय सियरधुनीरू । जीह नाम जप लोचन नीरू ॥
 लपत राम सिय कानन बसही । भरत भवन बसि तप तनु कसही ॥
 दोड दिसि समुक्ति कहन सबलोगू । सब बिधि भरत सराहन जोगू ॥
 सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दसा मुनिराज लजाहीं ॥
 परमपुनीत भरत आचरनू । मधुर - मजु - मुद-भगल-करनू ॥
 हरन कठिन कलि-कलुप कलेसू । महा-भोह निसि दलन दिनेसू ॥
 पाप - पुज - कुजर - मृग, - राजू । समन सकल सताप-समाजू ॥
 जनरजन भजन भवभारू । रामसनेह सुधाकरसारू ॥

छद-सिय-राम प्रेम पियूप-पूरन होत जनम न भरत को ।

मुनि मन अगम जम नियम सम दम विपम व्रत आचरत को ।

दुरदाह दारिद दभ दूपन सुजस मिस अपहरत को ॥

कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि रामसनमुख करत को ॥

सो०-भरतचरित कर नेम तुलसी जो सादर सुनहिं ।

सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव-रस विरति ॥ ३२७ ॥

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुपविध्वसने -

विमलविद्वानवैराग्यसम्पादनो नाम

द्वितीय सोपान समाप्त ।



टिप्पनियां

राम-चरित-मानस = यहाँ श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र को 'मानस' अर्थात् मानसरोवर से उपमा दी गई है। यह मानसरोवर कैलास पर्वत के समीप स्थित है। सोपान = सीढ़ी या पोढ़ी। काण्ड = प्रकरण या अध्याय।

संस्कृत श्लोक—वामाङ्गे = बाईं गोंद या वाम भाग में। च = ओर। विभाति = शोभित है। भूधर-सुता = पहाड़ की पुत्री, पार्वती। देवापगा = गंगा। मस्तके = माथे पर। भाले = ललाट पर। बालविभु = द्वितीया का चन्द्रमा। गले = कण्ठ में। गरलम् = हलाहल विष। यस्योरसि = जिसकी छाती या वक्ष स्थल पर। व्यालराट् = नागराज। स श्रयम् = वे। भूतिविभूषण = भस्म से विभूषित। सुरवर = देवताओं में श्रेष्ठ। सर्वाधिप = सब के स्वामी। सर्वदा = हमेशा। शर्व = महादेव। सर्वगत = सब के अन्तर्यामी। शिव = कल्याण रूप। शशिनिभ = चन्द्रमा का सा शुक्ल वर्ण धारण करने वाले। पातुमाम् = मेरी रक्षा करें।

प्रसन्नता = खुशी की। या = जो। न = नहीं। गता = प्राप्त हुई। अभिषेकत = राज्यविलक से। तथा = उसी प्रकार। न मम्लो = मलिन नहीं हुई। वनवास दुःखत = वनवास के दुःख से। मुखाम्बुजश्री = मुख कमल की शोभा। रघुनन्दनस्य = श्रीरामचन्द्रजी के। सदाऽस्तु = सदैव हो। सा = वह शोभा। सुन्दर = अच्छी। मङ्गलप्रदा = आनन्द देने वाली।

नीलाम्बुज = नील कमल । श्यामल = श्याम । कोमलाङ्गम् = कोमल अङ्ग । सीता = जनककुमारी । समारोपित = सुशोभित । पाणौ = हाथों में । महासायक = श्रेष्ठबाण । चारु चापम् = सुन्दर धनुष । नमामि = नमस्कार करता हूँ । रघुवश नाथम् = रघुकुल के नाथ को ।

भावार्थ—१—जिनकी बाईं गोद में पार्वती, मस्तक पर गंगा, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा, कण्ठ में विष और छाती पर नागराज सुशोभित हैं, वे घट-घट वासी सचस्वामी भस्म विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण वाले कल्याणकारी महादेव मेरी रक्षा करें ।

२—श्रीरामचन्द्र के मुख-कमल की जो शोभा न गण्य तिलक के कारण प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न यनयास के फट्टों से मलिन हुई, यह मेरे लिए सदैव सुन्दर और आनन्द देने वाली हो ।

३—नील कमल के समान जिनके साँवले और कोमल अंग हैं, जनकनन्दिनी श्रीसीताजी जिनके वाम भाग में सुशोभित हैं, जिनके हाथों में सुन्दर धनुष और बड़े बाण हैं, उन रघुकुल नाथक भगवान् रामचन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ।

दोहा १—मुकुर = दर्पण । सुधारि = सुधार कर या साफ करके । जसु (यश) = बड़ाई । दायक = देने वाला । फल चारि = चार फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । श्रीगुरु सुधारि = गुरुजी के चरण-कमलों की धूल से अपना मन रूपी दर्पण स्वच्छ करके । शीशे का रेत से साफ होना प्रसिद्ध है, साधारणतः भी किसी चीज़ को स्वच्छ करने के लिए रेत की ही आवश्यकता होती है । मोद यथाये = सहर्ष मगल गान । भुवन चारिदस = चौदह लोक अर्थात् तल,

अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल, भूलोक, भुवलोक, स्वर्गलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्य लोक । भूधर = पहाड़ । सुरुत = पुण्य । मेघ = बादल । घारी = पानी । रिधि (ऋद्धि) = वृद्धि, पेश्वर्य । सिधि (सिद्धि) = सिद्धि आठ हैं अर्थात् अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्य और वशित्य । उमगि = उमड़कर । अम्बुधि = समुद्र । सुचि (शुचि) = पवित्र ।

यहां तुलसीदासजी ने १४ लोक रूपी विशालकाय पर्वतों पर पुण्य मेघों द्वारा सुख सजिल की वर्षा कराई है, जिसके कारण ऋद्धि-सिद्धि रूपी नदियों में सम्पत्ति रूपी जल बह निकला और वे अयोध्या रूंगी समुद्र में जा मिलीं । समुद्र में रत्न भी होने हैं, अतएव गोखामी तुलसीदासजी ने अयोध्या के सागर में नगर निवासो नर-नारियों की रत्नोंसे उपमा दी है । कैसा सुन्दर रूपक और कितना अच्छा भाव है ।

विभूती = ऐश्वर्य । जनु = मानो । एतनिय = इतनी ही । फलित = फली हुई । बेली = जता । सील (शील) = चरित्र, स्वभाव । राऊ = राजा ।

बोधा २—अस = यह । आपु अकुन (अक्षत) = अपने जीने जी । जुअराज (युवराज) = राज्य का उत्तराधिकारी, नायब या छोटा राजा । नरनाह = राजा । उछाह = उरसाह । लोकप = इन्द्रादि लोकपाल । त्रिमुवन = आकाश, पाताल और मर्त्य । तीनिकाल = भूत, भविष्यत और वर्तमान । भूरि भाग = बड़भागी । सुभाय = स्वाभाविक रूप से, मामूली तौर से । वदन = मुह । सम कीन्हा = ठीक किया । जरठपन = बुढ़ापा । लाहु = लाम । जीवन लेह = जीवन जन्म सफल क्यों नहीं कर लेते ।

दोहा ३—उरश्रानि=दिल में लाकर । प्रेम पुलकि=प्रेम से पुलकित होकर । गुरुहि=गुरु (वसिष्ठ) को । भुआल (भूपाल)= राजा । मुनिनायक=मुनिराज । सचिव=मन्त्री । प्रभु सोही=मानो वह (रामचन्द्र) आपके आशीर्वाद की साक्षात् मूर्ति हैं । छोह=प्रेम । रउरहि नाइ =आपकी ही तरह । अनु-मयउ = अनुभव । पावनि = पवित्र । पूजिहि=पूरी होगी । सहज सनेह=स्वाभाविक प्रीति । रजायसु=आदेश, आज्ञा ।

दोहा ४—राउर=आपका । अभिमत दातार=मनोरथों को पूरा करने वाला । महिप-मनि=राजाओं के सिरमोर । अनु-गामी=पीछे चलने वाला । फल तुम्हार=हे नृपश्रेष्ठ फल तो आपकी इच्छाओं के पीछे लगे फिरते हैं, अर्थात् जो आप चाहते हैं, वही हो जाता है । रहसि=प्रसन्न होकर । मृदु=कौमल । प्रसाद=कृपा, आशीर्वाद । निवार्ही=पूर्ण करेंगे । विमुख=विलाप । जरनि=जलन । तनय=पुत्र । पुनीत=पवित्र ।

दोहा ५—साजिय=सजाओ, तैयार करो । 'जयजीय'= पहले समय में, प्रनाजन राजाओं का अभिवादन करते समय 'जयजीय' ही कहा करते थे । पावहि=पव लोगों को । बिरब=पोधा । बड़त सुसाखा=मानो बढ़ती हुई बेल में टहलियाँ फूट निकली हों ।

दोहा ६—आयसु=आज्ञा । राज अभिवेक दित=राज तिलक के लिए । आनहु=लाओ । पाना=पत्ते । चामर=चँवर । चरम=मृगछाला । वसन=वस्त्र । रोम पाट पट=ऊनी तथा रेशमी वस्त्र । वेद विदित=वेदमें कही गई । विताना=चँशेवा, मण्डप । सफल=फल सहित । रसाल=आम ।

पुगफल = सुपारी । वीथि = गली । रोपहु = आरोप करो, लगाओ । चौकई = चोर ।

दोहा ७—तोरन = वन्दनगार । तुरग = घोड़ा । नाग = हाथी ।
लाग = लग गये । बाज वधाग = अयोध्या में ढमाढम
वधाई के बाजे बजने लगे । रामहिं भाँती = राम को
अपने भ्राता भरत का उसी प्रकार रात-दिन सोच है जिस
तरह कछुए को अपने अण्डों का रहता है । कहते हैं कि
कछुआ अपने अण्डों को बैठकर नहीं सेता, किन्तु वह दूर
बैठा हुआ मन ही मन उन्हें सेता रहता है ।

दोहा ८—विधु = चन्द्रमा । वारिधि = समुद्र । बीच (वीचि) =
लहर, तरंग । सोभन विलासु = जैसे बढ़ते हुए चन्द्रमा
को देखकर समुद्र लहरों से लहराता हुआ शोभा को
प्राप्त होता है । हँकारी = बुलाकर । बहोरि = फिर । मृग-
सावक नयनी = हिरन के बच्चे के से नेत्रजाली । विधु वदमी =
चन्द्रमुखी ।

दोहा ९—अरघ = आने वाले के स्वागतार्थ पात्र से जल
छोड़ने की क्रिया को 'अरघ' (अर्घ्य) देना कहते हैं । आने =
लाए गये । 'सोरह भाँति पूज सनमाने' = शार्यों में पोड़रोप-
चार पूजा का वर्णन है, अर्थात् आवाहन, आमन, अर्घ्य,
पादुय, आचमन, स्नान, वस्त्र, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य,
आरती, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और विसर्जन ।

दोहा १०—कस = कैसे । हस-वस अवतस = सूर्य वश के
मुकुटमणि । सजम (सयम) = ब्रह्मचर्यादि जितेन्द्रियता का
पालन । केलि = खेलकूद । अनुज = पीछे पैदा हुआ अर्थात् छोटा
भाई । विहाय = छोड़कर ।

दोहा ११—रघु-कुल-कैरव-चन्द = रघुवश रुपी कुमुद को खिलाने वाला चन्द्रमा । अथाई = बैठक या चौपाल पर एकत्र समुदाय । केतिक वारा = कितनी देर । विधि = विधाता । चित चेता = मनचीती । कुचाली = छोटी चाल धाले । सारदा (शारदा) = सरस्वती ।

दोहा १२—मइँ राती = कमल के दम के लिए मैं पाले की रात बनती हूँ । निहोरी = दिनयपूर्वक, कृत्तव्यता के भाव से । खोरी = दोष । विघुघ मत पोची = देवताओं की बुद्धि कच्ची है, उसमें नीचता आगई है । जनु = दुखदायी = मानो घोर कष्ट देने वाली कोई ग्रह दशा आई है ।

दोहा १३—चेरी = दासी । अजस (अयश) पिटारी = फलकिनी । गिरा = सरस्वती । देखि भाती = जिस प्रकार शहद के छत्ते की देखकर कुटिल भीलनी अवसर तकती है कि उसे किस प्रकार तोड़ लूँ । बिलखाती = बिलखकर । का रानी = रानी ने हँस कर कहा कि तू (मन्थरा) अनमनी (उदास) क्यों हो रही है ? गाल बड तोरे = तेरे बड़े गाल हैं, तू यही बढ़कर बातें मारा करती है ।

दोहा १४—कहसि भिन = कहती क्यों नहीं । रिपु दमन = शत्रुघ्न । भा साल = कुबड़ी मन्थरा के हृदय में बड़ा उपनाप हुआ । कत = क्या । गालु करव = मुहजोरी करना, गाल धजाना । दाहिन = अनुकूल । कस = क्यों । तुराई = तोराफ । अरगानी = चुप । घरफोरी = घर फोड़ने वाली, मेदभाव डालने वाली ।

दोहा १५—खोरे = लगड़े । फुर = सच्चा । आली = सखी । छोह = अनुग्रह, प्रेम । पतोह = पुत्रवधू । छोभ (चोभ) = दुःख ।

दोहा १६—परिहरि = छोड़कर । फोरइ जोगु (योग्य) = फोड़ने लायक । बग सो लुनिय = जो घोया है सो काटना है । लहिय जो दीन्हा = जो दिया है वही मिलेगा । अनमल = बुरा ।

दोहा १७—तीय रानि = स्त्रियों की बुद्धि ओठों में होती है, अर्थात् वे किसी की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर उसका तुरन्त विश्वास कर लेती हैं । सुहृद = मित्र । पतियानि = विश्वास कर लिया । सुरमाया वश = देवताओं की माया के फन्दे में फँस कर । पुराणों में लिखा है कि देवताओं के बहुत आग्रह करने पर सरस्वती ने दुन्दभी नामकी कुवड़ी को ही शाप-वश मन्थरा के रूप में प्रकट किया था । इस कुवड़ी ने ही कौटोई की मति पलटी तथा राम को वनवासी बनाया । और इस प्रकार देवताओं का मनोरथ सफल हुआ । देवताओं का मनोरथ यह था कि रामचन्द्र राज-पाट में न फँस कर वनवासी बनें तथा राक्षसों का अभ्यस करें जिससे फिर कोई यज्ञ का विरोधी न रहे । स(श)वरी = भीलनी । घात जनु फावी = मानो घात लग गई । गढ़ि छोली = छील कर और बना कर, सिया पड़ा कर । श्रवध बोली = मानो उस समय मन्थरा के बोलने से साढ़े सात सात के लिए अयोध्या पर शनि सवार होगया । पिरीते = मित्र । जर = जल । रुँधहु " " दारी = उपाय रूपी उत्तम जल से गोह कर उसे रोक दो अथवा उसके चारों ओर अच्छी तरह बाढ़ लगा दो ।

दोहा १८—राउर = आपका । वीसु पाई = अवसर पाकर । सालु = खटका । कपट जनाई = चतुर का कपट भी नहीं जाना जा सकता । प्रपच = जाल, पद्मन्त्र ।

दोहा १६—कीम्हेसि कपट प्रयोध = कपट का पाठ पढ़ा दिया । स (श) त = सैकड़ों । प्रतीति = विश्वास । रेख खँचाइ = लकीर खींचकर, प्रतिष्ठापूर्वक । दूध की माखी = जब दूध में मक्खी पड़ जाती है तो न वह वहाँ से उड़ सकती है और न कुछ खा पी ही सकती है ।

दोहा २०—कद्रू विनतहि = पुराणों में लिखा है कि कश्यपमुनि की कद्रू और विनता नामक दो स्त्रियाँ थीं । इनमें से कद्रू के बेटे सर्प और विनता के गरुड़ हुए । एक दिन इन दोनों स्त्रियों में सूर्य के घोड़े की पूँछ की रगत पर झगडा उठ खड़ा हुआ । कद्रू कहती थी पूँछ काली है, परन्तु विनता उसे सफेद बताती थी । अन्त में निणय यह हुआ कि दोनों स्त्रियाँ स्वयम् जाकर घोड़े की पूँछ देखें और जिसकी घात गलत हो वही दासी बन कर रहे । कद्रू के बेटे सर्पों ने इस समय बड़ी चालाकी से काम लिया, वे इन दोनों के जाने से पहले ही सूर्य के घोड़े की पूँछ से जा लिपटे जिससे वह काली दिखाई देने लगी । फिर क्या था, विनता हार गई और उसे कद्रू की दासी बनकर रहना पड़ा । इस कथा की ओर मन्थरा का संकेत है ।

बन्दिगृह सेइहहि = कैद काटेंगे । नेय = नायब । पसेउ = पत्नीजना । दस (श) न = दाँत । चाँपी = दवाली । उक्ठ कुकाठू = गाँठ गठीला टेढ़ा लकड़ । बकिहि मराली = बगुली को हसनो समझ कर उसकी प्रशंसा करने लगी । दहिनि मोरी = मेरी दाहिनी आँख रोज फड़कती है । स्त्रियों का दक्षिण भाग फड़कना अशुभसूचक समझा जाता है ।

दोहा २१—अपने चलत = अपनी चलती में, जहाँ तक मेरी चली है, यथाशक्ति । अव = पाप । मानि मन ऊना = जी को

छोटा जानकर । वासर = दिन । जामिनि (यामिनि) = रात्रि ।
रेख खींचना = गणित करके बताना ।

दोहा २२—कुवली = कुगलि का पशु । उर-पाहन = हृदय रूपी पथर । टेई = पैनाई । माहुर = विष । थाती = धरोहर । जुडाबहु छाती = छाती ठडी करलो । लेहु = झीन लो । दुई वरदान = दो वरदान । इन वरदानों के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो कथाएँ प्रसिद्ध हैं (१) एक बार दक्षिण देशान्तर्गत वैजयन्त नगर में इन्द्र और शम्भरासुर के मध्य युद्ध हुआ । इस युद्ध में राजा दशरथ भी केकई को साथ लेकर लड़ने गये । एक दिन युद्ध करते-करते रात होगई, राक्षसों का बल बढ गया, उन्होंने बहुत से धीरों को काट डाला, दशरथ भी घायल होगये और उनके प्राणों पर आ बनी । राजा दशरथ का सारथी भी काट डाला गया । ऐसी दशा में केकई ने रथ हाका और वह अपने कौशल से उसे भगा ले गइ, जिससे राजा के प्राण बच गये । होश आने पर दशरथ ने रानी को दो वरदान देने का अभिरचन दिया । रानी ने कहा आप इन वरदानों को धरोहर रूप रखिए, जब चाहूँगी, ले लूँगी । यह भी कथा है कि युद्ध में रथ का एक पहिया गिर गया तो रानी ने कीली की जगह अपना हाथ लगा दिया, जिससे रथ बराबर चलता रहा और जब राजा ने युद्ध में विजयी होकर रानी को धुरी की जगह इस प्रकार हाथ लगाये देखा तो वह बडा खुश हुआ और दो वरदान देने की बात कही ।

दोहा २३—कुघात = बुराघात । सजग = होशियारी से ।
बहे जात कर = बहते हुए की । पुरव = पूरा करेगा । चप पूतरि =
आँख की पुतली । दल = पत्ता । बिगोई = बिगाड दी ।
फुलाहल = हल्ला-गुल्ला ।

दोहा २४—प्रविसहिं=अन्दर जाते हैं। निर्गमहिं=बाहर आते हैं। भीर=भीड़। फिरहिं=लौट जाते हैं। सरिस=समान। भ्रमहीं=जन्म लेते और मरते हैं। नात=नाता। ओर=अन्त। दाह=दाह, जलन। नीच मते=छोटी सलाह मानने से।

दोहा २५—गधन सनेहु=मानो स्नेह शरीर धारण कर निठुरता के पास गया। अर्थात् इस समय राजा के प्रेम और केन्द के कठोरपन की हद हो चुकी थी।

अगहुँड=आगे। रुखताके=मुह तापते रहना। सूल=त्रिशूल। कुलिस=घज। असि=तलवार। अगधनि हारे=सहने वाला। रतिनाथ=कामदेव। सुमन सर(शर)=फूलों के घाण। अन-अहिनातु=बैधव्य, रेंडापा।

छन्द—परसत=झूना। पानि(णि)=हाथ। निपारई=हटा देना। दोउ देखइ=कवि ने केकई की नागिन से उपमा दी है। नागिन के दो जीभ होती हैं, सो यहा केकई के दोनों घरदानों को मागने की वासना ही दो जीभें हैं, घरदान दाँत हैं जिनसे काटने के लिए वह मर्मस्थान देख रही है। मयितव्यता=होनहार।

सोरठा २६—सुलोचनि=अच्छी आँखों वाली। पिक उचनि=कोयल की सी आवाज वाली। गज गामिनि=हाथी की सी चाल वाली। दुई सिर=दो सिर वाला। रफ=कगल। अमर=देवता। बपुरे=बेचारे। कीट=कीड़ा। यरोरु=सुन्दर औंध वाली। तब=तेरा। आनन=मुह। चेगि=शीघ्र।

दोहा २७—मन गुनि=मन में विचार कर। भूपन फन्द=गहने पहनने लगी, मानो हिरन को देखकर उसे फँसाने के

लिप भीलनी फदा तय्यार कर रही है । मनुन=सुन्दर ।
 उलकि उठेक=दहल उठा । पाक घरनोरु=पका बलतोड़,
 जब बल नोड़ हो जाता है तो उसके छूने से भी बड़ा दुःख
 होता है । पीर=दुःख । गोइ=छिपाई, गुप्त रखी । फोटि
 कुटिल मनि (मणि)=करोड़ों कुटिल गुरुश्री की शिरोमणि ।
 नीति निपुण=राजकाज तथा व्यवहार में प्रवीण । जलनिधि=
 समुद्र । अरवगाह=अथाह ।

दोहा २८—पिय=प्रिय, पति । कोहाउ=रुठना । भोर-
 स्वभाऊ=भोला स्वभाव । जनि=निवेधात्मक । पातरु=पाप ।
 पुंजा=ढेर । गुंजा=घु घची । कुमत प्योली=मानो कुबुद्धि
 रूपी किसी घुरे पत्नी का कुलह (परदा, दफन या टोपी)
 खोला गया हो । शिकारी पक्षियों को शिकार पर उड़ाने के
 वक्त उनकी आँखों से टोपी हटादी जाती है ।

दोहा २९—ससि(शशि) कर=चन्द्रमा की किरण । ससि-
 कर कोक=जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकड़ा
 व्याकुल हो जाता है । रात में चकड़ा-चकड़ा एक स्थान पर
 नहीं रह सकते, इसलिए उन्हें चन्द्रमा की किरणें सुखद होने के
 बदले दुःखदायिनी बन जाती हैं । जनु लावा=मानो बटेर
 के घन में बाज ने हमला किया । बिबरन(ण)=बदरग, फीका ।
 दामिनि=विजली । सुरतरु=कल्पवृक्ष । फरन=फनते ही ।
 करिनि=हथिनी । नेई=नींव ।

दोहा ३०—जोग=योग । जतिहि=यती को । झूपा=
 झोखना । माळा=नाराज होना । येसाहि=खरीद कर । सत्य-
 सध=सच्ची प्रतिज्ञा वाले । 'सिवि दधीचि बलि जो बलु
 भापा'=(१) राजा शिवि बड़े याज्ञिक थे, उन्हें यज्ञ में बड़ा

आनन्द आता था, एक दिन परीक्षा के लिए इन्द्र बाज का और अग्नि कबूतर का रूप धारण कर शिव के पास पहुँचे। बाज कबूतर पर झपटा तो कबूतर राजा की गोद में जा बैठा। बाज ने राजा से कहा—‘मुझे मेरा शिकार दे दो नहीं तो मैं भूख से मर जाऊंगा। मैं मर गया तो मेरे परिवार की भी रक्षा न हो सकेगी। सारा पाप तुम्हारे ऊपर पड़ेगा।’ राजा ने उत्तर दिया—‘मैं इस शरणागत कबूतर को नहीं त्याग सकता। हा, जितना इस कबूतर में बोझ है उतना ही मैं तुम्हें अपने शरीर से मांस दिये देता हूँ। उससे तुम अपना पेट भर लेना।’ तब राजा ने एक और कबूतर रक्खा गया, दूसरी तरफ राजा ने अपना मांस काट कर रक्खा तो वह पूरा ही न हो। अब राजा अपना मस्तक काटने को उद्यत हुआ तो इन्द्र और अग्नि दोनों ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया और उसकी प्रशंसा की।

(२) इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध हो रहा था। परन्तु वृत्र किसी अस्त्र से मरने वाला न था। इन्द्र को बड़ी परेशानी हुई तब उसे ब्रह्मा ने बताया कि दधीचि मुनि की हड्डी लाओ, उससे यह असुर मरेगा। इन्द्र दधीचि के पास गये और उनसे हड्डी मांगी। मुनि ने बड़ी प्रसन्नता से हड्डियाँ दे दीं और स्वयम् प्राण त्याग दिये।

(३) राजा बलि यज्ञ कर रहा था, विष्णु भगवान् उसके पास याचक का रूप धारण करके गये और उससे तीन पंड घरती माँगने लगे। राजा ने बड़ी खुशी से यह दान दे दिया। परन्तु विष्णु ने अपने दो ही पंडों में आकाश और पाताल सब नाप लिये फिर भी एक पंड बाकी रह गया। इसके लिए राजा ने अपनी पीठ दान कर दी। इससे विष्णु प्रसन्न हो गये और उसे पाताल का राजा बना दिया।

दोहा ३१—धर्म धुरम्धर = धर्म की धुरी धारण करने वाले,
 धर्मात्माओं में श्रेष्ठ । कुठाय = बुरी जगह । उधारी = नगी ।
 सान (शान) = पानी रचना । भीरु 'दांती' = भय, विश्वास,
 और प्रीति का नाश करके । साखी (साक्षी) = गवाह । पठउव =
 भेजूगा । सुदिन सोधि = अच्छा दिन देखकर । बजाई = बड़ी
 धूमधाम से ।

दोहा ३२-३७ छँछे = व्यर्थ । रिस परिहर = क्रोध छोड़कर ।
 असमजस = उटपटाग, आगा पीछा । फनिक = सर्प । बरु =
 चाहे, भले ही । अनल = शक्ति । तरगिनि = नदी । कूल =
 किनारा । मीन = मृत्यु । निपाता = उखाड़ फेंका । पाठीन =
 मञ्जली । मरम (मर्म) बचन = चुभने वाली बात । कुठाहर = घुरा
 समय । मारसि गाइ नहादहि लागी = वाज के लिए गाय को
 मारती है । नहारु काशमीर में वाज को कहते हैं । 'रोहावली में
 आया भी है—'वाज नहारु कहत हैं काशमीर के देश ।' कुछ
 लोग नाहारु का अर्थ नाहर (सिंह) और तात का भी करते हैं ।
 अरधि = सीमा । मिनुसारा = प्रातः काल । मगल जैसे =
 राजा को उसी प्रकार मगल अच्छे नहीं लगते जिस प्रकार
 पति की चिता पर सती होने वाली स्त्री को आभूषण ।

दोहा ३८-४२—धाइ पाइ = खाने को दोड़ता है । विवरन =
 बेहाल । समीत = डर के मारे । बसेरा = डेरा । सुभ छुट्टी =
 शुभ से शून्य, अशुभ । भूप रजाई = राजाज्ञा । कुसाज = बुरी
 हालत । सहमि * गजराज = राजा इस प्रकार बुरी तरह
 घरती पर पड़े थे । मानो कोई बूढ़ा गजराज सिंहनी को देख
 कर पछाड़ खाकर गिर पड़ा हो । सरुप = क्रुद्ध । बाग विभू-
 षण = बाणी की शोभा बढ़ाने वाले । तोपनि द्वारा = समुद्र

करने वाला । अरेंडु = परण्ड । उदधि = समुद्र । सति भारु = सच्चे भाव से ।

दोहा ४३-४६—मगध जैसे = जैसे मगध देश में गयादि तीर्थ अच्छे लगते हैं । मगध देश अच्छा नहीं समझा जाता, परन्तु उसकी महिमा इन तीर्थों के कारण ही है । जिमि सुदाये = जिस प्रकार गंगा में जाकर खराब पानी भी अच्छा हो जाता है । अकनि = कान में पड़ते ही । आसु (शु) तोप = शीघ्र प्रसन्न हो जाने वाले । अवदर दानी = उदार दानी, मन मौज्जी दानी, जब जो चाहे सो दे डालने वाले । आरति = दुःख । जगती तल = पृथ्वी पर । सुनीड़ी = सुतीक्ष्ण, खूब तेज । छुअत योछी = जैसे बिछूर के डक मारते ही सारे शरीर में विष चढ़ जाता है । दवारी = वन की आग । कटकई = सेना । माँक = मकधार म, बीच में । छार्ई = छाये हुए । चीजा = चखना । पालव (पल्लव) = पत्ते, डाली से मतलब है । अगम = न जानने लायक । अगाध = अथाह । दुराऊ = गुप्त । निज प्रति-निध्व धरक गहि जाइ = अपनी परछाई को कोई भले ही पकड़ ले ।

दोहा ४७-४८—गाजनु = मानो गया-नए हो गया । “सिवि, दधीचि हरिचन्द कहानी” = सिवि और दधीचि की कथा तो ३० वें दोहे के सम्बन्ध में आ चुकी है । राजा हरिचन्द्र को कथा भी प्रसिद्ध है । राजा ने विश्वामित्र को अपना सारा राज पाट दान दिया तो मुनि ने फिर उससे दक्षिणा मागी । जिसे राजा ने अपनी रानी धेचकर तथा स्वयम् काशी में एक चाण्डाल की चाकरी करके चुकाया । अन्त में हरिचन्द्र का पुत्र गोदिताश्व मर गया । रानी उसका शर अत्येष्टि दिया के लिए श्मशान में छाई । चाण्डाल की तरफ स पड़रे

पर हरिश्चन्द्र थे। इन्होंने अपनी रानी से निःसंकोच कहा—
“कर दिये बिना तुम शव का सस्कार नहीं कर सकती।” इस प्रकार सत्य की रक्षा कर इन्होंने स्वर्ग प्राप्त किया।

रद = दाँत। अलीहा = झूठ।

दोहा ४६-५३—तूल (तुल्य) = समान। खरभर = खल-
वली। जठरी = बडी। सवति आरेख = सौतिया डाह। कोहू =
क्रोध। गवन्द = हाथी। अलान = जजीर। सीव = सीमा।
मकरन्द = पुष्प रस। स्त्रिय (श्री) = राज लक्ष्मी।

दोहा ५४-६०—जिमि जवास = मानो जवासे पर
बरसात का पानी पड़ गया। जवासा काँटेदार छोटा पौदा
होता है, यह गर्मी में तो खूब पनपता है पर बरसात में पानी
पड़ते ही सूख जाता है। माजहि मापी = मानो मछली को
‘माजा’ मार गया हो। ‘माजा’ एक रोग होता है, जिससे
बहुधा वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में बहुत सी मछलियाँ तड़प-तड़प
कर मर जाती हैं। कसानू = अग्नि। भई गति केरी =
साँप छड़ू दर को पकड़ कर बड़े असमञ्जस में पड़ जाता है,
निगलता है तो कोढ़ी होता है और उगलता है तो उसे अन्धा
बनता पड़ता है। अम्बु = पानी। विलाप-कलापा = दुःखों का
समूह। नमित = नीचा। नूपुर = बिछिप, उगलियों में पहनने
का गहना। अग्नि = पृथ्वी। सुरसर = मानसरोवर।
डावर = पोखर।

दोहा ६१-६५—विपिन = वन। हठ नरेस = गालव
और नहुष नामक राजाओं ने हठ करके अनेक सकट सहे थे।
(१) गालव मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे। जब यह पढ़ाई
समाप्त कर चुके तो उन्होंने गुरु से वक्षिणा स्वीकार करने की

आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। अपने शिष्य का ऐसा हठ देख कर विश्वामित्र ने कहा—‘अच्छा, तुम गुरु-दक्षिणा देना ही चाहते हो तो ८०० श्याम कर्ण घोड़े दो।’ श्यामकर्ण घोड़े एकत्र करने में गालव को घोर कष्ट सहना पड़ा और इस प्रकार उन्हें अपने आग्रह का फल मिल गया।

(२) राजा नहुष बड़े ज्ञानी तथा तपस्वी थे। एक बार राजा इन्द्र ब्रह्म हत्या के कारण अपना सिंहासन त्याग इधर उधर छिपते फिरे। उस समय नहुष ही उनकी गद्दी पर निराजमान हुए। इन्द्र की गद्दी पर बैठ कर नहुष को प्रमाद हो गया और वह इन्द्राणी को प्राप्त करने का हठ करने लगा। इन्द्राणी ने वृद्धस्पति द्वारा सन्देश भेजा कि यदि नहुष पालकी में बैठ कर मेरे पास आवे तो मैं उसे स्वीकार कर सकती हूँ, परन्तु वह पालकी ब्राह्मणों द्वारा उठवा कर लाइ जाय। नहुष तो पद के मद में अन्धा हो ही रहा था वह सप्त ऋषियों से पालकी उठवा कर इन्द्राणी के महलों की ओर चल पड़ा। पालकी में बैठ कर नहुष ने ऋषियों से शीघ्रगामी होने को कहा, इसपर उन्होंने क्रुद्ध हो कर उसे ऐसा शाप दिया कि वह सर्प हो गया। बस इन्द्र पद से झट होकर नहुष सर्प बन गया और घोर सकुट सहता फिर।

अग्नि कुमारी = सीता। तरनि = सूय।

दोहा ६६-७४ किसलय = कोमल पत्ते। सायरी = बिछौना। अग्रध = अयोध्या। ऋधि = १४ वर्ष की मियाद। पल्लारि = घोड़ा। पाय पलोटहि = पाँव दाबा करेगी। ससक = सर-गोश। अहिवात = सोभाग्य। सिअरे जैसे = उन ठंडे वचनों से लक्ष्मण उसी तरह खूब गये जैसे तुहिन (पाला) से

तामरस (कमल) झुलस जाते हैं । कदराई = कायरता । निगम-
नीति = शास्त्र और नीति । मन्दर मेरु = मन्दराचल । मराला =
हंस । भूति = ऐश्वर्य । भा = हुआ । स्वारथ रहित सखा
सब ही के = श्री रामचन्द्रजी को यहाँ निस्वार्थ सखा कहा
गया है । मित्र चार तरह के होते हैं । बन्धु, सुहृत्, मित्र और
सखा । बन्धु वह जो अलग नहीं हो सकता । सुहृत् वह जो
आशा में रह कर काम करता है । एक ही सा काम करने वाले
को मित्र कहते हैं और सखा वह है जो प्राणों के समान प्यारा हो ।

दोहा ७५-८० नतरु = नहीं तो । यदि बिभ्रानी = व्यर्थ
कुपुत्र जना । राग = प्रेम । सुपासु = सुभीता । सुरति = याद ।
अधिरल = अत्यन्त, अधिक । वागुर भागवत्स = मानो कोई
मृग सोभाग्य से घेरील वागुर (खेत के चारों ओर लगी हुई काटों
की बाढ़) को तोड़ फोड़ कर काँद गया हो । विवस
छीने = उस प्रकार विकल ये जिस प्रकार शहद छिन जाने पर
मक्खिया व्याकुल हो जाती हैं । भीजहिं = मलते हैं । प्रमाद =
असावधानी । अपवाद = निन्दा । अनुहारी = अनुसार । तमकि
उठी = लाल हो गई । भीरा = भीड़ । पयान (प्रयाण) = कूच,
निकलना । विरह दू-दाढ़े = विरह रूपी अग्नि में जल रहे हैं ।
बरपासन = बरसों के लिए भोजन । मीत = मित्र । सार सँभार =
देख भाग । जुग पानी (युगल पाणि) = दोनों हाथ ।

दोहा ८१-८४—विपादू = रज । आरतनादू = हाहाकार ।
'हरप-विपाद विवस सुर लोगू' = रामचन्द्र जी के वनगमन से
देवताओं को आनन्द भी हुआ और दुःख भी । आनन्द तो
इस बात का हुआ कि अब उनके द्वारा राक्षसों का वध होगा,
और दुःख का कारण यह कि राज परिवार तथा अयोध्या
निवासियों को राम के वियोग से ऐसी दयनीय दशा होरही है ।

सुठि = अत्यन्त । फिरेहु = फेरना, वापस चुला लाना । उपाय
कदम्बा = बहुत से उपाय । कदम्ब = समूह । आनि दिखाऊ =
लाकर दिखाओ । नाइ = नयाकर । परिजन = कुटुम्बी लोग ।
हय = घोड़ा । गय = हाथी । केलि मृग = पालतू हिरन । पिक =
कोयल । रथांग = चकवा । सुक सारिका = तोता-मेना । गहर
भारी = बड़ा भयकर । मन्त्र दृढ़ाइ = पक्की सलाह करके । 'सुर
दुलभ = देवताओं को भी कठिनता से प्राप्त होने वाले ।

दोहा ८५-८८—सदय = दयायुक्त । जा (या) म जु (यु) ग =
दोपहर । खोज मारि = किसी को पता न चले । आन (अन्य) =
और, दूसरा । जान (यानै) = सवारी, रथ । निन्दहि आप सरा
हहि मीना = अपनी निन्दा और मछलियों की प्रशंसा करते हैं,
क्योंकि मछली बिना पानी के मर जाती है, परन्तु अयोध्या
वासियों के प्राण रामचन्द्रजी के वियोग में नहीं निकले ।
परितापा = दुःख । अवधि प्राणा = रामचन्द्रजी वनवास
की अवधि समाप्त कर वापस आवेंगे इसी आशा पर लोग
जीवित हैं । मनहु तमारि = जिस प्रकार चकवा-
चकई और कमल तमारि (सूय) के बिना दीन हीन हो जाते
हैं । देयसरि = गंगा । मज्जन = स्नान । सुमिरत
व्यग्रहार = तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन रामके स्मरण मात्र
से थकावट जाती रहती है, उनके सम्बन्ध में श्रम होने तथा
'उसके मिटजाने आदि की बात कहना केवल लौकिक व्यग्रहार
है । केतु = पताका । नर अनुहरत = मनुष्यों के समान ।
सखत-सागर-सेतु = ससार-समुद्र को पार करने के लिए
पुल रूप । भाग भाजन = धन्य, सौभाग्य शाली । जन = सेवक ।
दोहा ८९-९२—लोयन (लोचन) = नेत्र । तर सिंसुपा =
शीशम का पेड़ । पादरु प्रवीती = विश्वासपात्र पहरेंदार ।

भाथा = तरकस । न पटतर पावा = समता नहीं कर सकता ।
 रतिपति = कामदेव । सुभोगमय = भोग्य पदार्थों से सम्पन्न ।
 घसन = बख्ख । उपधान = गद्दे । तुराइ = तकिये । छीर (शीर)
 फेन = दूध के भाग । विसद = सफेद । जोगवहिं = रत्ना करते
 हैं, देखते भालते हैं । सुरेस-सखा = इन्द्र के मित्र । केही = किसको ।
 नन्दिनि = पुत्री । बिटप = वृक्ष । कुठारी = कुल्हाड़ी । जोग
 (योग) = सयोग मिलना । भल-मन्दा = भला बुरा । मध्यम =
 उदासीन जो न हित है और न अनहित ।

दोहा ६३-६५ — रक = रुगल । नागपति = स्वर्ग का राजा
 इन्द्र । तिमि प्रपच जिय जोय = उसी प्रकार जीव के लिए यह
 सत्कार प्रपच रूप है, स्वप्न के समान है । वादि = व्यर्थ ।
 अविगत = सत्र में होते हुए भी किसी में न होना । गत भेद =
 भेद-भाव से दूर । नेति = इतना ही नहीं, इससे भी अधिक ।
 सुरभि = गौ । बटझीर = वरगद्द का दूध । रतिदेव बलि
 सुजाना = रतिदेव बड़ा धर्मात्मा राजा होगया है, यह अपना
 राज पाट छोड़ कर अपने पुत्र कलत्र सहित वन को चला गया और
 वहाँ फठिन तपस्या करने लगा । ४८ दिन की तपस्या के बाद
 उसे भोजन मिला । इतने ही में एक मगता वहाँ आगया और
 दीन बाणी से भोजन मांगने लगा । ४८ दिन के भूखे रत्तिदेव
 ने स्वयम् कुछ न खाकर सारा भोजन उस भिक्षुक को दे दिया ।
 यहाँ तक कि स्त्री और पुत्र का भाग भी उसे खिला दिया ।
 इससे प्रसन्न हो विष्णु भगवान ने उसे दर्शन दिया तथा परम-
 पद प्रदान किया । आगम = वेद । सभावित = प्रतिष्ठित
 या कीर्तिमान ।

दोहा ६६-१००—नति = नम्रता । कबनिहुँ = किसी भी ।
 निपट = विलकुल । मनुमान = मन चाहे, इच्छा हो । सुखेन =
 सुख से । विहान = दूर हो जाय । खमारु = दुःख, क्षोभ ।
 प्रभा = धूप, चमक, रोशनी । चन्द्रिका = चाँदनी । गिरा =
 बाणी । आरजसुत = आर्य पुत्र, पति के लिए प्रयुक्त होता है,
 श्रीरामचन्द्र । डीठा = देखा । नृपमनि पीठा = जिनके
 चरणों में बड़े बड़े राजाओं के मुकुट टकराते हैं । चक्षुइ =
 अर्त्तों । आगे लेई = आगे बढ़कर इन्द्र जिनका स्वागत
 करते हैं । एतादूस = ऐसे । पगग = रज । कुरग = हिरन ।
 सन = से । मोरिहुति = मेरी ओर से । भोरे = भूल कर ।
 फनि = सप । मूरु = मूल, पूजा । हेरि हेरि = देख देख कर ।
 न आना = नहीं लाया । बाट परइ उडाई = अवसर
 पड़ते ही आप मेरी नाव उड़ा देंगे अथवा नाव उडगई तो
 मेरी जीविका का मार्ग (घाट) पट (परइ) हो जायगा । कवारु =
 कारवार । तरनिउँ जाइ = कहीं नाव भी मुनि की स्त्री
 न होगाय । मुनि की स्त्री की क्या इस प्रकार है—

ब्रह्माजी ने अपनी इच्छा से अहल्या नाम की एक परम
 सुन्दरी कन्या पैदा कर उसका विवाह गोतम मुनि के साथ
 कर दिया । यह बात देवताओं को बहुत घुरी लगी और वे
 ईर्ष्या करने लगे । इन्द्र ने तो यहाँ तक किया कि वह एक दिन
 गोतम का रूप धारण कर अहल्या के पास पहुँच गये और
 उसके साथ त्रिषय करने लगे । अहल्या को सन्देह हुआ तो
 उसने पूछा—“तू कोन है ?” नरुली गोतम ने कहा—“मैं इन्द्र हूँ ।”
 दत्तने ही मैं गोतमजी आगये और उन्होंने दरवाजा खुलवाया ।
 अहल्या इन्द्र को छिपा कर कुछ देर से दरवाजा खोलने गई ।
 गोतमजी ने विनम्र का कारण पूछा तो अहल्या ने बात

बनादी। परन्तु गौतमजी ने अपने योग-धूल से सारा हाल जान कर इन्द्र को शाप दिया कि तेरे शरीर पर सो भग होजायँ और अहल्या से कहा कि तेने झूठ बोला है अतएव तू पापाण बन जा। जब रामचन्द्र अउतार लेंगे तब उनके चरणों की धूल से तेरा उद्धार होगा।

अभिप्राय यह है कि केउट रामचन्द्रजी से कहता है कि आपने चरणों की धूल से जब कठोर पापाण मुनि पत्नी का रूप धारण कर लेता है तो नाथ तो काठ की ही है, इसका कुछ का कुछ हो जाना तो बहुत ही आसान है, इसलिए नाथ 'नाथ' में चढ़ने से पूर्व आप अपने पाँवों की धूल धो लेने दोजिए जिससे नाथ के मुनि घरनी बन जाने या उड़ जान का भय जाता रहे।
आन = सौगन्द। अउपटे = जिन पर कुछ उत्तर न देते बने।

दोहा १०१-१०७—पद नल करपी = रामचन्द्रजी के चरणों के नलों को देख कर गंगाजी प्रसन्न हुई। परन्तु फिर राम के वचन सुनकर उनकी बुद्धि मोह की ओर आकृष्ट होने लगी। यह वचन क्या थे?—“होत बिलम्ब उतारहु पारु” देर होती है, जल्दी पार उतारो। गंगाजीसमझीं कि रामचन्द्र केउट से क्रुद्ध होकर योंही मुझे पार कर जायँ तो मैं चरणों का स्पर्श न कर पाऊँगी, परन्तु अब वह मोह हट गया। यह भी अर्थ होसकता है कि रामचन्द्र ने जल्दी पार होने की इच्छा प्रकट की इससे गंगाजी को मोह हुआ कि अब वह मुझसे शीघ्र ही अलग हो जायँगे।

पार्थिव = मिट्टी की बनाई हुई शिव-भूर्ति। रागीसा = घाणी। हुलास = प्रसन्नता। छेत्र (क्षेत्र) = फैलाव। गाढ = मजबूत। कलुष = पाप। अनीक = सेना। कुञ्जर = हाथी। मृगराज =

सिंह । तीर्थपति = प्रयाग । प्रतिपल्ल (ल) = वैरी । अपय वट = अजय वट । सुकृती = पुण्यवान् । शुचि = पवित्र । गुन ग्राम = गुणगण । वेनी = त्रिवेणी । असीस = आशीर्वाद । लोचन

आनि = मानो विधाता ने हमारे पुण्यों का फल आँखों के सामने लाकर रख दिया है । अमी के = अमृत समान । विगत स्वम (श्रम) = थकावट दूर होगई । लाभ दृष्टी = लाभ और सुख के लिए इससे बढ़कर दूसरी अवधि नहीं है ।

दोहा १०८-१११—उपचार = उपाय । अधाने = तुल्य, भरे हुए । गोहू = घर । वचन अगोचर = अकथनीय । सुअन = पुत्र । पार्थी = से । सन = से । घाई = गैड कर आना । फिरहि

पठाई = मन उनके साथ भेज कर स्वयम् वापस लौट आते थे । फिरे पाय मन काम = अपनी मन कामना पूरी करके लौटे । जुगुति = युक्ति, तरीक़ा । तापस = तपस्वी । लघु वयस = छोटी आयु । कवि अलपित गति = विद्वान् भी गति को नहीं जानते । पियत नयन पुट रूप पियूषा । मुदित भूषा = वह तपस्वी अपने नेत्र रूपी दोने से रामचन्द्र की रूपसुधा का पान कर ऐसा प्रसन्न हुआ मानो किसी भूखे को अच्छे भोजन मिल गये हों ।

दोहा ११२-११५—रवितनुजा = यमुना । राजलपन = राज-लक्षण । पयादेहि = पैदल ही । जाइन जोई = देखा नहीं जाता । नाग-सुर-नगर सिहार्ही = नागलोक और देवलोक भी प्रशंसा करते हैं । अमरावति = इन्द्रपुरी । अगगाहहि = प्राप्त होते हैं, स्नान करते हैं । परसि = झूकर । सुमन = फूल । भगन = खुश । सुरमनि = चिन्तामणि । योलि = बुलाकर । छुन पही = इसी क्षण । एक नयन = कोई नेत्रों के रास्ते राम की छवि हृदय में लाकर शरीर, मन, वाणी सबकी ओर से शिथिल हो

जाता है । डासि = बिछाकर । तृनपात = घास पत्ते । अचइय =
आचमन कीजिए । लोभा = लुभा गये । तरुन , सोहा =
नवीन तमाल पत्र के रंग के समान शरीर का रंग सुहावना
लगता था । दामिनि वरन = बिजली के से रंग वाला । नखसिख =
सिर से पैर तक । तृनीरा = तरकस । धनुतीरा = धनुष तीर ।

दोहा ११६-११७—सरद जाल = शरद ऋतु के
पूर्ण चन्द्र के समान मुख मण्डल पर पसीने की बूँदों की
पकिया चमक रही हैं । बिलग न मानय = दुरा न मानना ।
सलोने = सुहावने । रन्ते सोने = इनकी दमक से
मरकत मणि और सोना चमकने लगता है । ऐन = घर । सरद
स (श) वरी नाथ = शरद ऋतु के समान । सरद सरोवर नैन =
शरद के कमल की सी आँखें । आर्हि = हैं । सुमुखि = अच्छे
मुख वाली । सुभग = सुन्दर । सैननि = इशारे से । रायरासि =
रत्नों की ढेरी । बधूटी = बधुपें, रिया ।

दोहा ११८-१२४—जब तगि महि अहिंसीस = जब तक
शेपजी के मस्तक पर पृथ्वी है अर्थात् सदा । जन
पोषी = मानो चाँदनी ने कुमुदनी को खिला दिया । निधि =
सम्पत्ति । सोधि = खोजकर । लिप लाइ मन साथ = उनके
मनों को साथ ही ले चले । निरकुश = स्वतन्त्र । निठुर
(निष्ठुर) = कठोर । निसकु = निडर । ससि = चन्द्रमा ।
सरुज = रोगी । रुरु = वृत्त । पठये = भेजे । पदत्राना =
जूते । वाहन = सवारी । का = क्यों । धत्रत घाम =
आलीशान महल । जटिल = जटा । असन = भोजन ।
पटतर जोग = उपमा के लिए । ऐक (ऐक्य) = समता । इरपा = ईर्ष्या
हम लेखे = हमारे हिसाब से । गहवनि = गद्गद । अछतारे =
लाल । सैल = पहाड़ । ठाऊँ = स्थान । विरचि = प्रज्ञा ।

सोमित्र = लक्ष्मण । मधु = यसन्त । मदन = कामदेव । रति = कामदेव की स्त्री । पद अरु धराये = चरण चिन्हों को धवा कर । घटोही = मुसाफिर । भव सिराइ = उन्होंने ससार के कठिन मार्ग को सहज ही में पूरा कर लिया अर्थात् आसानी से भयसागर पार हो गये, मुक्त हो गये । घटाऊ = घटोही । अजहूँ = अब भी । मधुप = मीरा । विरहित वर = वर छोड़कर ।

दोहा १२५-१२६—राजिवनेन = कमलाक्ष । जुडाने = ठंडे किये । त्रिकालदर्शी = तीनों काल की वान जानने वाला । विश्व चद्र हाथा = सारा ससार तुम्हारे हाथ पर वर के समान रफला है । भाइ भरत अस राउ' = भरत जैसे भाइयों को राज्य । उद्वेग = कष्ट । पावक = अग्नि । विप्र परि-तोषे = ग्राहकों की प्रसन्नतासे । दहइ = जलता है । साधु साधु = अच्छा, अच्छा । सतत = सदा । स्मृतिसेत = धेद मर्यादा । निसिचर अनी = राक्षस सेना । बुद्धिपर = बुद्धि से परे । विधि, हनि, समु नचायनिहारे = ग्राह्य, विष्णु तथा महादेव को नचाने वाले । प्राकन = साधारण । निरेता = निवास स्थान । रूरे = उत्तम । जीहा = जीभ । जस = यश । मानस = मानसरोवर । मुक्ताफल = मोती । नासा = नाक । द्विज = ब्राह्मण ।

दोहा १३०-१३४—छोम (क्षोम) = चिढ़ना । पराय = पराया । पर = पराई । धेनु = गाय । अपउरग = मोक्ष । अत्रि प्रिया = अनसूया । पोतक = बालक । कसही = कष्ट देते हैं । पय (पयस्विनी) = नदी । नारा = नाला । पनच = प्रत्यचा । साउज = निशाना । अचल अहेरी = अचूक निशाना लगाने वाला । घात = निशाना । मुठ मेरी = एक ही मूठ में । राजत = शोभायमान था । ऋतुराज = यसन्त । अमर = देवता ।

दोहा १३५-१३६-सुखन्द (स्वच्छन्द) स्वतन्त्रता पूर्वक ।
 अपर = दूसरे लोग । निकाइ = भलमनसाहत, बड़ाइ । जोहार =
 प्रणाम । अहि = साँप । करि = हाथी । वराई = बचाकर । खोह =
 खड्ड । फन्दर = गुफा । अहेर = शिकार । वेहड = टीले, वेढगे ।
 मज्जु विताना = लिपटी हुई सुन्दर घेलों के जाल छाये हुए
 हैं । त्रिविधि बयारि = शीतल, मन्द, सुगन्ध तीन प्रकार की
 घुआ । फलकठ = मोर, सुन्दर फल वाला । चक = चकमा ।
 चुक (गुरु) = तोता । कोल = सूअर । कुरग = हिरन । उदय-
 अस्तगिरि = उदयाचल, अस्ताचल । मँदर = मन्दराचल ।
 अचर = पहाड़, पेड़, पत्थर आदि । परमपद = मोक्ष । पय-
 पयोधि = क्षीर सागर । सहसानन = शेषजी । डावर कमठ = पोखर
 का फल्लुआ ।

दोहा १४०-१४५-सुरति = याद । फर = फल । मदन = काम-
 देव । घासव = इन्द्र । सची (शची) = इन्द्राणी । जयन्त =
 इन्द्र का पुत्र । मोचहि = बहाते हैं । वाजि = घोड़ा । अडुफि
 परनि = अटक जाते हैं । हिंकरि हिंकरि = हिनहिनाकर । भगन =
 डूब जाना । अघ = पाप । पराइ = भाग खड़े होना ।
 बिरद बाधि = धीर का बाना पहन कर ।

दोहा १४६-१४८-वेद-विद = वेदज्ञ । समत = प्रतिष्ठित ।
 सुजाति = उत्तम जाति में उत्पन्न, ब्राह्मण । डीठि भई थोरी =
 दृष्टि कमजोर होरही थी । लागि मुह लाटी = मुह लटा सा
 या उतरा हुआ सा लगता था । जिउ न जाइ उर अग्रधि
 कपाटी = प्राण नहीं निकलते थे, क्योंकि हृदय पर १४ वर्ष बाद
 लौटने के किवाड़ लगे हुए थे । लयाइ = लयारी, नई व्याई
 हुई । यच्छ (वत्स) = बच्चे, बछड़े । दुखदीना = दुख से दीन
 हुए । पैठत = घुसते ही । आतप = घूप । निघटत = घटने से ।

अमिय विराजा=मानो बिना श्रमृत का चन्द्रमा है
(श्रमावस्था वाचक)

सुरपुर जजानी=मानो स्वर्ग से ययाति जिसक
गया हो । जिसकने की कथा इस प्रकार है—ययाति नामक
राजा ने अनेक पुण्य कर इन्द्र पद प्राप्त किया था । जब वह इन्द्र-
लोक में पहुँचा तो इन्द्र ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया और
पूछा कि आपने कोन कोन से तप करके यह पद प्राप्त किया है ।
तब ययाति ने एक-एक कर अपने सब मुख्य तप सुना दिये ।
इस प्रकार अपने मुह से अपने पुण्यकार्यों का वर्णन करने के
कारण ययाति का साग तप नष्ट हो गया, और वह इन्द्रलोक
से धरेल दिया गया ।

लेत सोच सपाती=राजा दशरथ दुःख से क्षण
क्षण में हृदय भर लेते हैं, उनकी दशा ऐसी होगई है मानो
सपाती पक्षी पक्ष जल जाने पर गिर पड़ा हो । सपाती की कथा-
कश्यप के पुत्र अरुण के सपाती और जटायु नामक दो पुत्र थे ।
युवावस्था में मदान्ध होकर ये सूर्य के पास उड़ कर पहुँचे ।
सूर्य का तेज सहने में अशक्त होने के कारण जटायु तो लौट
आया पर सपाती सूर्य के और भी समीप चला गया जिससे
उसके पक्ष जल गये और वह महेंद्र पहाड़ पर गिर गया ।

बोहा १४६-१५५—सिगरीर=शृ गवेरपुर । कोसलधनो=
अग्रधेश । सेवेहु=सेवा करो । कहन लिय=कहना चाहती थी ।
पुलक पल्लवित देह=स्नेह में रोमाञ्जली खड़ी होगई । ठाढ़=
खड़ा खड़ा । रदिगयऊ=चुप हो गया । सूत=सारथी । रिपम
मोहमन माया=घोर मोह ने उनका मन घेर लिया । अययेउ=
अस्त हुआ । तलफन=तड़पड़ाती । जुग सरिस=युग के

समान । सिराति न राती = रात नहीं कटती । तापस अन्ध
साप सुधि आइ = राजा को अन्धे तपस्वी के श्राप की
याद आई । इस अन्धे तपस्वी की कथा इस प्रकार है —

एक बार राजा दशरथ को तमसा नदी के तट पर शिकार
खेलते-खेलते रात होगई पर कोई शिकार उसके हाथ न लगा ।
वह निराश खड़ा था कि इतने ही में अरण नामक तपस्वी
अपने अन्धे माता-पिता को कुटी पर छोड़ कर नदी से पानी
भरने आया । राजा ने घड़े का शब्द सुनकर दूर से समझा कि
कोई जंगली हाथी पानी पी रहा है, भट उसके मारने की
इच्छा से उसने वाण चला दिये, जिससे अरण घायल हो गया ।
राजा समझा शिकार मार लिया । परन्तु पास जाकर उसे
दूसरा ही दृश्य दिखाई दिया । अपने तीर से अरण को मरणासन्न
पा कर राजा को बड़ा दुःख हुआ । उसने उसके शरीर से
ज्योंही तीर निकाला त्योंही वह मर गया । केवल इतना कह
सका कि राजन् ! मेरे प्यारे माता पिता को पानी पिला देना ।
राजा घड़ा लेकर अन्धी अन्धे के पास पहुँचा और उन्हें सब
कथा कह सुनाई । अपने पुत्र के मरने का समाचार सुन दोनों
को बड़ा दुःख हुआ, और उन्होंने राजा के साथ घटनास्थल
पर पहुँच कर चिता चुनी जिसमें दोनों अपने तपस्वी पुत्र
के साथ भस्म हो गये । तथा राजा दशरथ को शाप देगये कि
जिस प्रकार हम पुत्र शोक में मर रहे हैं, उसी प्रकार
तू भी मरेगा ।

प्रेम पन = प्रेम प्रण । प्राण पिरीते = प्राणों से भी प्यारे ।

दोहा १५६-१६२—अण्ड = गलाण्ड । घावन = दूत ।
कराग = कौण । कुलेत = बुरे स्थान । दह दिसि = दश दिशाएँ ।
चमज = कमल । मरम = दर्द = मानो वह घाव कर उसमें ।

घिप डालने जगी हो । विटई = बडे । पकिछत(क्षत) ' अगारू = मानो किसी ने पके घाव पर आग रखी हो । पाल = पत्ते, रहनी । मसि = फालोच ।

दोहा १६३-१६८—दलित दसन = दाँत टूट गया । वेनुवन = वाँसों का वन । बलकल-बफल = पेड़ों की छाल । चीर = बखर । गाइ गोठ = गोशाला । धर्म दूहि लेही = धर्म को दुह लेते हैं या कन्या पेचते हैं । पिशुन = चुगलखोर । भेऊ = भेद ।

दोहा १६९-१७४—मातु सब राखी = सती होने से सब माताओं को रोक लिया या रोने से बन्द कर दिया । भावी = होनहार । वयसु = वैश्य । मुखर = मुँह चलाते वाला । बटु = प्रह्वचारी । थेजानस = तपस्वी । पर थपकारी = दूसरों का घुरा चीते वाला । कुर = सत्य । परसुराम साक्षी = परशुरामजी ने अपनी माता रेणुका का वध किया था, इसे जगत् जानना है । यह कथा इस प्रकार है कि एक बार जमदग्नि की स्त्री रेणुका किसी तालाब पर जल भरने के लिए गई । वहाँ गन्धर्व प्रीडा कर रहे थे । वह भी उसे देखने लगी, यहाँ तक कि उसका मन ढिग गया । सुध आने पर रेणुका अपने आश्रम की ओर चली । उधर जमदग्नि ने सारा हाल अपने योगबल से जान लिया । उन्होंने अप्रसन्न होकर अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि रेणुका को मार डालो । जमदग्नि के और पुत्र तो देखते ही रह गये केवल परशुरामजी उठे और उन्होंने अपनी माँ को मार डाला, परन्तु पिता की आज्ञा का तिरस्कार न किया ।

“तनय जजातिहि यौवन दयऊ” = यह कथा इस प्रकार है कि राजा ययाति के देवयानी और शर्मिष्ठा नाम की दो रानियाँ थीं

देव्यानी के पिता शुक्राचार्य ने ययाति को इस शर्त पर अपनी कन्या व्याही थी कि वह शर्मिष्ठा के साथ सम्भोग न करेगा। परन्तु शर्मिष्ठा के गर्भ से पुत्र होने पर विदित हुआ कि ययाति ने अपनी उक्त प्रतिज्ञा भंग कर दी। इस पर शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दिया कि वह बुढ़ा हो जाय। पीछे ययाति के बहुत प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने अपने शाप में इतनी रियायत कर दी थी कि इच्छा होने पर उसकी वृद्धावस्था में परिवर्तन हो सकता है। ययाति ने अपने पुत्रों से जवानी मांगी पर किसी ने न दी। अन्त में उसके छोटे बेटे पुरु ने अपने पिता की आज्ञा मान कर उसे अपनी जवानी दे दी और स्वयम् वृद्ध हो गया।

दोहा १७५-१८१ गलानी (गलानि) = घृणा, उदासीनता।
 कवराह = घबराना। सीव = सीमा। धरि = सोचकर। अनु-
 हरत = उचित। वादि = व्यर्थ। विरति = वैराग्य। रसा =
 पृथ्वी। कुलिस = वज्र। कुलिस अस्थिते = वृत्रासुर
 को मारने के लिए वधीचि की हड्डियों का वज्र बनाया गया था,
 इसीलिए उसे हड्डियों की अपेक्षा अधिक कठोर कहा गया है।
 जठर = पेट। ग्रह गृहीत = ग्रहों से पकड़ा गया, घुरे ग्रहों वाला।
 वातवश = सन्निपात या प्रलाप वश। बीछी = बिछू।
 धारुनी = शराब। भरतजी कहते हैं—एक तो मैं केरुई का पुत्र,
 दूसरे पिता परलोक पधार गये तीसरे राम विरह दुःख भोग
 रहा हूँ। इतने पर भी आप लोग राजतिलक रूपी मदिरा
 पिलाना चाहते हैं। मैं नहीं समझता, इन सब मारक व्याधियों
 के होते हुए मेरे बचने का कौन सा उपाय है।

दोहा १८२-१८८—जागी = लिए। दारुन (ण) = कठोर।
 जिय कै = हृदय की, जी की बात। सबीज = सिद्ध। 'मन्त्र

जागे' = मानो कोई साँप का काटा धीज सहित (सिद्ध) मंत्र को सुनकर जाग उठा हो । पाँवरु = नीच । सुगाई = सराय करता है । अहि = साँप । गरल = त्रिष । निरनउ = निर्णय । गदन मारी = सजा दी । परभात (प्रभात) = तड़के । पयाना = कूच । निज धरम न डोले = अपने धर्म से विचलित न हुए । सुखासन = सुखपाल । यान = सगरी । चक्क-चक्कि = चक्का-चकई । अरु धती = वसिष्ठ मुनि की स्त्री । मुनिराज = वसिष्ठ । अग्निनि समाजू = यज्ञ का सब सामान । सि (शि) धिका = पालकी । करि करिनि वारी = मानो प्यासे हाथी हथिनी पानी को देखकर दोड़ते हैं ।

दोहा = १८६-१८९—विहागे = प्रातः काल होने पर । कट-काइ = फोड़ । जुम्कारा = योद्धा । समर = लड़ाई । ज्ञात = जाति के लोग । सजग = सावधान । हथयाँस = डाँट । तरनि = नाव । कोजिय घाशरोइ = घाटों को रोकना । सजोउल = सावधान । मीचू = मीत । अस घयलिहँ = यश फैला दूँगा । निहोरे = लिप्या सनाह = करव । सजोऊ = तय्यार की । करपा = उमग । पनहीं = जूता । भाथा = तरफस । अगरी = करव । कूडि = लोहे का टोप । बाल = भाला । समकरहीं = सुधारने लगे । ओडनखाँडे = खाँडा चलाने में या प्रहार से रक्षा करने में । छिति (दिति) = पृथ्वी ।

दोहा १८२-१८७—घोरे = घोड़े । मेदिनि = पृथिवी । जुम्कारा = लड़ाई का, युद्ध का । सजोवन लागे = तय्यारी करने लगे । स्यन्दन = रथ । साँचा = सिंचन किया, पानी छिड़का या स्नान किया । करमनास जल धरइ = गंगाजल में मिल जाने से कर्मनाशा नदी के पानी को भी सब शिरोधार्य समझते हैं । वैसे कर्मनाशा के जल को कोई स्पर्श नहीं करता क्योंकि

यह सारे पुण्यों को नष्ट कर देता है। उलटा समाना = राम का उलटा अर्थात् "मरा मरा" कहने से ही वाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गये। यह कथा इस प्रकार है कि वाल्मीकिजी भीलों की सहायता से डाका डाला करते थे। एक दिन उन्हें अचानक ऋषि-मुनियों के उपदेश से वैराग्य हो गया और वह समझने लगे कि ससार में पाप या दुःख का साथी कोई नहीं है, सब लोग सुख ही सुख चाहते हैं। वस, उन्होंने राम का उलटा 'मरा-मरा' जपना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति हो गई। त्रिवेद = वेद की सुधि भूल गया। 'जग विधि वचित सोइ' = वही विधाता द्वारा दला गया है, अर्थात् वही हतभाग्य है। सनकारे = नफेत कर दिया। सुरधेनू = कामधेनु।

दोहा १६-२०० सोध = समझल। कनक पिण्डु = सोने की बिन्दी। करतल = मुट्ठी में। पवि = यज्ञ। ताति धाऊ = गरम हवा। निदरे = निरादर कर दिया।

दोहा २०१-२०६—परदड़िना (प्रदक्षिणा) = परिक्रमा। खोरि = दोप। दण्ड = घड़ी। कोतल खोरिआये = साध में सजे-सजाये घोड़े यागडोर में बाँधे जा रहे थे, अर्थात् उन पर सवारी नहीं की जा रही थी। सिरभर = सिर के बल। झनका = छाले। झलकत = चमकते हैं। एकज कोस = कमल की कलियाँ। ओस बन = ओस की बूँदें। सितासत नीर = गंगा यमुना का जल। स्यामज धवल दिलोर = गंगा-यमुना की लहरें। घान = रग। चहत पैठे = मानो भाग कर सकोच के घर में घुसना चाहते हैं। गई गिरामति धूति = सरस्वती ने उसकी बुद्धि नष्ट कर दी। अयानी = अज्ञानवश। प्रनत (प्रणत) = नम्रसेवक। भा यह समय गनेस = इस समय श्रीगणेश अर्थात् प्रारम्भ हुआ। यहाँ तुलसीदासजी ने चन्द्रमा का रूपक बाँधा है।

“गुरु अपमान” (अपमान) से यह मतलब है कि चन्द्रमा ने त्रिलोक को जीत कर राजसूय यज्ञ किया तो उसने अपने गुरु बृहस्पति की स्त्री तारा से भी सम्भोग किया, इससे बुद्ध पैदा हुआ। चन्द्रमा की इस पापपूर्ण अनधिकार चेष्टा से देवताओं में युद्ध छिड़ गया परन्तु ब्रह्माजी ने बीच में पड़कर विवाद शान्त करा दिया। तारा तो बृहस्पतिजी को दिलाइ गई और बुद्ध चन्द्रमा के पास रहा।

दोहा २१०-२१६—अजिन = मृगछाला। बारहघाट = अस्त-व्यस्त करना, मोह, दीनता, भय, अगति हानि, ग्लानि, भूख, प्यास, मृत्यु, लोभ, भूड और अपयश इन धारों आपत्तियों के आने पर ही बारहघाट होना कह सकते हैं। वितान = चंदोया। सकुचात जमीं से = यमी या सयमी की तरह सकुचाने लगे अर्थात् जिस प्रकार कोई यमी विषय उत्पन्न करने वाली सामग्री के कारण सकुचाता है। सुर सुरभी = कामधेनु। स्रक = माला। सम्पति चक = सम्पत्ति चकई है, भरत चकवा है, मुनिजी की आज्ञा बहेलिया (खिलवार) है और वह रात्रि पिंजड़ा है, जिसमें घे रात भर बन्द रहे। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चकवा चकई रात को भोग-विलास नहीं करते उसी प्रकार विलास की सब सामग्री होते हुए भी भरतजी ने उनका उपयोग नहीं किया।

दोहा २१७-२२३—वर वात = अच्छी हवा। तरन तारन = स्वयम् तरने तथा दूसरे को तारने वाला। पोच = निवल, बुग। सम = समदर्शी। सहस्र नयन जाने = सहस्र आँखों वाले इन्द्र को धिन लोचन अर्थात् अन्धा समझा।

‘यह महिमा जानहिं दुरवासा’ = इस महिमा को दुर्वासा मुनि अच्छी तरह जानते हैं। इस सम्बन्ध में कथा है कि— राजा अम्बरीष की भगवान् के चरणों में बड़ी भक्ति थी। एक बार उन्होंने एकादशी का व्रत किया, द्वादशी को उसका पारण होने वाला था। इतने ही में दुर्वासा ऋषि राजा के अतिथि हुए, राजा अम्बरीष ने उनका खूब स्वागत सत्कार किया और भोजन के लिए सादर निमन्त्रण दिया। दुर्वासाजी स्नान पूजन के लिए नदी पर चले गये, उनकी प्रतीक्षा में राजा को बहुत विलम्ब हो गया, अन्त में पारण का मुहूर्त बीत जाने के भय से राजा ने यथा नियम उसे सम्पन्न किया। थोड़ी देर बाद दुर्वासा आ गये, उन्हें अपनी अनुपस्थिति में पारण किया की समाप्ति का हाल सुन कर बड़ा क्रोध आया। मारे गुस्से के जटाओं को खोल कर फटकारने लगे। इन जटाओं में स कृत्या नामक एक राक्षसी निकल पड़ी, और वह अम्बरीष को खाने के लिए लपकी। इस अरसर पर भगवान् ने अपने भक्त अम्बरीष की रक्षा की और सुदर्शन चक्र से राक्षसी को भस्म कर दिया। फिर सुदर्शन चक्र दुर्वासा के पीछे पड़ा तो वे घ्राण लेकर ब्रह्मादि कई देवताओं के पास होते हुए विष्णु के दरबार में पहुँचे। विष्णु ने कहा—‘दुर्वासा ! तुम भक्त अम्बरीष की ही शरण में जाओ, वही तुम्हारी रक्षा करेगा।’ ऋषि ने ऐसा ही किया। फिर अम्बरीष ने विनयपूर्वक सुदर्शन चक्र को शान्त किया और ऋषि को भोजन कराया। दुर्वासा की इस भाग-दौड़ में पूरा एक साल लग गया। इतने समय तक राजा सर्वथा निराहार रहा। वपुः=शरीर। चतुरंगा=चतुरगिणी सेना (१) हाथी, (२) रथ, (३) पैदल और (४) घोड़ा। दोहा २२४-२२६—विहबल (विह्वल) घचन = ऊट पटाग बातें। अह = अहकार। मम = ममता। पिरीते = प्यारे। रजनी

अथसेवा = रान रहते ही, उप काल में । सोच विमोचन = रज दूर कर देने वाला । कुचाह = अनचाही । पुरारि = महादेव । जनार्द्र = जान बूझ कर । ससि गुरु • वेन समान = गुरु तियगामी चन्द्र की कथा के लिए पृष्ठ १६२ देखना चाहिए । नहुष की कथा पृष्ठ १४६ पर दी गई है । वेन की कथा इस प्रकार है—वेन बड़ा दुष्टात्मा था, उसकी दुष्टताओं से तग आकर उसका पिता राज-पाट छोड़ कर वन में जा बसा । उसके चले जाने पर वेन राजगद्दी पर बैठा और उसने तपस्वी ब्राह्मणों को बड़ा कष्ट दिया, त्रिष्णु के स्थान पर अपनी पूजा कराई । सब ऋषि-मुनियों ने वेन को समझाया कि वह अपनी नीचता छोड़ दे परन्तु उसकी समझ में कुछ न आया । अन्त में ऋषियों ने क्रुद्ध होकर उसे एक ही हुँकार में भस्म कर दिया । “सहस्रबाहु सुरनाथ विलकु”—एक बार राजा सहस्रबाहु शिकार खेलता खेलता जमदग्नि मुनि के आश्रम पर जा निकला । मुनि के पास कामधेनु थी अनपव उन्होंने उसकी सहायता से अतिथि का बड़ा स्वागत-सत्कार किया । कामधेनु की देख कर राजा के मुँह में पानी भर आया और वह उसे मुनि से मागने लगा । मुनि के अस्वीकार करने पर राजा उनसे लड़ने को तैयार होगया और उन्हें मार कर कामधेनु ले चला । पर, कामधेनु छूट कर सीधी इन्द्रलोक पहुँची । जब जमदग्नि के पुत्र परशुराम को यह बात मालूम हुई तो उसने सहस्रबाहु को युद्ध में मार दिया और इक्कीस बार पृथ्वी क्षत्रियहीन करदी तथा अपनी तपस्या के प्रभाव से उसने अपने पिता जमदग्नि को जीवित कर दिया ।

सुरनाथ (इन्द्र) की कथा—एक बार इन्द्र के दरबार में गुरु बृहस्पति जी गये, परन्तु वहाँ उनका उचित आदर

सत्कार न हुआ। अतएव यह थापस चले आये। इन्द्र की इस मदाम्भता पर पृथ्वीपतिजी को बड़ा दुःख हुआ। फलस्वरूप इन्द्र पर दैत्यों ने चढ़ाई कर दी और स्वर्ग से सबको मार भगाया। अन्त में ब्रह्माजी की सहायता से बड़ी कठिनाई पूर्वक इन्द्र की रक्षा हो सकी।

त्रिशङ्कु—राजा त्रिशङ्कु सशरीर स्वर्ग जाना चाहता था। यशिष्ठ और उनके पुत्र राजा को इस कार्य में सहायता न दे सके तो वह विश्वामित्रजी के पास गया। विश्वामित्रजी ने अपनी तपस्या के फल से राजा को स्वर्ग भेन दिया परन्तु स्वर्गवासियों ने सशरीर स्वर्ग में आये हुये राजा त्रिशङ्कु को धक्का देकर नीचे गिरा दिया, उधर विश्वामित्र ने अपने तेज-बल द्वारा उसे पृथ्वी पर लाने दिया। इस प्रकार बेचारा बीच ही में लटक गया। न उसे स्वर्ग ही प्राप्त हुआ और न वह पृथ्वी पर ही आ सका। यह राजा अब भी त्रिशङ्कु के तारे के नाम से प्रसिद्ध है।

रिपु, रिन, रच न राजहु काहु = शत्रु और शृण कभी किसी को जरा भी याकी न रखना चाहिए।

बोहा २३०-२३६—चाहत भभरि भगान = भरं भर भागने की इच्छा करने लगे। अचवत = आचमन करते ही। सीकरनि = धूर्तों से। बिनसाई = बिगड़ हो जाता या फट जाता है। मकु = चाहे। घटजोनी = अगस्त्यजी। छोनी (छोणि) = पृथ्वी। मसक (मपक) = मच्छड़। “अगजस गवीना” = सत्कार में चातक और मड़ली दोनों हो यश के पात्र हैं, क्योंकि चातक स्वाति के अतिरिक्त और तरह का जल न पीने का नियम निवाहता रहता है और मछुजी पानी से अपना नित नया प्रेम बनाये रखने में निपुण है। उताइल = जल्दी। जल अति = पानी

का भँवर अथवा वह काला कीड़ा जो जल्दी-जल्दी पानी में चकर लगाता रहता है। इति भीति जनु प्रजा दुखानी = इति सात हैं अर्थात् अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जगली चूहों का खेतखाजाना, टीढ़ी, तोता, अपने ही मित्र शत्रु हो जायँ, दूसरा शत्रु चढ़ आवे। आज्ञा = शोभित हुई। खगह = गेडा। निसान = बाजा। पाकर = पिलखन। जम्बु = जामुन। बटु = थरगढ़। सकेलि = बटोरकर। सुखमा (सुपमा) सी = शोभा सी। अचर सचर चर अचर करत को = चर को अचर और अचर को चर कौन करता? अर्थात् भरत के वास्तविक प्रेम से अचर पत्थरादि भी पिघल जाते थे और चर ऋषि-मुनि आदि भी शिथिल से हो जाते थे। तून = तरकस।

दोहा २४०-२४१—गुदरत = छोड़ते। चढ़ी खेलाऊ = मानो खिलाड़ी चढ़ी हुई पतंग (चंग) को खींचने लगा हो। चढ़ी हुई पतंग को खींचने में बड़ी सावधानी करनी पड़ती है जिसमें वह फट न जाय या धरती पर न गिर पड़े। जिस प्रकार खिलाड़ी पतंग को उतारते समय कभी ढील देता है और कभी उसे खींचता है, उसी प्रकार लक्ष्मण जी कभी सेवा में लगते हैं और कभी भाई के प्रेम में मुग्ध हो जाते हैं। निपग = तरकस। विसरै सयहिं अपान = सब अपना आपा भूल गया। आखर = अन्तर। भाजु सुराग कि गाइर ताती = क्या कभी ऊन की तात से भी अच्छा राग निकल सकता है।

मिलनि विलोकि

धरकी।”

समुझाये

लागे।”

भरत और राम की मुलाकात देखकर देवताओं में खल पली मच गई कि कहीं राम वापस न लौट जायँ और हमारा स्वार्थ

सिद्ध न हो सके अर्थात् राक्षसों का विध्वंस होने से रह जाय । परन्तु जब देवताओं को गुरु बृहस्पतिजी ने समझाया तब वे शान्त हुए । देवताओं को इस चौपाई में जड़ इसलिये कहा गया है कि उन्होंने अब तक राम का स्वरूप नहीं समझा था ।

दोहा २४२-२४३—जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं = जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही समय में सूर्य की छाया पड़ जाती है और एक के अनेक सूर्य दीपने लगते हैं । रका = कगाल । भेऊ = भिगोई, ठंडा कर दिया । अफाजेउ = मृत्यु हुई हो । निरम्बु = निर्जल । पातक-तम तरनी = पाप रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य समान ।

दोहा २४६-२५४—मारुत = हवा । अघ ओघ = पापों का समूह । त्रिविधि ताप = तीन प्रकार के ताप अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधि दैविक । परन (पर्ण) पुटी = दोना । मरुधरनि = मरु देश । प्रतिवेश बनाइ = कई रूप बना कर, कई सीता बन कर । साली (शालि) = धान । हरगिरि = कैलास पर्वत । भगवान = एश्वर्य युक्त, प्राणियों की उत्पत्ति, मृत्यु, सद्गति, दुर्गति, विद्या और अविद्या को जानने वाला । अहिप = शेषनाग ।

दोहा २५५ २६३—नय = नीति, नम्रता । साईं = गोसाईं । घोहित = जहाज । येरा = वेडा । खुनस = क्रोध, द्वेष । महुँ = मर्नेभी । फरइ सुसाली = क्या कभी कौदों की धाल पर उत्तम चावल लग सकते हैं । मुक्ता सबुक ताली = क्या तालाब की सीप कभी मोती पैदा कर सकती है ? परिपाक = परिणाम । फाकू = उल्टा सुल्टा कहना । वेहू = छेद । खमारु = घबराहट । पुन्यसिलोक (पुण्यश्लोक) = यशस्वी । तर = नीचा ।

दोहा २६४-२७०—नरहरि प्रह्लादा = प्रह्लादने नृसिंह अवतार प्रकट कराया । प्रह्लाद हिरण्यकशिपु नामक दैत्य का पुत्र था ।

उसे बालकपन से ही भगवान् में अनुराग था। प्रह्लाद की ऐसी भगवद्भक्ति देखकर उसके बाप ने उसे घोर कष्ट दिये, कभी पानी में बहाया और कभी अग्नि में जलाया परन्तु भगवान् के अनुग्रह से उसका बाल भी वाँका न हुआ। परन्तु जब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद के प्राण लेने की ठान ली तो भगवान् ने नृसिंह रूप धारण कर उसकी रक्षा की और हिरण्यकशिपु को मार डाला।
 सय = समान । टीक = टेक टिकाई । सनमुख = अनुकूल ।
 देवतरु = कल्पवृक्ष । मिट्टहि अनट अवरेष = यह अड़चन दूर हो जायगी । चरवर = द्रुतशिरोमणि ।

बोहा २७१-२७३—जनकौरा = जनकपुर निवासी ।
 तिरहुत = मिथिला । साहनी = सेनापति । दुधडी = एक प्रकार का मुहूर्त । विनगहि = जोरी = अजलि पसार और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगे ।

बोहा २७४-२८०—जानत फरि मोरे = अपना करके जानते हैं । सन्नम = घबराहट । लेस (लेश) = थोड़ा । अवर्त्त = चक्र । ओरु = आश्रय । निमिराज = जनक । जनक पुरोधा = जनक के पुरोहित (शतानन्द) । कोशिक = विश्वामित्र । काँवरि = कायर । अदन = पर्यटन ।

बोहा २८१-२८७—सायकाश = फुरसत । महिनख सोचन = सोच में नलों से पृथ्वी खुरचने लगी । स्त्रियों का स्वभाव होता है कि वे चिन्ता में पड़ कर प्रायः पाँव के नख से धरती कुरेदने लगती हैं । विस्वरति = विगड़ी सूरत करना अथवा सिसक सिसक कर रोना । कहत सारदु की मति हीची = कहते में शारदा की बुद्धि भी हिचकिचा जाती है । केस बनक मनि पारिखि पाये = सोना कसौटी पर फसने और मणि परखने पर ही जानी जाती है । मुधा = असत्य ।

उर उमरोउ * * * प्रयागू । सिय सनेह । सोहा ।
चिरजीवी * * * श्रवलम्बन । मोह सनेह की ।

चिरजीवी से अभिप्राय मार्कण्डेय से है —

उपर्युक्त चौपाइयों में कोई शब्द कठिन नहीं आया परन्तु तुलसीदासजीने उनमें तीर्थराज प्रयाग का रूपक बाँधा है। इस रूपक का एक पौराणिक कथा से सम्बन्ध है, अतएव उसका यहाँ दे देना आवश्यक है, अर्थ वैचित्र्य समझने में सुविधा होगी। प्रयागराज के विषय में यह प्रसिद्ध है कि प्रलय काल में जब सारी सृष्टि नष्ट होजाती है तब भी वह ज्यों का त्यों बना रहता है। प्रलय के पानी की वृद्धि के साथ ही अक्षयवट भी बढ़ता जाता है जिससे वह कभी पानी में नहीं डूबता।

मार्कण्डेय की कथा इस प्रकार है कि उन्होंने एक बार बड़ा तप किया, तप से प्रसन्न होकर उन्हें भगवान ने दर्शन दिये। मार्कण्डेयजी ने नारायण से अपनी माया दिखाने की प्रार्थना की जिसे सुनकर वे चले गये। परन्तु थोड़ी देर में ही चारों ओर समुद्र उमड़ पड़ा। मुनि के आश्रम तथा भूमि आदि सब डूब गये। मार्कण्डेय के अतिरिक्त कोई न बचा। मुनिजी तूँही की तरह जल में बहुत दिनों तक तैरते रहे। एक दिन अचानक मुनि को हराभरा वटवृक्ष दिखाई दिया उसके ऊपर पत्तों के सम्पुट में एक बालक सो रहा था। ज्यों ही मुनिराज इस बालक को जगाने लगे त्योंही वे उसके श्वास के साथ उसके पेट में चले गये। वहाँ उन्होंने अपना आश्रम देखा और पृथ्वी भी देखी। थोड़े दिन मार्कण्डेयजी ने बालक के उदर में ही विश्राम किया, परन्तु कुछ दिनों बाद वे फिर श्वास के साथ बाहर निकल आये और जल में जा पड़े। परन्तु यह सब

कौतुक दो घड़ी में ही समाप्त हो गया, और मार्कण्डेय ने वृक्ष पर सोये हुए भगवान् की माया देख ली ।

गग अनियल तीन घड़े=गंगा के पृथ्वी पर तीन ही घड़े स्थल हैं । अर्थात् हरिद्वार, प्रयाग और गंगा सागर ।

दोहा २८८-२९४—दुलि=बहाने से । यादुरहि=वापस गया । भोरेह=भूल कर भी । पेलदहि=टालेंगे । परधान=प्रधान । तुम्ह तेही=जो तुम्हारे बिना दुखी है उसीसे तुम सुखी हो अर्थात् भक्त तुम्हारे बिना दुखी और तुम भक्तों के बिना दुखी रहते हो । सुगम थोरे=ये अक्षर सुगम भी हैं और अगम (गूढ़ाध्यायुक्त) भी । अर्थात् कहने-सुनने में कोमल हैं पर कर्त्तव्य में कठोर हैं । भये अलेख सोच यस लेखा=सब देवता सोच यस अलेख अर्थात् कर्त्तव्य विमृष्ट से हो गये, अथवा सब देवता सोच यस चित्र लिखे से हो गये ।

दोहा २९५-२९७—घटत विधि जिमि घटज निवारा=जिस तरह घटते हुए विन्ध्याचल को अगस्तजी (घटज) ने रोका था । इसकी कथा—एक बार विन्ध्याचल पथल ने ऊँचा होकर सूर्य का तेज रोकने की कोशिश की । इससे देवताओं में बड़ी खतावली मच गई । उन्होंने ओर कुत्र चारा चलता न देख अगस्तजी को विन्ध्याचल के पास भेजा, विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत की और प्रार्थना की कि सेवा के लिए आज्ञा दीजिए । मुनिराज अगस्तजी ने कहा कि जब तक हम फिर वापस न आवें तब तक तुम इसी प्रकार दण्डवत् पड़े रहो, यही हमारी आज्ञा है । इसके बाद फिर अगस्तजी वहाँ कभी नहीं गये । कनकलोचन=हिरण्यवत् । वराह=वराह भगवान् । उधरी=उद्धार ।

सोक • • • जोनी ।

भरत विवेक • • • काला ॥

उपर्युक्त चोपाइयों में इस प्रकार रूपक है—सृष्टि के आदि में स्थायम्भव मनु और शतरूपा रानी के प्रकट होते ही हिरण्याक्ष ने अपने बल के घमण्ड में पृथ्वी को लेजाकर रसातल में रख दिया। इधर ब्रह्माजी को चिन्ता हुई कि वह अपनी सृष्टि और किस आधार पर चलायें, तब उन्होंने विष्णु भगवान से प्रार्थना की। विष्णु ने तुरन्त बराह अवतार धारण कर, हिरण्याक्ष को मारा और पृथ्वी को उबार कर यथा स्थान रख दिया।

दोहा २६८-२६९—निरीस = निरीश्वरवादी । नेवाजी = कृपा करके । विरदावलि = विगड़े को सुधारना, प्रशस्ति । आयउ लाइ रजायसु बाँप = आपकी आज्ञा के विपरीत आया हूँ।

दोहा ३००-३०२—नतिन = कमल । मघवा = इन्द्र । पाकरिपु = पाक नामक दैत्य का बेरी अर्थात् इन्द्र । “सरित सिन्धु सगम जुनु वारी” = जैसे नदी और समुद्र के सगम से पानी दुखी हो। थोड़ी थोड़ी देर में समुद्र का पानी नदी में और नदी का समुद्र में आता जाता है, एक धारा नहीं बँधने पाती। यही पानी की व्याकुलता या घबराहट है। सरिस खान मघ-पान जुगानू = इन्द्र कुत्तों (खान श्वान) और जवान के समान है। अष्टाध्यायी नामक प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ में श्वन्, युवन् और मघवन् तीनों शब्दों के रूप एक ही से चलते हैं। यह विनोद है, अर्थात् इन्द्र का रूप कुत्ते के समान है।

दोहा ३०३-३०६—भरत भगत सबकै मति जन्त्री = भरत की भक्ति में सब की बुद्धि बँध गई। हुलसी = उमड़ी

हुई है, प्रसन्न है। वाम = विपरीत। ससिरस = अमृत। मातु पिता

सेधू = माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा मानना सब का धर्म है। आशा पालन करने के लिए ही शेष ने अपने ऊपर पृथ्वी धारण कर रखी है। इसकी कथा इस प्रकार है — एक बार सत्य और धर्म में इस बात पर विवाद हुआ कि दोनों में कौन बड़ा है। शेषजी न्यायाधीश नियुक्त किये गये। इन्होंने कहा कि जो पृथ्वी को धारण करे वही बड़ा। धर्म को पृथ्वी दी गई तो वह घबरा गया। फिर सत्य को दी तो उसने एक युग तक उसको धारण किया। उधर शेषजी ने सोचा कि मेरे सहस्र मुख हैं, मैं चाहू तो अपने हजार मुखों से भगवान् के नाम रूप वर्णन कर उन्हें समाप्त कर सकता हूँ। भगवान् ने इसी बात पर यह पृथ्वी शेषजी के मस्तक पर रख दी कि नाम गुण पूरे हो जाने पर उसे उतार देना। परन्तु अब तक नाम गुणों की समाप्ति नहीं हुई और तबसे धरावर शेषजी पृथ्वी को धारण किये हुए हैं।

भूतिमय = ऐश्वर्यमयी। 'ओडियहि हाथ असिनि के धाये' = तलवार के धाव खाकर हाथ ही आगे आते हैं।

सेवक कर पद . . . होई।

तुलसी . . . सोई ॥

सेवक हाथ, पैर तथा आँखों के समान होना चाहिये और स्वामी मुक्त के सदृश। आँखें किसी फल को देखती हैं, पाँव उस तक पहुँचाते हैं और हाथ उसे लेकर मुह में दे देते हैं। फिर मुह उस फल को खाकर आत्मा, हाथ और पाँव को उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप रस दे देता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि विद्वान् लोग ऐसी ही प्रीति की रीति सुनकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

घरिआई = बारबार । पावन पावन = पवित्र करने वालों को भी पवित्र करने वाला ।

दोहा ३१०-३१४—पाथ = जल । कुराई = ठूठ । प्राहत = मामूली आदमी । 'राउर चदि भल भवदुख दाहू' = आपका कहाकर तो ससार का दुःखदाह भी अच्छा है । देव दुहूँ दिसि ओर निवाह = दोनों ओर (वन और घर) का निर्वाह आपही के हाथ है । परोसो = जरासा भी । खीर (क्षीर) नीर बिबरन गति हँसी = जिस प्रकार हस् में दूध पानी अलग कर देने की शक्ति होती है, उसी प्रकार इस विनती में है ।

दोहा ३१५-३१७—नृपहि = राजा जनक से मतलब है । खाले = खाली जगह में, गड्ढे में । पुटुमि = पृथ्वी ।

(दोहा) मुखिया एक । पालह विवेक =

जैसे खान पान के लिए एक ही मुद्द मुख्य है, इसी तरह मुखिया (मालिक) होना चाहिए । मुद्द खा पीकर जिस प्रकार सारा रस शरीर के प्रत्येक अंग प्रत्यंग को बाँट देता है, उसी प्रकार मुखिया को कर लेकर उसका प्रजा के हित में उपयोग करना चाहिए । साँती = शांति । पाँवरी = खडाऊँ । चरन (चरण) पीठ = चरण सिंहासन, खडाऊँ । जामिन = जामिनदार (रक्षक) । सपुट = कठोरदान या डिब्बी । सपुट

'जतन के = भरत के स्नेह रूपी रत्न को रखने के लिए मातों दो डिब्बी हैं । दो अक्षर 'राम' जीवों की शुभ चिन्तना करने वाले सहायक हैं । अग्रधि आस सम जीवनि जीभी = अग्रधि (१४ वर्ष तक) जीवों के जीने के लिए आशा होगई । अवरेव = विगड़ी बात । विबुध धारि भद्र गुनद गुहारी = देवताओं की चाल स्पष्ट गुणदायक होगई । जे विरंचि जलजाये = ब्रह्माजी के उपाय से वे ऐसे निर्लेप हैं जैसे जल से-उत्पन्न

होकर भी कमल के पत्ते सदा पानी से ऊपर रहते हैं, उन पर बूद भी नहीं ठहरती।

दोहा ३१८-३२५—रही सीय दुहुँ प्रीति समाई = सीता मायके और सुसराल की प्रीति में फँसी रही। वसह = खच्चर। गणक = ज्योतिषी। दिन साधि = मुहूर्त सोधकर। तन तूरी = तिनके के तुल्य। धनद = कुंजर। चचरीक जिमिचपक बागा = भोरा जिस प्रकार चम्पा के बाग में रहता है। भोरा कमल से तो प्रेम करता है, परन्तु चम्पा की गन्ध उसे नहीं भाती। इसलिए वह उसकी ओर जाता भी नहीं। चमन = कै। रमा = लक्ष्मी। चातक हस निभूती = पपीहा और हस की प्रशंसा स्वाति बूद और क्षीर नीर की टेक के कारण है अतएव राम प्रेम भाजन भरत के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। वेतस = घेत वृक्ष। वनज = कमल। नखत = नक्षत्र। धुव = ध्रुव तारा। राका = पूर्णिमा। सुरधीधि = तारों का एकपुञ्ज जो शरद ऋतु में आधी रात के समय दिखाई देता है। इसे देव-ताओं का मार्ग भी कहते हैं। अदोखा = अदोष या निर्दोष।

दोहा ३२६-३२७—भवरस विरत = ससार से उदासीन।

कहावते

अयोध्याकाण्ड में, चौपाइयों के रूप में जो कहावतें आई हैं, वे नीचे दी जाती हैं—

१—'रघुकुल रीति सदा चलि आई ।

प्राण जाहिं पर वचन न जाइ ॥'

२—'नहिं असत्य सम पातक पुआ

गिरि सम होहिं कि कोटिक गुआ'

३—'मनहुँ घाय महुँ माहुर देख'

- ४—‘चोरहि चादिनि रात न भावा’
 ५—‘समउ फिरे रिपु होहि पिरीते’
 ६—‘निज हित अनहित पसु पहिचाना’
 ७—‘को न कुसगत पाय नसाइ’
 ८—‘मनहुँ अन्ध फिर लोचन पाप’
 ९—‘डावर जोग कि हस कुमारी’
 १०—‘जियहि कि लवन पयोधि मराली’
 ११—‘धीरज धरिय त पाइय पारु’
 १२—‘हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ’
 १३—‘नहिं विप बेलि अमिय फल फरही’
 १४—‘दुह हाथ मन मोटक मोरे’
 १५—‘सहसा करि पछिनाहिं विमूढ़ा’
 १६—‘जग बौराइ राज पद पाप’
 १७—‘हमहुँ बहवि अव ठकुरसुहाती
 नाहिं त मौन रहब दिन राती’
 १८—‘गोड नृप होउ हमहिं का हानी’
 चेरि छाँडि अव होय कि रानी’
 १९—‘बवा सो सुनिअ लहिअ जो दीन्हा’
 २०—‘पिय वियोग सम दुख जग नाही’
 २१—‘तहाँ दिवस जहँ भानु प्रकाशु’
 २२—‘तस पूजा चाहिय अस देवता’
 २३—‘केहि न राज मद दीन्ह कलक’
 २४—‘सबते कठिन राज मद भाई’
 २५—‘चवरीक जिमि चपक बागा’
 २६—‘कसे कनक मनि पारिख पाये
 पुरुष परिखिअहि समय सुहाये’

- २७—'ऊँच निवासु नीचि करतूती
देखि न सकहिं पराइ विभूती'
- २८—'दुखित दोष गुन गनहिं न साधू'
- २९—'आरत काह न करइ फुकमू'
- ३०—'अरघ तजहिं घुघ सरगस जाता'
- ३१—'कर्म प्रधान जिस करि राखा
जो जस करे सो तस फल चाखा'
- ३२—'सेवा धरम कठिन जग जाना'
- ३३—'दुचित फतहें परितोष न लहहीं'
- ३४—'फरइ कि कोदव बालि सुसाली'
- ३५—'जग केहि कहहु न होइ कलेसू'
- ३६—'घैर प्रेम नहिं दुरे दुराए'
- ३७—'अपनी समुक्ति साधु सुधि को भा'
- ३८—'ह्यामि धरम ह्यारथहिं विरोधू
घैर अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू'
- ३९—'प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं
अग्नि धूम गिरि सिर तन धरहीं'
- ४०—'आरत कहहिं विचार न काज'
सूक जुआरिहि आपन दाऊ'
- ४१—'रामहिं केवल प्रेम पियारा
जानि लेहु जो जानन हारा'
- ४२—'कवहुँक काजी सीकरन्हि, छीर सिन्धु बिनसाइ'
- ४३—'लानहुँ मारे चढ़त सिर, नीच को धूरि समान'
- ४४—'चलै जौक जिमि यक्रगति, यद्यपि सलिल समान'
- ४५—'भारेसि गाय नाहरू लागी'

पार्वती-मङ्गल

पार्वती-मंगल

गोखामी तुलसीदासजी ने इस पुस्तक में, शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन किया है। इसमें १४८ सोहर तथा १६ हरिगीतिका छन्द हैं। इस ग्रन्थ की रचना 'जय' नामक सवत् में हुई थी जो १६४३ वि० में पड़ता है। इस विषय में तुलसीदासजी ने स्वयं ही लिखा है—

“जय सवत् फागुन सुदि पाँचै शुक-दिनु ।

आखिनि चिरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु ॥”

‘पार्वती-मंगल’ की भाषा अवधी और पूर्वी है। यही कथा गोखामीजी ने ‘राम चरित-मानस’ में भी लिखी है। परन्तु कथानक एक होते हुए भी वर्णन शैली में कुछ भेद हो गया है। ‘मानस’ और ‘मंगल’ दोनों में ही विवाहका वर्णन निराले ढंगसे किया गया है। दोनों की कवित्व छटा अद्भुत और हृदय को आनन्द देने वाली है। पार्वतीजी के विवाह में जहाँ रीति-रिवाजों और रस्मों का वर्णन किया गया है वहाँ गोखामीजी ने पूर्वीय लोक प्रथाओं का आश्रय लिया है। इससे उसमें कितनी ही ऐसी भी रीति आ गई हैं जिनका सम्बन्ध केवल पूर्वीय प्रान्त से है। अस्तु

इस पुस्तक में अद्भुत, भयानक और हास्यरस की नदिया बड़ी सुन्दरता से बहाई गई हैं। यह मंगल विवाहादि अवसरों पर गाने के लिए रचा गया है। वास्तव में यह है भी

इसी लायक । पार्वती मंगल का कथानुसार इस प्रकार है कि हिमालय पर्वत बड़ा गुणी था, मैना नामक उसकी स्त्री थी । इनसे पार्वती नाम की एक कन्या पैदा हुई । जब वह बड़ी हुई तो माता पिता को विवाह की चिन्ता हुई । इतने में नारदजी घूमते फिरते हिमालय के यहाँ जा पहुँचे । मैना ने उनसे पार्वती के लिए वर पूछा । नारदजी बोले कि पार्वती का पति तो कोई पागल होगा चाहिए । यह सुनकर हिमालय और मैना को बड़ा दुःख हुआ । परन्तु नारदजी ने कहा कि जब राने की कोढ़ बात नहीं है, अगर पार्वती, शिवजी की तपस्या करें तो यह दोष दूर हो सकता है । पार्वती ने बड़ी बड़ी तपस्या की परन्तु उनके रूप लावण्य के कारण शिवजी के मन में त्रिकुल वासना पैदा न हुई । यह देख कर देवताओं ने कामदेव को उनके पास भेजा परन्तु शिवजी ने उसे भस्म कर दिया । महादेवजी अपना पहला स्थान छोड़कर दूसरी जगह चले गये परन्तु पार्वती ने तप बन्द न किया, वह और भी कठिन्ता से तपस्या करने लगी । फिर ब्रह्मचारी का वेश धारण कर महादेव पार्वती की परीक्षा के लिए आये और अनेक बातें बनाकर यह जानना चाहा कि वह शिवजी पर कदातक अनुरक्त हैं । अन्त में पार्वती, परीक्षा में पास हुई, ब्रह्मचारी ने अपना असली स्वरूप प्रकट किया और विवाह की स्वीकृति दे दी । सप्तऋषियों के बीच में पड़ने से विवाह पक्का हो गया । बड़ी शान की बारात चढ़ी जिसमें विष्णु और इन्द्र अन्य अनेक देवताओं के साथ सम्मिलित हुए थे । शिवजी के गणों ने बड़ा मजा किया । हिमालय के यहाँ उनकी बड़ी हँसी हुई और लोग उनकी भयङ्करता से डरे भी बहुत । बारात चढ़ते समय शिवजी ने भी अपना बड़ा विकराल रूप बना लिया था परन्तु जब उसके कारण हिमालय नगर निवासीगण उनकी निंदा करने लगे

तो फिर महादेव ने काया पलट कर लिया और मुहूर्त्त मात्र में वह बड़े सुन्दर दिखाई देने लगे । इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई । विधि विहित विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ । धरातियों को बड़े ठाठ की दावत दी गई । फिर पार्वती को विदा कराकर शिवजी कैलास को गये और देवता गण अपने अपने स्थानों को । सारे ससार में इस विवाह की धूम मच गई और सब लोग बधाई देने लगे ।

थोड़े से शब्दों में पार्वती-मंगल की कथा का सारांश यही है । हमारा विश्वास है कि पाठकों को इस पुस्तक के पढ़ने में बड़ा आनन्द आयेगा और वे इसमें कवि की प्रतिभा-शक्तिका अच्छा चमत्कार देखेंगे । पाठकों की सुविधा के विचार से कठिन शब्दों तथा छन्दों के अर्थ भी लिख दिये गये हैं ।

पार्वती-मङ्गल



विनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरहि, गननाथहि ।
 हृदय आनि सियराम, धरे धनु भायहि ॥ १ ॥
 गाधउँ, गौरि—गिरीस—विवाह सुहायन ।
 पापनसावन, पावन, मुनि मन-भावन ॥ २ ॥
 कवितरीति नहिं जानउँ, कवि न कहायउँ ।
 शकर-चरित-सुसरित मनहिं अन्हवायउँ ॥ ३ ॥
 पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहि ।
 पात्रनि करउँ सो गाइ भवेस भवानिहि ॥ ४ ॥
 जय सवत फागुन, सुदि पावै, गुरुविनु ।
 अस्तिनि त्रिचैकें मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु ॥ ५ ॥
 गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि ।
 मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥ ६ ॥
 कहहु सुकृत केहि भाति सराहिय तिन्ह कर ।
 लीन्ह जाइ जगजगनि जनम जिन्ह के घर ॥ ७ ॥
 मंगलखानि भयानि प्रगट जय तैं भइ ।
 तव तैं रिधि सिधि सपति गिरिगृह नित नइ ॥ ८ ॥

नित नव सकल कल्पान मंगल मोदमय मुनि मानहीं ।
 ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं ।
 पितु, मातु, प्रिय परिवार हरपहिं निरखि पालहिं जालहीं ।
 सित पाख बाढति चन्द्रिका जनु चंद्रभूपन भालहीं ॥ ९ ॥

कुवरि सयानि विलोकि मातु पितु सोचहिं ।
 गिरिजा-जोग जुनिहि वर अनुदिन लोचहिं ॥१०॥
 एक समय हिमवान भवन नारद गए ।
 गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए ॥११॥
 उमहिं बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भइ ।
 मुनिमन कीन्ह प्रनाम, वचन आसिप दइ ॥१२॥
 कुवरि लागि पितु काध ठाढ़ि भइ सोदइ ।
 रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ ॥१३॥
 अति सनेह सतिमाय पाँय परि पुनि पुनि ।
 कह मैना मृदु वचन "सुनिय विनती, मुनि ॥१४॥
 तुम त्रिभुवन तिहुँकाल विचार विसारइ ।
 पार्वती-अनुरूप कहिय वर, नारद" ॥१५॥
 मुनि कह "वौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ ।
 गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥१६॥
 भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन ।
 कछु न अगम, सब सुगम, भयो विधि दाहिंन ॥१७॥

दाहिंन भए विधि सुगम सब, सुनि तजहु चित चिंता नई ।
 वर प्रथम विरचि विरचि विरची मगला मगल मई ॥
 बिधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही ।
 हिमवान-ऋष्या जोग वर बाउर विबुध बसित सही ॥१८॥
 मोरेहु मन अस आव मिलिहि वर बाउर" ।
 लखि नारद-नारदी उमहि सुख भा उर ॥१९॥
 सुनि सहमे परि पाई कहत भए दपति-
 "गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख सपति ॥२०॥
 नाथ ! कहिय सोइ जतन मिटहि जेहि दूषनु" ।
 "दोष-दलनु" मुनि कहेउ बाल-बिधुभूपनु ॥२१॥

अगसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन ।
 कोटि कलतर सरिस सभु-अवराधन ॥२२॥
 तुम्हरे आचम अगहि ईस तप साधहि ।
 कहिय उमहि मनु लाइ जाइ अवराधहि ॥२३॥
 कहि उपाउ दगतिहि मुदित मुनिवर गण ।
 अति सनेह पितु मातु उमहि सिखगत भण ॥२४॥
 सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहि ।
 वदति जननि, “जगदीस जुगति जिनि सिरजहि” ॥२५॥
 जननि-जनक-उपदेस महेसहि सेवहि ।
 अति आदर अनुराग भगति मन भेगहि ॥२६॥

भेगहि भगति मन, वचन करम अनन्य गति हरचरन क्री ।
 गोरव सनेहु सँकोच सेवा जाइ केहि विधि धरन की ॥
 गुनरूप जोवनसाँज सुन्दरि निरखि छोभ न हर द्विष ।
 ते धीर अछुत विकारहेतु जे रहन मनसिज बस किए ॥२७॥

देख देखि भन समउ मनोज्ञ बुलायउ ।
 कहेउ करिय सुरकाजु, साजु सजि घायउ ॥२८॥
 वामदेव सन काम वाम होइ बरतेउ ।
 जग जय मद निठरेसि हर, पायेसि फर तेउ ॥२९॥
 रति पतिहीन मलीन बिलोकि बिसुरति ।
 नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति ॥ ३० ॥
 आसुतोष परितोष कीन्ह बर दीन्हेउ ।
 सिय उदास तजि वास अनत गम कीन्हेउ ॥ ३१ ॥
 उमा नेहवस विकल देह सुधि बुधि गह ।
 कलपवेलि वन बढत विषम हिम जनु हइ ॥ ३२ ॥
 समाचार सब सपिन जाइ घर घर कहे ।
 सुनत मातु पित परिजन दारुन दुख दहे ॥ ३३ ॥

जाइ देखि अति प्रेम उमहिं उर लावहिं ।

विलपहिं धाम विधातहिं दोष लगावहि ॥ ३४ ॥

जो न होहिं मगलमग सुर विधि बाधक ।

तौ अभिमत फल पावहिं कर स्रमु साधक ॥ ३५ ॥

साधक कलेश सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कौ ।

को सुनइ काहि सोहाइ घर, चित चहत चद्रललाम कौ ।

समुझाइ सधहिं दूढाइ मन, पितु मातु आयसु पाइ कै ।

लागी करन पुनि अगमु तपु, तुलसी कहै किमि गाइ कै ॥ ३६ ॥

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजा पन ।

जेहि अनुरागु लागु, चित, सोइ हितु आपन ॥ ३७ ॥

तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु ।

मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायउ मनु ॥ ३८ ॥

सदुखहिं वसन विभूषन परसत जो बपु ।

तेहि सरीर हर—हेतु अरमेउ बड तपु ॥ ३९ ॥

पूजहिं सिवहिं, समय तिहुं करहि निमज्जन ।

देखि प्रेम व्रतु नेमु सराहहिं सज्जन ॥ ४० ॥

नींद न भूख पिपास, सरिख निसि बासह ।

नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हर ॥ ४१ ॥

फद मूल फल असन, फवहु जल पयनहिं ।

सूखे बेल के पात खात दिन गयनहिं ॥ ४२ ॥

नाम अपरना भयो परन जब परिहरे ।

नवल धवल फल कीरनि सकल भुवन भरे ॥ ४३ ॥

देखि सराहहिं गिरिजहि मुनिवरु मुनिबहु ।

अस तप सुना न दीख कवहुं काइ कहुं ॥ ४४ ॥

काहू न देख्यो कहहिं यह तपु जीगु फल फल चारि का ।

नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि शुद्ध-कुमारिका ॥

बटुवेप पेपन पेम पन व्रत नेम ससिसेखर गण ।
 मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, वचन मृदु बोलेत भण ॥ ४५ ॥
 देपि दसा करुनाकर हर दुख पायउ ।
 मोर कठोर सुभाय हृदय लसि आगुउ ॥ ४६ ॥
 बस प्रससि, मातु पितु कहि सब लायक ।
 अमिश्र वचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक ॥ ४७ ॥
 'देवि' करो कछु प्रिय सो बिलगु न मानव ।
 कहो सनेह सुभाय साँच जिय जानव ॥ ४८ ॥
 जनमि उगन जस प्रगटिहु मातु पिता कर ।
 तीयरतन तुम उपजिहु भग्न रतनागर ॥ ४९ ॥
 अगम न रह्यु जग तुम कहँ, मोहि अस सूझइ ।
 बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ॥ ५० ॥
 जो घर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय ।
 पारस जो घर मिलै तौ मेरु कि जाइय ॥ ५१ ॥
 मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि ।
 सुधा कि रोगिहि चाहि, रतन कि राजहि ॥ ५२ ॥
 लखि न परेउ तपकारन बटु हिय हारेउ ।
 सुनि प्रिय वचन सखीमुख गौरि निहारेउ ॥ ५३ ॥
 गौरि निहारेउ सखीमुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा ।
 "तप करहि हरहितु" सुनि बिहंसि बटु कहत "मुखलाई महा" ।
 जेहि दीन्ह अस उपदेश बरेहु कलेस करि घर बाजरो ।
 दित लागि कहा सुभाय सो बड विषम बैरी रावरो ॥ ५४ ॥
 कहहु काह सुनि रीझिहु बरु अमुलीनहि ।
 अगुन अमान अजाति मानु-पितु हीनहि ॥ ५५ ॥
 भीष माँगि भव खाहि, चिता नित सोयहि ।
 नाचहि नगन पिसाच, पिसाचिनि जोयहि ॥ ५६ ॥

भाग घट्टर अहार, छार लपटावहि ।
 जोगी, जटिल, सरोप, भोग नहि भावहि ॥ ५७ ॥
 सुमुखि सुलोचनि ' हर मुखपच, तिलोचन ।
 वामदेव फुर नाम, काम-भद-भोचन ॥ ५८ ॥
 एकउ हरहि न वर गुन, कोटिक दूषन ।
 नर-रूपाल गजखाल, व्याल, विष भूपन ॥ ५९ ॥

कहँ राउर गुन सील सरूप सुदावन ।
 कहाँ अमगल बेपु विसेपु भयावन ॥ ६० ॥
 जो सोचहि ससिक्लहि सो सोचहि रौरेहि ।
 फहा मोर मन धरि न धरिय बर धौरेहि ॥ ६१ ॥
 हिये हेरि दठ तजहु, दठै दुख पैहहु ।
 व्याह-समय सिप मोरि समुक्ति पछितैहहु ॥ ६२ ॥

पछिताव भूत पिताच प्रेत जनेत पेहँ साजि कै ।
 जमधार सरिस निहारि सब तर नारि चलिहहि भाजि कै ॥
 गजअजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हंसि मुख मोरि कै ।
 फोउ प्रगट फोउ हिय कहिहि मिलवत अमिअ माहुर घोरिके ॥ ६३ ॥

तुमहि सहित असवार बसह जय होइहहि ।
 निरखि नगर नरनारि दिहँसि मुख गोइहहि ॥ ६४ ॥

बटु करि फोटि युतकं जथा रुचि बोलइ ।
 अचल सुता मन अचल ब्यारि कि डोलइ ? ॥ ६५ ॥
 साँच सोह साँचि रुचि जो दूठि फेरइ ।
 सावनसरित सिंधुमुख सूप सों घेरइ ? ॥ ६६ ॥
 मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ ।
 सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥ ६७ ॥

परनकटुक बटु बचन विसिप सम हिय हए ।
 अरुन नयन चढ़ि भृशुटि अवर फरकन भए ॥ ६८ ॥

बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तन थरथर ।

“आलि ! विदा करु बटुहि वेगि, बड बरवर ॥ ६६ ॥

कहुँ तिय होहि सयानि सुनहिं सिख राउरि ? ।

धौरेयि के अनुराग भइउँ घटि बाउरि ॥ ७० ॥

दोसनिधान, इसानु सत्य सवु भापेउ ।

मेदि को सकइ सो आँकु जो विधि लिखि राखेउ ॥ ७१ ॥

को करि बाहु बिबाहु बिपाहु बढायइ ? ।

मीठ फाह कवि कहहि जाहि जोइ भावइ ॥ ७२ ॥

भइ बडि पार आलि कहुँ काज सिधारहि ।

धकि जनि उठहि बहोरि, कुजुगुति सँवारहि ॥ ७३ ॥

जनि कहहि फलु विपरीत जानन प्रीति रीति न वातकी ।

सिव साधु निवकु भद अति जो सुनै सोउ बड पातकी” ॥

सुनि वचन सोधि सनेहु तुलसी साँच अविचल पावनो ।

भये प्रकट फरनासिधु शकर, भाल चद्र सुहावनो ॥ ७४ ॥

सुन्दर गौर सरीर भूति भलि सोहइ ।

लोचन भाल बिसाल बदन मनु मोहइ ॥ ७५ ॥

सेलकुमारि निहारि मगोहर मूरति ।

सजल नयन हिय हरपु पुलक तनु पूरति ॥ ७६ ॥

पुन पुन करै प्रनाम, न आघत कहुँ कहि ।

‘देखौ सपन कि साँतुख ससिसेखर, सहि” ॥ ७७ ॥

जेसे जनमदरिद्र महामनि पावइ ।

ऐसत प्रगट प्रभाव प्रतीति न आघइ ॥ ७८ ॥

सफन मनोरथ भयउ गोरि सोहइ सुठि ।

घर ते खेलत मनहुँ अर्घहि आइँ उठि ॥ ७९ ॥

देखि रूप अनुराग महेस भए वस ।

कहत वचन जनु सानि सनेह-सुधा-रस ॥ ८० ॥

“हमहिं आजु लगि कनउड काहु न कीन्हैउ ।
 पार्वती तप प्रेम मोल मोहिं लीन्हैउ ॥ ८१ ॥
 अब जो कहहु सो करउं बिलस न यहि घरि ।
 सुनि महेस मृदु वचन पुलकि पाँयन परि ॥ ८२ ॥

परि पाँय सखिमुख कहि जनायो आप बाप अधीनता ।
 परितोपि गिरिजहि चले वरनत प्रीति नीति प्रीतिनता ॥
 हर हृदय धरि घर गौरि गवनी, कीन्ह विधि मनभावनी ।
 आनन्द प्रेम समाज मंगलगान बाजु बधावनो ॥ ८३ ॥
 सिव सुमिरे मुनि सात आइ सिर नाइन्हि ।
 कीन्ह सभु सनमानु जनम फल पाइन्हि ॥ ८४ ॥
 “सुमिरहिं सकुत तुम्हहिं जन तेइ सुकृतीवर ।
 नाथ जिन्हहिं सुधि करिअतिन्हहिं सम, तेइ हर” ॥ ८५ ॥
 सुनि मुनिबिनय महेस परम सुख पायउ ।
 कथाप्रसंग मुनीसन्ह सकल सुनायउ ॥ ८६ ॥
 “जाहु हिमाचल गेह प्रसंग चलायहु ।
 जो मन मान तुम्हार तो लगन लिखायहु ॥ ८७ ॥
 अब धती मिलि भैरहिं वात चलाइहिं ।
 नारि कुसल इहि काजु काजु बनि आइहिं” ॥ ८८ ॥
 “दुलहिनि उमा, ईस वर साधक ए मुनि ।
 यनिहिअसियहु काज” गगन भइ अस धुनि ॥ ८९ ॥
 भयउ अकनि आनन्द महेश मुनीसन्ह ।
 देहिं सुलोचन सगुन कलस लिए सीसन्ह ॥ ९० ॥
 सिव सौं कहे दिन ठाउँ बहोरि मिलनु जहँ ।
 चले मुदित मुनिराज गए गिरिवर पहुँ ॥ ९१ ॥
 गिरिगेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी ।
 घरबात घरनि समेत कन्या आनि सन आगे धरी ॥

सुख पाइ बात चलाइ सुदिनु सोघाइ गिरिहि सिखाइ कै ।
 ऋषि सात प्रातहि चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै ॥ ६२ ॥

विप्रवृद्ध सन्मानि पूजि कुलगुरु सुर ।
 परेउ निसानहिं घाउ, चाउ चहुँ दिसि पुर ॥ ६३ ॥
 गिरि, वन, सरित सिंध, सर सुनइ जो पायउ ।
 सब कहँ गिरिवर-नायक नेवति पठायउ ॥ ६४ ॥
 धरि धरि सुन्दर घेष चले हरपित हिण ।
 कँचन चीर उपहार द्वार मनिगत लिप ॥ ६५ ॥
 कहेउ हरपि हिमवान बितान बनावन ।
 हरपित लगि सुगतिनि मगल गावन ॥ ६६ ॥
 तोरन कलस चँवर धुन विविध बनाइन्हि ।
 हाट पटोरन्हि छाय, सफल तरु लाइन्हि ॥ ६७ ॥
 गोरी नैहर केहि विधि कहहुँ बखानिय ।
 जनु ऋतुराज मनोज्ञ-राज रजवानिय ॥ ६८ ॥

जनु राजधानी मदन की विरची चतुर विधि और ही ।
 रचना विचित्र बिलोकि लोचन बियक ठौरहि ठौर ही ॥
 यहि भाति व्याहु समाजु सजि गिरिराजु मगु जीवन लगे ।
 तुलसी लगन लै दीन्ह मुनिन्ह महेस आनंद-रग-मगे ॥ ६९ ॥
 येनि बुलाइ विरचि बँचाइ लगन तब ।
 कहेन्हि 'वियाहन चलहु बुलाइ अमर सब' ॥ १०० ॥
 विधि पठए जहँ तहँ सब सिवगन घावन ।
 सुनि हरपहि सुर कहहिं निसान बजावन ॥ १०१ ॥
 रचहिं विमान बनाइ सगुन पावहिं भले ।
 निज निज साजु समाजु साजिसुरगन चले ॥ १०२ ॥
 मुदित सकल सिवदूत भूतगन गाजहिं ।
 सूकर, महिष, खान, खर वाहन साजहिं ॥ १०३ ॥

नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ावहि ॥
 अज, उलूक, वृकनाद गीत गन गावहि ॥ १०४ ॥
 रमानाथ, सुरनाथ, साथ सव सुरगन ।
 आये जहँ विधि समु देखि हरपे मन ॥ १०५ ॥
 मिले हरिहि हर हरपि सुभाषि सुरेसहि ।
 सुर निहारि सनमानेउ, मोदु महेसहि ॥ १०६ ॥
 यहु विधि बाहन जान विमान बिराजहि ।
 चली बरात निसानु गहागह बाजहि ॥ १०७ ॥

बाजहिं निसाने, सुगान नम, चढि बसह विधुभूपन चले ।
 बरपहिं सुमन जय जय करहिं सुर, सगुन सुम मगल भले ॥
 तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पमुपति संग लसे ।
 गजछाल, व्याल, कपालमाल विलोकि बर सुर हरि हसे ॥ १०८ ॥

विधुध बोलि हरिबहेउ निरुद पुर आयउ ।
 आपन आपन भाज सबहिं बिलगायउ ॥ १०९ ॥
 प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहि ।
 विविध भांति मुख, बाहन घेप बिराजहि ॥ ११० ॥
 कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहि ।
 नरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहि ॥ १११ ॥
 बर अनुहरति बरात बनी हरि हँसि कहा ।
 सुनिहिय हँसत महेस, फेलि कौतुक महा ॥ ११२ ॥
 बड विनोद मग मोद न कछु कहि आवत ।
 जाइ नगर नियरानि बरात बजावत ॥ ११३ ॥
 पुर खरभंग, उर हरपेउ अचलु अखडल ।
 परब उदधि उमगेउ जनु लखि विधुमडल ॥ ११४ ॥
 प्रमुदित, गो अगवान, विलोकि बरातहि ।
 भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि ॥ ११५ ॥

चले भाजि गज घाजि फिरहि नहि फेरत ।
 बालक भभरि भुलान फिरहि घर हेरत ॥११६॥
 दीन्ह जाइ जनवास सुपास किए सब ।
 घर घर बाहर बात कहन लागे तब ॥११७॥
 "प्रेत बेताल घराती, भूत भयानक ।
 घरद चढा घर बाउर सबइ सुवानक ॥११८॥
 कुसल करहि करतार कहहि हम साँचिय ।
 देख्य कोटि बियाह जियत जो बाँचिय" ॥११९॥
 समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैनिहि ।
 नारद के उपदेश कउन घर गे नहि ? ॥१२०॥

घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमाग्यी ।
 तैसी बरेली कीन्हि पुनि मुनिसात स्वार्थ म्माग्यी ॥
 उर जाइ उमहि अनेक विधि, जलपति जननि दुख म्माग्यी ।
 हिमवान कहेउ इस्तान महिमा अगम निगम न म्माग्यी ॥१२१॥
 सुनि मैना भइ सुमन, सुखी देखत बर्षी ।
 जहँ तहँ चरचा चलत शब्द कौनहि नहि ॥१२२॥
 श्रीपति सुरपति, विदुष दास मुद मुनि मुनि ।
 हँसहि कमलकर जोगि, मंनि मुनि मुनि मुनि ॥१२३॥
 लखि लौकिक गति सुनु जहि बर मोक्ष ।
 भए सुन्दर सब ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ॥१२४॥
 नील निगोल उत्तम, जहि मानमृपन ।
 रोम रोम पर जहि ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ॥१२५॥
 गन भए मान-देव मदन-मनमोहन ।
 सुनत चले हिय जहि मानमृपन ओहन ॥१२६॥
 समु सट गह्वर, गह्वरगान सुरन्दर ।
 अनु ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म ॥१२७॥

गिरिवर पठए घोलि लगन घेरा भई ।
 मगज अरघ पाँवडे देत चले लई ॥१२८॥
 दोहि सुमगल सगुन, सुमन घरपहि सुर ।
 गहगहे गान निसान मोद मगल पुर ॥१२९॥
 पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक ।
 इत विधि उत हिमवान सरिस सबलायक ॥१३०॥
 मनि चामीकर चारु थार सजि आरति ।
 रति सिद्दाहि लखि रुप, गान सुनि भारति ॥१३१॥
 भरी भाग अनुराग पुलकतनु मुदमन ।
 मदनमत्त गजगधनि चली वर परिछन ॥१३२॥
 वर बिलोकि विधुगोर सु अग उजागर ।
 करति आरती सासु मगन सुखसागर ॥१३३॥

सुखसिंधु मगन उतारि आरति करि निछावरि निरखि कै ।
 मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चली मडप हरपि कै ॥
 हिमवान दीन्हैउ उचित आसन सकल सुर सनमानि कै ।
 तेहि समय साज समाज सग राखे सुमडपु आनि कै ॥१३४॥

अरघ देइ मनिआसन वर बैठायउ ।
 पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमी अँचवायउ ॥१३५॥
 सपत ऋषिन्ह विधि कहेउ, बिलब न लाइय ।
 लगन घेर भई वेगि विधान बनाइय ॥१३६॥
 थापि अनल हरवरहि बसन पहिरायउ ।
 आनहु दुलहिनि वेगि समउ अब आयउ ॥१३७॥
 सखी सुवासिनि सग गौरि सुठि सोदति ।
 प्रगट रूपमय भूरति जनु जग मोदति ॥१३८॥
 भूपन बसन समय सम सोभा सो भली ।
 सुखमा बेलि नवल जनु रूपफलनि फली ॥१३९॥

कहहु कहि पटतरिय गौरि गुनरूपहिं ।
 सिंधु कहिय केहि भाति सरिस सर कूपहिं ॥१४०॥
 आवत उमहिं विलोकि सीस सुर नावहिं ।
 भये कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं ॥१४१॥
 विप्र वेद धुनि करहिं सुमासिप कहि कहि ।
 गान निसान सुमन भरि अरसर लहि लहि ॥१४२॥
 घर दुलहिनिहि विलोकि सकल मन रहसहिं ।
 साजोहार समय सब सुर मुनि बिहंसहिं ॥१४३॥
 लोरु-वेद विधि कीन्ह लीन्ह जल गुल कर ।
 कन्यादान सकलप कीन्ह धरसीधर ॥१४४॥
 पूजे कुलगुरु देव, कलसु सिल सुम धरी ।
 लावा होम विधान बहुरि भावरि परी ॥१४५॥
 बन्धन बदि, ग्रन्थिविधि करि, धुव देखेउ ।
 भा प्रियाह सब कहेउ जनम फल पेखेउ ॥१४६॥
 पेखेउ जनम फल भा बियाह, उछाह उमगहिं दस दिसा ।
 नीसान गान प्रसून भरि तुलसी सुहायनि सो निसा ॥
 दाहज बसन मनि धेनु धनु हय गय सुसेवक सेवकी ।
 दीन्हौं मुदित गिरिराज जे गिरिजहिं पियारी पेव की ॥१४७॥
 बहुरि बराती मुदित चले जनवासहि ।
 दूलह दुलहिनि गे तव हास अगासहि ॥१४८॥
 रोकि डार मैना तव धौतुक कीन्हेउ ।
 फरि लहकोरि गौरि हर बड सुख दीन्हेउ ॥१४९॥
 जुआ खेलावत गारि देहि गिरिनारिहि ।
 अपनी ओर निहारि प्रमोद पुरारिहि ॥१५०॥
 सखी सुवासिनि, सासु पाउ सुख सब विधि ।
 जनगासहि घर चलेउ सकल मगतनिधि ॥१५१॥
 भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर ।
 बैठाये गिरिराज - घरम घरनी घुर ॥१५२॥

परसन लगे सुवार, बिबुध जन सेवहिं ।
 देहिं गारि वर नारि मोद मन भेगहिं ॥१५३॥
 करहिं सुमगलगान सुघर सहनादन्ह ।
 जेई चले हरि दुहिन सहित सुर भाइन्ह ॥१५४॥
 भूधर भोर विदा करि साज सजायउ ।
 खले देव सजि जान निसान बजायउ ॥१५५॥
 सनमाने सुर सरल दीन्ह पहिरावनि ।
 कीन्हि बडाइ विनय सनेह-सुहावनि ॥१५६॥
 गहि सिवपद कह सासु चिनय मृदु मानबि ।
 गोरि सजीउनि मूरि मोरि जिय जानबि ॥१५७॥
 भेंटि विदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहि ।
 हुँकरि हुँकरि सु लवाद धेनु जनु धावहि ॥१५८॥
 उमा मातु-मुख निरति नयन जल मोचहि ।
 'नारि जनम जग जाय' सखी कहि सोचहि ॥१५९॥
 भेंटि उमहिं गिरिराज सहित सुत परिजन ।
 बहु समुझाइ बुझाइ फिरे बिलखित मन ॥१६०॥
 सकर गौरि समेत गण कैलासहि ।
 नाइ नाइ सिर देव चले निज वासहि ॥१६१॥
 उमा महेस बियाह उछाह भुवन भरे ।
 सबके सकल मनोरथ विधि पूरन करे ॥१६२॥
 प्रेमपाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि ।
 मगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि ॥१६३॥
 मृगनयनि बिधु-बदनी रचेउ मनि मजु मगल हार सो ।
 उर धरहु जुयती जन बिलोकि तिलोक सोमा-सार सो ॥
 कल्याण काज उछाह व्याह सनेह सहित जो गार हैं ।
 तुलसी उमाशङ्कर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइ हैं ॥१६४॥

पार्वती-मंगल

(टिप्पणियाँ)

१-शब्दार्थ—विनइ = वन्दना करके । गुरुहि = गुरु को । गुनि गनिहि = गुणि गण को, विद्वन्मण्डली को । गिरहि = गिरा अर्थात् सरस्वती को, कहीं कहीं गिरिहि भी पाठ है जिसका अर्थ है हिमालय को । गन (ण) नाथहि = गणेश को । हृदय आनि = हृदय में लाकर, भजन करके । भाथहि = तरकस को ।

अर्थ—गुरु, गुणियों के समुदाय, सरस्वती, गणेश की वन्दना करके सीता और धनुष-तरकस धारी राम को हृदय में लाकर ।

२-शब्दार्थ—गावउ = गाता हूँ । गौरि (री) = पार्वती । गिरीस (श) = गिरि + ईश = महादेव । नसावन = नाश करने वाला । पावन = पवित्र । भावन = भाने वाला, अच्छा लगाने वाला ।

अर्थ—पाप को नष्ट करने वाले, पवित्र, मुनियों के मन को अच्छा लगाने वाले, सुहावने शिव-पार्वती के विवाह को गाता हूँ ।

३-शब्दार्थ—कवित रीति = कविता करने का ढंग । सुसरित = अच्छी नदी, गंगा । अन्हवायउ = स्नान कराता ।

अर्थ—कविता करने की रीति में नहीं जानता और न कवि ही कहलाता हूँ । मैं तो महादेव की चरित्र-गंगा में अपने मन को स्नान कराता हूँ ।

४-शब्दार्थ—पर = पराया । अपवाद = निन्दा । विवाद = बहस । विदूषित = अपवित्र, कलकित । वानिहि = वाणी को । भगेश = भव + ईश ससार के स्वामी अर्थात् महादेव ।

अर्थ—दुम्बरों की निन्दा तथा व्यर्थ बकवाद से जो मेरी वाणी अपवित्र हो गई है उसे महादेव पार्वती का कीर्तन करके पवित्र करता हूँ ।

५-शब्दार्थ—जय सवत्=एक सवत् का नाम है जो १६४३ वि० के लगभग माना जाता है। गुरु दिन=वृहस्पतिवार। अश्विनि=अश्विनी नक्षत्र। मंगल=पार्वती मंगल। छिनु छिनु=क्षण-क्षण, पल पल।

अर्थ—जय नामक सवत् की फाल्गुन शुक्ला पचमी वृहस्पतिवार को अश्विनी नक्षत्र में मँने इस ग्रन्थ पावती-मंगल की रचना की। इसके सुनने से सबको क्षण क्षण में सुख होगा।

६-शब्दार्थ—गुन (ण) निधान=गुणों के कोष, महागुणी। हिमवान=हिमालय पर्वत। धरनिधर=धरणीधर, पहाड़। धुरधनि=धुरन्धर, श्रेष्ठ, कोई कोई ध्रुव धन्य अर्थात् निश्चय रूप से धन्य भी अर्थ करते हैं। मैना=पार्वती की माता का नाम। निभुवन=तीन लोक अर्थात् (१) आकाश, (२) पाताल और (३) पृथ्वी। धरनि=पत्नी। तियमनि (णि)=स्त्रियों में श्रेष्ठ, सती-शिरोमणि।

अर्थ—पर्वतों में श्रेष्ठ, गुणों का भण्डार हिमालय नामक पहाड़ है, इसके घर में मैना नामक सती शिरोमणि स्त्री है जो तीनों भवनों में विख्यात है।

७-शब्दार्थ—सुकृत=पुण्य। सराहिय=प्रशंसा कीजिये। केदि=किस। तिन्दकर=उनका। जगजननि=जगज्जननी, जगदम्बा, पार्वती।

अर्थ—कहिये उनके पुण्य की किस प्रकार प्रशंसा करें जिनके घर जगन्माता पावती ने जन्म लिया।

८-शब्दार्थ—मंगल-स्नानि=महान मंगलमयी, परम सौभाग्य शीला। भवानि (नी)=पावती। रिधि=ऋद्धि। सिधि=सिद्धि अर्थात् अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य,

ईशत्व और वशित्व । सम्पत्ति = धन-शैलत । गिरिगृह = हिमालय के घर । नद = नयी ।

अर्थ—जब से मंगलमूर्ति पार्वती प्रकट हुई तब ही से हिमालय के घर में नित नई ऋद्धि-सिद्धियों और सम्पत्तियों की प्राप्ति हो रही है ।

६-शब्दार्थ—नव = नया । मोद = प्रसन्नता । नाग = साप, पहाड़, नागलोक निवासी । अनुराग = प्रेम । भाग = भाग्य । निरखि = देखकर । लालहीं = लाड करते हैं । सित पात्र = शुक्ल पत्र । चन्द्रिका = चांदनी, चन्द्रकला । चन्द्रभूषण = महादेव, क्योंकि उनके मस्तक में द्वितीया के चन्द्रमा का निवास बताया जाता है ।

अर्थ—नित नये सब प्रकार के कल्याणकारी मंगल होते हैं, मुनि लोग प्रसन्नता प्राप्त करते हैं । सुर, नर, नाग और ब्रह्मादि बड़े प्रेम से उनके भाग्य की सराहना करते हैं । पिता-माता और प्यारे कुटुम्बी जन पार्वती को देखकर प्रसन्न होते और उन पर लाड प्यार करते हैं । ऐसा मालूम होता है मानो शुक्ल पत्र में महादेव के ललाट की चन्द्रकला बढ़ रही हो अर्थात् पार्वतीजी उसी प्रकार बढ़ रही हैं जिस प्रकार द्वितीया का चन्द्रमा क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता है ।

१०-शब्दार्थ—कुँवरि = कुमारी पुत्री, पार्वती से मतलब है । गिरिजा = पर्वत से पैदा हुई-पार्वती । जुरिहि = मिले । अनुदिन = नित्यप्रति । लोचहि = लालसा रखते हैं ।

अर्थ—नियानी पुत्री को देख कर माता पिता को उसके विवाह की चिन्ता हुई और वह अभिलाषा करने लगे कि पार्वती के योग्य ही कोई वर मिले ।

११-शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न होकर । पूजित भये = आदर सत्कार किया ।

अर्थ—एक दिन पर्वतराज हिमालय के यहा नारदजी गये । हिमालय और मैना ने बड़ी प्रसन्नता से उनका स्वागत सत्कार किया ।

१२-शब्दार्थ—उमहि=पार्वती को । अयि पगन=ऋषि के चरणों में । मेलत भइ=डाल दिया । आसिष=आशीर्वाद ।

अर्थ—मैना ने पार्वती को बुला कर, उन्हें नारदजी के चरणों में डाल दिया । मुनिजी ने मन में उन्हें प्रणाम किया और वचन से आशीर्वाद दिया ।

१३-शब्दार्थ—काध=कथा । जान=जानता है । जोइह=देखा है ।

अर्थ—कुमारी पार्वती पिता के कन्धे से लगी खड़ी हुई बड़ी सुहावनी लगती हैं, उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिमने उन्हें देखा है वही रूप-सोन्दर्य को जानता है ।

१४-शब्दार्थ—सतिभाय=सद्भाव से । पुनि पुनि=बार-बार ।

अर्थ—अत्यन्त स्नेह और सद्भाव से, बार-बार मुनि के पाँवों में पड़ कर, मैना ने बड़े विनम्र शब्दों में कहा-हे नारदजी ! अब आप मेरी विनती सुनें ।

१५-शब्दार्थ—तिहु काल=तीनों कालों में अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान । विचार विसा (शा) रद=शानी, विचारशील, बुद्धिमान ।

अर्थ—नारदजी ! आप तीनों भवनों और तीनों कालों में परम शानी हैं, आप कृपया पार्वती के योग्य कोई वर बताइये ।

१६-शब्दार्थ—चौदह भुवन=चौदह लोक अर्थात् भूलोक, भुवलोक, स्वर्लोक, महालोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक,

अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल । सरहना = सराहना, प्रशंसा । राउरि = आपकी ।

अर्थ—नारदजी ने कहा—चौदह भुवनों में मैं जहाँ-जहाँ गया हूँ वहाँ वहाँ ही हे हिमाचल ! मैंने तुम्हारी प्रशंसा सुनी है ।

१७-शब्दार्थ—भूरि भाग = बड़ा भाग्यशाली + सरिस = समान । अगम (अगम्य) = पहुँच से बाहर, दुर्लभ । भयो विधि दाहिन = विधाता अनुकूल हो गया ।

अर्थ—पर्वतराज ! तुम बड़े बड़भागी हो, तुम्हारे समान कहीं कोई नहीं है । तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है, सब सुलभ है । विधाता तुम्हारे अनुकूल है ।

१८-शब्दार्थ—विरवा = पोधा । विरचि = ब्रह्मा । विरच्यौ = रचा, बनाया । मगला = पार्वती । मगलमयी = मगल से पूर्ण । विधि लोक = ब्रह्म लोक । चतुरानन = ब्रह्मा । बाउर = बातुल, पागल । बिबुध = देवता ।

अर्थ—विधाता के अनुकूल होने से तुम्हारे लिए सब सुगम है, यह सुनकर तुम नई चिन्ता (पार्वती के विवाह की) त्याग दो । ब्रह्मा ने पहले वर की रचना करके तब कल्याणमयी पार्वती को पैदा किया है ।

नोट—“वर प्रथम विरवा विरचि विरची मगला मगल मइ” भी पाठ है । इसका अर्थ है, ब्रह्मा ने पहले वर रूपी वृत्त लगा कर तब इस कल्याणमयी कन्या को पैदा किया है ।

देव लोक में आपकी चर्चा करते हुए बुद्धिमान ब्रह्मा ने कहा था कि हिमालय की कन्या के योग्य बावला वर है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि देवता भी उसकी वन्दना करते हैं ।

१६-शब्दार्थ—नागदी = नारदपुत्र, नारद की लीलाओं से अभिप्राय है, नारदजी घुमा फिरा कर उलझन में डालने वाली अस्पष्ट बातें कहने के लिए प्रसिद्ध हैं। भा = हुआ।

अर्थ—मेरे मन में यही आता है कि वर वावला ही मिलेगा, इस समय नारद का नारदीपन देकर पावती के हृदय में बड़ा आनन्द हुआ।

पावती के हार्दिक आनन्द का कारण यह था कि वह जैसा वर चाहती हैं वैसा ही वर नारद जी बता रहे हैं।

२०-शब्दार्थ—सहमे = सहम गये, डर गये। दम्पति = जोड़ा, पति पत्नी। लागि = लिए।

अर्थ—हिमालय और मेना नारदजी की बात सुनकर डर गये और उनके पाँवों में पड़कर कहने लगे कि हमारी जिव्दगी और सुख सम्पत्ति पावती के ही कारण है।

नारदजी की बात सुन कर पावती के माता पिता का डरना स्वाभाविक था क्योंकि अपनी पुत्री के लिए कोई वावला वर नहीं चाहता।

२१-शब्दार्थ—जतन(यत्न) = कोशिश। बाल विधु भूपतु = महादेव, बाल विधु अर्थात् द्वितीया के चन्द्रमा को मस्तक में धारण करने वाले।

अर्थ—नारदजी 'ऐसी कोई विधि बताइये जिससे यह दोष दूर हो (अर्थात् पार्वती को पागल पति न मिले)। इसके उत्तर में मुनिजी ने कहा—इस दोष को दूर करने वाले महादेवजी हैं।

२२-शब्दार्थ—अरसि = अवश्य। सुसाधन = अच्छी तरकीब। अयराधन = आराधना, पूजा।

अर्थ—अवश्य सिद्धि होगी, अच्छा अनुष्ठान साहस को सफल करता है । शिवजी का पूजन करोड़ों कल्पवृक्षों के समान है ।

जिस प्रकार कल्पवृक्ष मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है उसी प्रकार शम्भु भगवान् भी सब भक्तों को आशा पूरी करते हैं ।

२३-शब्दार्थ—आश्रम = आश्रम, कैलास पर । मनुलाइ = तथियत लगा कर । ईश = स्वामी अवराधहि = आराधना या सेवा करें ।

अर्थ—तुम्हारे आश्रम में (अर्थात् कैलास पर्वत पर) अब भी शिवजी तपस्या कर रहे हैं । पार्वती से कह दीजिए कि वह वहाँ जाकर तथा मन लगा कर उनकी तपस्या करें ।

२४-शब्दार्थ—सिखवत = शिक्षा देते हैं । भण = हुए ।

अर्थ—हिमवान् श्रीर मैना को 'दोष दहन' की विधि बता कर बड़ी प्रसन्नता पूर्वक मुनिजी विदा हुए और फिर माता-पिता अत्यन्त प्रेम से पार्वती को (शिव पूजा) का उपदेश देने लगे ।

२५-शब्दार्थ—सजि समाज = सामग्री एकत्र करके । गिरिराज = पहाड़ों का राजा हिमालय । यदति = कहती है । जुयति = युवती (जवान् औरत) । जिनि = निषेधात्मक, नकार । सिरजहि = रचता है ।

अर्थ—हिमाचल ने (पूजा को) सब सामग्री एकत्र करके पार्वती को दे दी । मैना कहने लगी—हे परमात्मा युवतियों (स्त्रियों) को कभी जन्म न दे ।

यह बात मैना ने दुखी होकर इसलिए कही कि प्रथम तो कम्याओं के 'सियाने' होने पर उनके विवाह की चिन्ता करनी

पड़ती है, फिर वे अपने मा-बाप को छोड़ कर दूसरों के घर चली जाती हैं।

२६-शब्दार्थ—भगति = भक्ति। भेदहि = भिन्नोत्ती है।

अर्थ—माता पिता के उपदेश से पार्वती शिवजी की सेवा करती हैं और बड़े आदर तथा अनुराग से उनकी भक्ति में अपना मन लगाये रहती हैं।

२७-शब्दार्थ—अनन्य गति = जिस की दूसरी गति न हो, एक ही पर आश्रय रखने वाला। हर = महादेव। जोवन सर्वि = यौवन की सीमा अर्थात् भरपूर जवानी। छोम (क्षोम) = घबराहट, अस्थिरता। अलुह = रहते हुए, भीजूदगी में। मन सिज = मनोज अर्थात् मन से उत्पन्न होने वाला कामदेव।

अर्थ—पार्वतीजी शिव-भक्ति में अपना मन लीन रखती हैं, वचन और कर्म से शिवजी के चरणों के सिवा वह और किसी की सेवा नहीं करती। गौरव, स्नेह और सकोच से भरी हुई सेवा का किस प्रकार वर्णन किया जाय। गुण रूप और पूर्ण यौवन सम्पन्न सुन्दरी (पार्वती) को देख कर महादेव के हृदय में चंचलता पैदा नहीं हुई। यही धीर हैं जो विकारों का कारण उपस्थित होते हुए भी कामदेव पर काबू किये रहते हैं।

२८-शब्दार्थ—भल समउ = सु अग्रसर। मनोज = कामदेव। सुरकाजु = देवताओं का काम।

अर्थ—देवताओं ने मौका पाकर कामदेव को बुलाया और उससे कहा कि अब तुम देवताओं का कार्य सिद्ध करो। कामदेव सय सामग्री एकत्र करके दौड़ा।

सुरकाज (देवताओं का काम) क्या था ?—तारक नामक चली राक्षस ने देवताओं का नाक में दम कर रक्खा था, इस राक्षस की जीत का ठिकाना न था, अनेक देवताओं और

लोकपालों को पराजित कर चुका था। अन्त में देवता गण ब्रह्माजी के पास गये और उन्हें अपनी यह कष्ट-कथा कह सुनाई। ब्रह्माजी बोले—तारक बड़ा बलवान है, उसे शिवजी से उत्पन्न हुआ पुत्र ही नष्ट कर सकता है। परन्तु शिवजी अविवाहित हैं, उनका पुत्र कैसे हो ! देवताओं ने देखा कि पार्वती शिवजी की सेवा में सलग्न हैं, अतएव इस समय कामदेव को उनके हृदय में कामवासना उत्पन्न करने के लिए भेजना चाहिए जिससे वह गिरिराज सुता से शीघ्र ही विवाह करलें और उनके पुत्र द्वारा तारक मारा जावे।

२६-शब्दार्थ—वामदेव=महादेव। वाम=उलटा। धरतेउ= धर्ताव किया। जय जग-मद=विश्व विजयी होने के अभिमान में। निदरेसि=निरादर किया है। फल=फल।

अर्थ—औद्युध बाबा वामदेव (महादेव) से कामदेव ने विपरीत व्यवहार किया। उसने अपने विश्व विजय के अभिमान में महादेव का अपमान किया, जिसका उसे फल भी भोगना पड़ा।

कामदेव जब अपनी शकड़ में वामदेव के पास गया तो वह उसका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला जिससे कामदेव भस्मीभूत हो गया।

३०-शब्दार्थ—रति=कामदेव की स्त्री,। विसूरति=चुरी सूरत, सिसकना=छुपकना, विलाप कर कर के धीरे धीरे रोना। मृदुशील=कोमल स्वभाव युक्त। नीलकण्ठ=नीले गले वाले अर्थात् महादेव। देव दानवों द्वारा समुद्र मथने से १४ रत्न निकले। उनमें से एक विष भी था। और रत्न तो सब देवताओं ने घाँट लिए विष को कौन ले ? विष्णु के कहने पर शिवजी ने इस हलाहल का पान किया। महादेव बाबा वि

हजम तो कर गये, परन्तु उनके गते की रंगत नीली पड़ गई। तभी से शिवजी 'नीलकण्ठ' भी कहलाने लगे।

अर्थ—कोमल स्वभाव वाले कृपासिन्धु शिवजी ने कामदेव की विधवा रति को मलिनावस्था में विलम्बते हुए देखा।

३१-शब्दार्थ—आसु (शु) तोष = शीघ्र प्रसन्न हो जाने वाले, महादेव। परितोष = धैर्य, तसल्ली। अनत = अन्यत्र, दूसरी जगह। गम = जाना।

अर्थ—शीघ्र सन्तुष्ट होजाने वाले महादेव ने वरदानपूर्वक रति को धीरज दिया और स्वयम् उदासीन होकर उस स्थान को छोड़ दूसरी जगह चले गये।

वरदान—शिवजी ने रति को यह वरदान दिया था कि कृष्णायतार होने पर कृष्णपुत्र अनिरुद्ध ही तैरा पति होगा।

३२-शब्दार्थ—कलपपेलि = कल्पलता। हिम = पाला। दार = नष्ट हुई, मारी गई। सुध-बुध = स्मृति और ज्ञान।

अर्थ—यह देखकर पावती प्रेम के कारण विकल होगई, उन्हें अपनी सुध बुध कुछ न रही। मानो वन में बढ़ती हुई कल्पलता पर कठोर तुपार पात हो गया, उसे पाला मार गया।

३३-शब्दार्थ—पग्निजन = परिवार के लोग। दारुण (ण) = फठोर।

अर्थ—यह समाचार सब सखियों ने घर जा जा कर कहे, जिससे माता पिता तथा कुटुम्बी जा घोर दुःख से जलने लगे।

३४-शब्दार्थ—उर = हृदय। विलपहि = विलाप करते हैं।

हिमवान और मैना ने पार्वती को जाकर देखा और घड़े प्रेम पूर्वक हृदय से लगा लिया। दोनों माता पिता दुखी होकर विपरीत विधाता को दोष देने लगे।

३५-शब्दार्थ—अभिमत = मन चाहा, इच्छित । समु = धम, परिश्रम, महनत । साधक = अनुष्ठान करने वाला ।

अर्थ—अगर देवता और ब्रह्मा भगल मार्ग में बाधा न डालें तो साधक लोग परिश्रम पूर्वक इच्छितफल प्राप्त कर लें ।

३६-शब्दार्थ—निहोस्त = बड़े विनम्रभाव से निवेदन करते हैं । चन्द्रललाम = महादेव । अगमु = अगम्य, कठिन ।

अर्थ—सब लोग साधना करने वालों की कठिनाइयों को सुना कर पार्वती से घर चलने के लिए कहने लगे । परन्तु कौन सुनता है ? किसे घर सुहाता है ? पावती का चित्त तो शिवजी को चाहता है । सबको समझा तथा मन को और भी अधिक दृढ़ बना कर, माता पिता की आज्ञा से पार्वती फिर कठिन तप करने लगीं । तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं गाकर उसका वणन कैसे करूँ ।

३७-शब्दार्थ—पन = प्रण । हितु = हित, हितैषी ।

अर्थ—पार्वती की प्रतिज्ञा देखकर माता पिता और कुटुम्बी लोग वापस चले गये । जिसके प्रेम में चित्त लग गया वही अपना हितैषी है ।

३८-शब्दार्थ—भोग = सुख । अहि = साँप । मनसु = मनसे ।

अर्थ—पार्वती ने भोग (सुख) रोग के नमान और लोग सर्प समूह समझ कर त्याग दिये और उन्होंने मुनियों के मन में भी न आने लायक तप से ध्यान लगाया ।

३९-शब्दार्थ—वसन = कपड़े । विभूषण (ण) = जेवर, गहने । परस्त = स्पर्श करते ही, छूते ही । वपु = शरीर ।

अर्थ—जो कोमल शरीर वस्त्रों और आभूषणों का भार सहारने में भी कुम्डला जाता था, उसने शिवजी के लिए बड़ी कड़ी तपस्या शुरू कर दी ।

४०-शब्दार्थ—समयतिहुँ=तीनों समय । निमज्जन= स्नान । नेमु=नियम ।

अर्थ—पार्वतीजी प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीनों समय स्नान कर शिवजी की पूजा करती हैं । उनके प्रेम, व्रत और नियम को देखकर सब सज्जन प्रशंसा करते हैं ।

४१-शब्दार्थ—निसि (शि)=रात्रि । वासरु=दिन । हर=शिवजी ।

अर्थ—पार्वती को न नींद आती है और न भूख-प्यास लगती है । उनके लिए रात-दिन समान है । आँखों में आसू रहते हैं, मुख में शिवजी के नाम का जाप है, शरीर पर पुलकावली और हृदय में शिवजी की भक्ति है ।

४२-शब्दार्थ—कन्द=शकरकन्दादि की जड़ । असन=भोजन । पवनहिं=हवा को ।

अर्थ—उह कन्द-मूल फल खाती हैं, कभी पानी और हवा से ही रह जाती हैं । सुखे वेल के पत्ते खा खा कर दिन बिता रही हैं ।

४३-शब्दार्थ—अपरना (अपर्णा)=अर्थात् बिना पत्तों के रहने वाली पार्वती । जब पार्वती तपस्या में सलग्न थीं तो उन्होंने पर्ण (पत्ते) खाना भी छोड़ दिया था उसी समय से उनका अपर्णा नाम पड़ा । धवल=खच्छ, साफ़ । कल=सुन्दर ।

अर्थ—जब पार्वती ने सुखे पत्ते खाने भी छोड़ दिए तो उनका नाम 'अपर्णा' हो गया । उनके नवीन विमल सुयश से सब भुवन भर गये, वे सब लोकों में विख्यात होगई ।

४४-शब्दार्थ—बहु=बधू, स्त्री । कहुँ=कहीं ।

अर्थ—पार्वती की कठिन तपस्या देख कर मुनिश्रेष्ठ और मुनि-पत्निया प्रशंसा करती हैं । ऐसा तप न कभी किसी ने कहीं देखा और न सुना ।

४५-शब्दार्थ—फल चारि=चार फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष । कुधर कुमारि=कु (पृथिवी) धर (धारण करने वाले) अर्थात् पहाड़ की कन्या पार्वती । बटु=ब्रह्मचारी । पेपन=देखने को । ससि सेखर=शशि शेखर, शशि (चन्द्र) जिनके मस्तक में है । मनसहि=मन से ।

अर्थ—मुनि पत्निया कहती हैं कि ऐसा तप किसी ने नहीं देखा, इस तप के योग्य तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों का फल ही है । न जाना जाता है, और न कहती है कि पर्वत पुत्री पार्वती चाहती क्या है ? फिर महादेवजी ब्रह्मचारी का वेश धारण कर पार्वती के प्रेम प्रण और नियम की जाँच करने के लिए गये । शिवजी ने मन से तो अपने को पार्वती के अर्पण कर दिया और बाणी से मधुर वचन बोलने लगे ।

४६-शब्दार्थ—कहना (णा) = दया के समुद्र । एसि आयउ = , खिसिआ गये, चिढ़ गये ।

अर्थ—पार्वती की दशा देख कर दयालु महादेव के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, वे यह सोचकर हृदय में लज्जित होने लगे कि मेरा बड़ा कठोर स्वभाव है जो मेरे कारण भक्तों को ऐसी कठिन तपस्या करनी पड़ती है ।

कहीं 'हृदय अस आयउ' भी पाठ है, अर्थात् हृदय में ऐसा आया, यह सोचा ।

४७-शब्दार्थ—प्रससि=प्रशंसा करके । अमिय=अमृत ।

अर्थ—पार्वती के कुल की प्रशंसा करके उनके माता-पिता को सब योग्य बताकर ब्रह्मचारी (वास्तव में शिवजी) अमृतमय वचन कहने लगे जो सुनने में बड़े सुख देने वाले थे ।

४८-शब्दार्थ—विलगु न मानेउ=पराया मत समझना, घुरा मत मानना । सुभाव = स्वाभाविक रीति ।

अर्थ—देवी 'घुरा न मानना में कुछ प्रार्थना करता हूँ । अपने हृदय में सत्य समझना कि जो कुछ मैं कहता हूँ स्वाभाविक स्नेह से कहता हूँ ।

४९-शब्दार्थ—वर = का । तीय रतन = रत्नी रूपीरत्न । रतना गर = रत्नाकर अर्थात् समुद्र । रत्नों की उत्पत्ति समुद्र से ही मानी जाती है ।

अर्थ—तुमने जन्म लेकर ससार में अपने माता पिता का यश प्रकट कर दिया है । तुम मसार सागर में रत्नी-रत्न के रूप में पैदा हुई हो ।

५०-शब्दार्थ—सूझइ = सूझता या दिखाइ देता है ।

अर्थ—सुझे तो ऐसा मालूम देता है कि ससार में तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है । निष्काम भाव से तप करने वाला कष्ट का कष्ट नहीं समझता ।

५१-शब्दार्थ—लरिकाइय = लडकपन । मेर = सुमेरु पर्वत ।

अर्थ—अगर तुम पति के लिए तप कर रही हो तो यह तुम्हारा लडकपन है । यदि पारस पत्थर घर ही में मिल जाय तो सुमेरु पर्वत पर जाने की क्या आवश्यकता है ।

प्रसिद्ध है कि पारस पत्थर से लोहा सोना हो जाता है, और यह सुमेरु पर्वत पर पाया जाता है ।

५२-शब्दार्थ—सुधा = अमृत । कलेश = फ्लेश, कष्ट ।

अर्थ—मेरी समझ में तो तुम अकारण ही कष्ट उठाती हो । क्या अमृत रोगी को चाहता है, क्या रत्न राजा को चाहता है । अर्थात् जिस प्रकार अमृत और रत्न की प्राप्ति के लिए रोगी और राजा प्रयत्न करते हैं, उसी तरह तुम्हारे पाने के

लिए तो दूसरों को ही कोशिश करनी चाहिए, तुम व्यर्थ क्यों उद्योग कर रही हो ।

५३-शब्दार्थ—सखी मुख = सखी की ओर मुह करके ।

अर्थ—पावती के तप का कारण ब्रह्मचारी को समझ में न आया और वह हिम्मत हार गया । यह प्यारा वचन सुनकर पावती ने सखी के मुख की ओर देखा ।

५४-शब्दार्थ—रत्न = संकेत । रावरो = आपका । मुरुवाई = मूर्खता ।

अर्थ—जब पावती ने सखी की ओर देखा तो उसने उसका संकेत पाकर ब्रह्मचारी को तप का कारण बताया और कहा पार्वती शिवजी के लिए तप कर रही है । यह सुनकर ब्रह्मचारी ने हसते हुए कहा—‘बड़ी मूर्खता की बात है ।’ जिसने तुम्हें ऐसा उपदेश दिया है कि “कष्टपूर्वक बायले घर को चरना” में तुम्हारी स्वाभाविक हित कामना से कहता है, कि वह तुम्हारा कट्टर शत्रु है ।

५५-शब्दार्थ—रीझहु = रीझना, मुग्ध हो जाना । घर = घर, दूतदा । अकुलीनहि = घटिया खानदान को । अगुन = गुणहीन । अमान = मान रहित । मातु पितु हीनहि = अप्रजन्मा, जो कभी माता पिता से पैदा नहीं हुआ ।

अर्थ—कहो क्या सुन कर तुम अकुलीन, गुणहीन, मान हीन, जाति हीन और माता पिता विहीन घर पर रीझ गइ हो ।

५६-शब्दार्थ—भर = महादेव, ससार । चिता = श्मशान से मतलब है । जोयहि = देखते हैं ।

अर्थ—महादेव भीख मागकर खाते और श्मशान में सोते जहाँ नगे पिशाच नाचते और पिशाचिनी उन्हें देखती हैं

५७-शब्दार्थ—छार (चार) = राख । सरोप = कोधी । जटिल = जटाधारी ।

अर्थ—वे भाग घट्टे का आहार करते हैं और शरीर से राख लपेटे रहते हैं । जोगी जटाधारी और कोधी हैं भोग उन अच्छे नहीं लगते ।

५८-शब्दार्थ—मुग्धपत्र = महादेव । ति (त्रि) लोचन = महादेव । फुर = सत्य । काम मद-मोचन = कामदेव का मान मदन करने वाले शरर भगवान् ।

अर्थ—हे अच्छे मुँह और अच्छे नेत्र वाली । महादेव के पांच मुख और तीन आँखें हैं । कामदेव (अर्थात् टेढ़े या उल्टे देखता) उनका नाम है, जो ठीक ही है । वह कामदेव का मान मदन करने वाले हैं ।

५९-शब्दार्थ—घर = श्रेष्ठ, दूल्हा । कपाल = खोपड़ी । गज = हाथी । व्याल = साप ।

अर्थ—महादेव में घर बनने योग्य कोई गुण नहीं है, बूषण करोड़ों हैं । आदमी की खोपड़ी, हाथी की खाल, साप और विष उनके भूषण हैं ।

६०-शब्दार्थ—अमगल = अशुभ ।

अर्थ—कहा तुम्हारा गुण, शील और सुन्दर स्वरूप और कहा उनका अत्यन्त डरावना और अमगल वेश ।

६१-शब्दार्थ—ससिम्बलहि = चन्द्रकला को । रौरहि = आपकी । वरिये = बरिये, विवाह कीजिए ।

अर्थ—जो महादेव चन्द्रकला को प्रसन्न रखने के लिए चिन्ता किया करता है, वह तुम्हारी प्रसन्नता की क्या चिन्ता करेगा । मेरा कहना मन में घर कर (अर्थात् मेरी बात मानकर) उस धायले घर को मठ करो ।

तात्पर्य यह है कि महादेव चन्द्रकला को बहुत प्यार करते हैं, तुम्हारे ऊपर प्रेम न करेंगे। अर्थात् शशिकला रूप एक सपत्नी या सवति भी है।

६२-शब्दार्थ—हेरि = विचार कर। सिख = शिक्षा, सीख।

अर्थ—हृदय में सोचकर हठ छाड़ दो, हठ में दुःख पाओगी और विवाह के वक्त मेरी शिक्षा को याद कर पढ़ताओगी।

६३-शब्दार्थ—जनेत = वारात। जमधारि = यमराज की सेना। अजिन = छात। दुक्कल = रेशमी वस्त्र। माहुर = विप।

अर्थ—तुम उस समय पढ़ताओगी, जब भूत, प्रेत, और पिशाच सज सज कर वारात में आवेंगे। उस वारात को यम की सेना के समान समझकर सब नर-नारी भाग चलेंगे। जब महादेव के ओढ़ने की हाथी की खाल और तुम्हारे रेशमी वस्त्र को मिलाकर सखी गाठ लगावेंगी, तब वह मुँह मोड़कर हँसेगी। उस समय कोई स्पष्ट और कोई हृदय में कहेंगे कि अमृत और विप घोलकर मिलाया जा रहा है।

६४-शब्दार्थ—वसह = बैल, नादिया। गोशर्हि = छिपा लेंगे।

अर्थ—तुम्हारे सहित जब महादेव बैल पर सवार होंगे तो उसे देख कर नगर के स्त्री-पुरुष हँस कर मुँह छिपा लेंगे।

६५-शब्दार्थ—अचल = निश्चल, पहाड़। सुता = पुत्री। वयारि = वायु, हवा।

अर्थ—गल्लचारी करोड़ों कुन्क कर यथावधि बोलता रहा, परन्तु अचल (पहाड़) सुता पावती के अचल मन को हवा कैसे हिला सकती थी।

६६-शब्दार्थ—सावन सरित = आवण के महीने की बड़ी हुई नदी। सिन्धु रुख = समुद्र की ओर मुँह करने वाली।

अर्थ—सच्चे प्रेम और सच्ची रुचि को जो आग्रहपूर्वक पलटने की कोशिश करता है। मानो वह समुद्र की ओर जाने वाली श्रावण की नदी को सूँ से रोकना चाहता है।

६५-शब्दार्थ—फनि (णि) = सर्प।

अर्थ—मणि के बिना सप और जल के बिना मछली शरीर त्याग देते हैं उसी प्रकार जो जिस पर प्रेम करता है वह उसक गुण-दोषों को नहीं गिनता।

६६-शब्दार्थ—करुण कटु = कर्ण कटु, कानों को अच्छा न लगने वाला। विसिख = विशिख, बाण। हण = हने, लगे। अरुण = लाल। अधर = ओठ।

अर्थ—ब्रह्मचारी के कर्णकटु वचन पार्वती के हृदय में बाण के समान लगे, उनके नेत्र लाल होगये, भीहँ चढ़ गई और ओठ फड़कने लगे।

६६-शब्दार्थ—आलि = सखी। बरबर = बड़बड़ाने वाला।

अर्थ—क्रोध से पार्वती का शरीर थर थर कांपने लगा और उन्होंने सखी की ओर देख कर कहा—सखी ब्रह्मचारी को शीघ्र विदा करो, बड़ा बकवादी है।

७०-शब्दार्थ—सयानि = चतुर। बौरेहि = पागल को।

अर्थ—पार्वती ने ब्रह्मचारी से कहा—जहाँ चतुर स्त्रियाँ हैं वहाँ जाओ, वे ही तुम्हारी शिक्षा को सुनेंगी म तो उस बावले के प्रेम में ही बड़ी बावली हो गई हूँ।

७१-शब्दार्थ—दोष-निधान = दुषणों का भण्डार। इस्तानु = ईशान, शिवजी। आकु = अक, लेख।

अर्थ—शिवजी दोषों के भण्डार हैं, आपने ठीक कहा है, परन्तु जो अक ब्रह्मा ने लिख रखे हैं, उन्हें कौन मेट सकता है।

७२-शब्दार्थ—विषादु = रज, दुःख । कवि = पंडित, विद्वान् कविता करने वाला ।

अर्थ—तुम्हारे साथ बहस करके कोन झगडा घटावे । कवि मीठा किसे कहते हैं ? जो जिसको अच्छा लगे-उसे ।

७३-शब्दार्थ—चार = ढेर । बहोरि = फिर । कुजुगति = कु युक्ति, बुरी तद्वीर ।

अर्थ—बहुन ढेर हो गई, कहीं सखी अपने काम पर न चली जाय और यह प्रह्लाचारी बुरी युक्ति सोच कर फिर न बकने लगे ।

७४-शब्दार्थ—सोधि = शोध कर जाच पड़ताल करके । पावनो = पावन, पवित्र ।

अर्थ—यह प्रीति की रीति या बात करने का ढंग नहीं जानता इसलिए कहीं फिर कुछ न कह उठे । शिव और साधु की निन्दा करने वाला बड़ा मनिमन्द होता है और जो उस निन्दा को सुने वह भी बड़ा पातकी है । पार्वती की बातें सुन तथा उनके सत्य, अटल तथा पवित्र प्रेम की परीक्षा करके, तुलसीदासजी कहते हैं, जलाट पर चन्द्रमा को सुशोभित किए हुए दया सागर शङ्कर भगवान् प्रकट हुए ।

७५-शब्दार्थ—भूति = विभूति, गौर । घदन = मुह ।

अर्थ—शिवजी के सुन्दर गोरे शरीर पर लिपटी हुई राख (विभूति) बड़ी सुहावनी मालूम देती है । सुन्दर नेत्र, ऊँचा ललाट और मुह मन को मोहता है ।

७६-शब्दार्थ—सै (शै) ल = पहाड़ । पुलक = रोमांच ।

अर्थ—उस मनोहर मूर्ति को देखकर पार्वतीजी की आँखों में आसू आगये, हृदय हर्ष से भर गया और शरीर पुलकायमान हो गया ।

७७-शब्दार्थ—सौतुल=संचमुच, साक्षात्। सहि=वस्तुतः।

अर्थ—यह बार-बार प्रणाम करने लगी और कुछ कहते न बन पड़ा। यह सोचने लगी कि मैं यह स्वप्न देख रही हूँ या वास्तव में साक्षात् शिवजी ही प्रकट हुए हैं।

७८-शब्दार्थ—महामणि (णि)=चिन्तामणि। कहते हैं कि इस दिव्य मणि से जो मांगा जाय वही प्राप्त हो जाता है। प्रतीति=प्रिश्वासा। देखत=देखते हुए।

अर्थ—जिस प्रकार जन्म के दरिद्री को चिन्तामणि मिल जाने पर भी विश्वास नहीं होता कि यह चिन्तामणि ही है, उसी प्रकार पावती की दशा है, वह सामने साक्षात् महादेव को देख कर भी स्वप्न होने की कल्पना कर रही है।

७९-शब्दार्थ—सुठि=सुन्दर, अत्यन्त।

अर्थ—प्रनोरथ सफल हुआ। पार्वती सुन्दर दिखाई देने लगी। ऐसा मालूम हुआ मानो वह अभी घर से खेलते खेलते चली आई हैं।

८०-शब्दार्थ—सनेह सुखा रस=प्रेम रूपी अमृत के रस में।

अर्थ—पार्वती का सौन्दर्य तथा प्रेम देत कर महादेवजी उनके वशीभूत हो गये और प्रेमामृत में स्नान कर वचन कहने लगे।

८१-शब्दार्थ—आजु लणि=आज तक। कनडड=कनोडा,

कृतज्ञ=आभारी।

अर्थ—हमें आज तक किसी ने अपना अहसानमन्द नहीं बनाया, परन्तु पावती के तप तथा प्रेम ने हमें मोल ले लिया।

अर्थ—शिवजी ने कहा अब जो कहो सो मैं करूँ, इस घड़ी विलम्ब न होगा। महादेव के मधुर वचन सुनकर पार्वती उनके पाँवों में गिर पड़ीं।

८२-शब्दार्थ—घरि=घड़ी, समय।

अर्थ—पार्वती ने महादेव के चरणों में पड़ कर सखी द्वारा अपने को पिता के अधीन बताया । महादेवजी पार्वती को सात्व्यना देते तथा उनकी प्रीति, नीति पटुता का वर्णन करते हुए चले गये ।

८३-शब्दार्थ—प्रवीन (ण) ता = चतुराई ।

शिवजी को हृदय में धारण कर पार्वती अपने घर गई । फिर ब्रह्मा ने दोनों का मनोरथ ही सफल किया । सारा समाज आनन्द और प्रेम से मगलमान करने लगा तथा यथायथ बजने लगे ।

८४-शब्दार्थ—मुनिसात = सात मुनि, सप्तर्षि अर्थात् ऋषय, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गोतम, यमदक्षि और वसिष्ठ । सनुमान = सम्मान = आदर ।

शिवजी ने सप्तर्षियों का स्मरण किया उन्होंने आकर शिवजी के चरणों में सिर झुका दिये । महादेवजी ने उनका आदर-उत्कार किया, इस प्रकार ऋषियों ने अपना जन्म सफल किया ।

८५-शब्दार्थ—सकृन् = एक बार । सुकृति = पुण्यात्मा, शुभ काम करने वाला । वग् = श्रेष्ठ ।

अथ—महादेवजी ! आपको जो एक बार भी स्मरण करते हैं वही पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ हैं और जिनकी आप सुधि लेते हैं उनके समान तो वह स्वयम् ही हैं, अर्थात् नसार मैं उनकी कोई समानता नहीं कर सकता ।

८६-शब्दार्थ—कथा प्रसंग = कथा का हाल ।

अथ—सातों ऋषियों की विनयी सुनकर महादेव जी को बड़ा आनन्द हुआ और फिर उन्होंने मुनियों को सारी कथा (पार्वती जी के घरदान और उनकी तपस्या) कह सुनाई ।

८७-शब्दार्थ—गेहु=घर । लगन=लग्न ।

अर्थ—महादेवजी ने सप्त ऋषियों से कहा कि आप लोग हिमवान के घर जायें और विवाह की चर्चा चलावें और अगर आपकी समझ में आ जाय तो लग्न पत्रिका लिखा लें ।

८८-शब्दार्थ—अरुन्वती = वशिष्ठजी की स्त्री ।

अर्थ—अरुन्वती (वशिष्ठ की पत्नी) मैना में मिला कर बातचीत करेंगी । स्त्रियाँ इस काम में कुशल होती हैं, काम बन जायगा ।

८९-शब्दार्थ—गगन=आकाश । धुनि=ध्वनि, आवाज, गाना ।

अर्थ—दुलदिन पावती, दूल्हा महादेव और काम साधने वाले सप्तर्षि वस यह काम अवश्य बन जायगा ऐसी आकाशवाणी हुई ।

९०-शब्दार्थ—अरुनि=आकर्ण्य, वर्णगत करके, सुन कर । सुलोचनि=अच्छी आँखों वाली ।

अर्थ—आकाशवाणी सुन कर महादेवजी तथा सप्त ऋषियों को बड़ा हृष्य हुआ और शीश पर भरे कलश धरे हुए सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों ने और भी शत्रुन बना दिया ।

९१-शब्दार्थ—ठाड=रथान । पहु=पर, पास ।

अर्थ—महादेवजी को फिर आकर मिलने का दिन और स्थापित कर सप्तऋषि प्रसन्न हो कर हिमाचल के पास गये ।

९२-शब्दार्थ—सोधाइ=शोधवा कर ठीक कराके । पहुनाइ=मेढमानदारी । ललित=सुन्दर । घर बात=घरेलू बात ।

अर्थ—सातो ऋषि हिमाचल के घर गये । वहाँ उनका बड़े प्रेम से स्वागत सत्कार तथा आतिथ्य हुआ । गिरिराज ने कन्या सहित स्त्री को ऋषियों के सामने उपस्थित किया और अपनी सब घरेलू बातें भी उनसे कह दीं ।

(मृत में 'घरवात' पाठ है । किसी ने इसका अर्थ घर की सामग्री किया है और कोई घरेलू बातचीत भी अर्थ करते हैं । किसी किसी का यह भी विचार है कि कदाचित् पाठ 'घरगार' हो ।)

हिमालय के स्वागत से सुख पाकर ऋषियों ने धियाह की चर्चा चलाई, श्रद्धा विन निश्चय करके हिमाजय को उसकी सूचना दी तथा सुन्दर लग्नपत्रिका लिखा कर सातों ऋषि प्रातः काल बड़े प्रसन्न हो कर चले ।

६३-शब्दार्थ—वृन्द = समुदाय । निसाननि = नगाड़ों पर । घाउ परेउ = चोट पड़ी ।

अर्थ—हिमालय ने ग्राहकों का आदर कर कुल-गुरु और देवताओं की पूजा की । नगाड़ों पर चोट पड़ी, और नगर में चारों ओर उत्साह ही उत्साह दिखा देने लगा ।

६४-शब्दार्थ—सिन्धु = समुद्र । गिरिवर नायक = श्रेष्ठ पहाड़ों का नायक, हिमालय ।

अर्थ—पहाड़, वन, नदी, समुद्र, तालाब जिसको भी सुन पाया, सब को पर्यवगात्र ने निमन्त्रण देकर बुलाया ।

६५-शब्दार्थ—कचन = सोना । चीर = कपड़ा । उपहार = भेंट ।

अर्थ—सुन्दर वेश धारण कर तथा भेंट के लिए सोना, वस्त्र, हार, मणियां लेकर सब प्रसन्न मन चले ।

६६-शब्दार्थ—वितान = चढ़ोवा । सुवासिनि = सौभाग्य वती स्त्रियाँ ।

अर्थ—हिमवान ने खुश हो कर चढ़ोवा (मण्डप) बनाने के लिए कड़ा और सोनाभ्यवनी स्त्रियां प्रसन्न मन हो मंगल गान करने लगीं ।

अर्थ—ब्रह्माजी ने जहाँ तहाँ शिवजी के गणों को दूत बना कर भेजा । विवाह-पार्त्ता सुनकर सब प्रसन्न हुए और नगाड़े बजाने को कहा ।

१०२-शब्दार्थ—विमान = हवा या आकाश में उड़ने वाले, व्योमयात्रा या वायुयान । सगुन (शकुन) = शुभ सूचक चिह्न ।

अर्थ—देवतागण अपने अपने विमानों को सजाते हैं, उन्हें अच्छे शकुन मिलते हैं । ये अपनी अपनी मण्डली सजाकर (महादेवजी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए) चले ।

१०३-शब्दार्थ—गाजहिं = गरजते हैं । सूकर = सूअर । महिष = भैंसा । रूपा (रूपा) न = कुत्ता । खर = गवहा । बाहन = चहन करने वाली अर्थात् सवारी ।

अर्थ—शिवजी के सब दूत भूत प्रसन्न होकर गरजते हैं, और सूअर, भैंसा, कुत्ता, गवहा आदि की सवारियों को सजाते हैं ।

१०४-शब्दार्थ—नाना = अनेक । अज = बकरा । वृक = भेड़िया नाद = ५२नि ।

अर्थ—शिवजी के गण भौंति भौंति का नाच नाचते हैं, आनन्द की उमंग में लीन हैं । बकरा, उल्लू, भेड़िया आदि की धोलियों में गीत गा रहे हैं ।

१०५-शब्दार्थ—रमानाथ = लक्ष्मीपति विष्णु । सुरनाथ = इन्द्र ।

अर्थ—विष्णु, इन्द्र तथा सब देवता उस स्थान पर पहुँचे जहाँ ब्रह्मा और महादेव थे । मनही मन उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ।

१०६-शब्दार्थ—हरिहि = विष्णु को । सुभाषि = अच्छी तरह बोलकर ।

६७-शब्दार्थ—तोरन (ण) = बन्दनवार । चैत्र = चमर ।
 धुज = ५१जा, पताका । हाट = बाजार । पटोगन्धि = रेशमी कपड़े ।
 सफनतर = फनदार वृक्ष । लाङ्गह = लगाया, रोपा ।

अर्थ—अनेक प्रकार के बन्दनवार, कलश, चमर, ५१जा पताका बनाए गये । दुकानों को रेशमी वस्त्रों से मढ़कर फनदार वृक्ष लगाये गये ।

६८-शब्दार्थ—नेडर = पीहर, प्यौसाल, मायका । मृतुराज = वसन्त ।

अर्थ—शर्वती के पीहर (की शोभा) का प्रथम किस प्रकार करू मानो वह वसन्त और कामदेव की राजधानी बना हुआ है ।

६९-शब्दार्थ—मदन = कामदेव । विथक = धकजाते हैं ।
 मगु = माग । जोधन लगे = जोड़ने लगे, प्रतीक्षा करने लगे ।
 मगे = मान हुए ।

अर्थ—मानो पुशल प्रह्ला ने कामदेव की दूसरी राजधानी बना दी है । स्थान स्थान पर उसकी विचित्र सजावट को देख कर आँख धकजाती हैं । इस प्रकार विवाह की सामग्री सजाकर गिरिराज वाराणसी की प्रतीक्षा करने लगे । तुलसीदासजी कहते हैं कि उधर सप्तऋषियों ने लग्न जाकर दी तो महादेवजी बड़े प्रसन्न होगये ।

१००-शब्दार्थ—पटगाई = पटगाई । अमर = देवता ।

अर्थ—प्रह्ला को शीघ्र बुलाकर शिवजी ने लग्न पटगाई और कहा कि सब देवताओं को बुलाकर विवाह के लिए चलिये ।

१०१-शब्दार्थ—सिवगन = शिवजी के गण अर्थात् भैरव, नन्दी, धीरमद्र आदि । धावन = दूत । जन = सेवक, गण ।

अर्थ—प्रह्लाजी ने जहाँ तहा शिवजी के गणों को दूत बना कर भेजा । विवाह-पार्त्ता सुनकर सब प्रसन्न हुए और नगाड़े बजाने को कहा ।

१०२-शब्दार्थ—विमान = हवा या आकाश में उड़ने वाले, व्योमयाग या वायुयान । सगुन (शकुन) = शुभ सूचक चिह्न ।

अर्थ—देवतागण अपने अपने विमानों को सजाते हैं, उन्हें अच्छे शकुन मिलते हैं । वे अपनी अपनी मण्डली सजाकर (महादेवजी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए) चले ।

१०३-शब्दार्थ—गाजहिं = गरजते हैं । सूकर = सूअर । महिष = भसा । रुवा (श्वा) न = कुत्ता । खर = गवहा । बाहन = चढ़ान करने वाली अर्थात् सवारी ।

अर्थ—शिवजी के सब दूत भूत प्रसन्न होकर गरजते हैं, और सूअर, भसा, कुत्ता, गवहा आदि की सवारियों को सजाते हैं ।

१०४-शब्दार्थ—नाना = अनेक । अज = बकरा । घृक = भेड़िया नाद = ५२नि ।

अर्थ—शिवजी के गण भाँति भाँति का नाच नाचते हैं, आनन्द की उमंग में लीन हैं । बकरा, उल्लू, भेड़िया आदि की धोनियों में गीत गा रहे हैं ।

१०५-शब्दार्थ—रमानाथ = लक्ष्मीपति विष्णु । सुरनाथ = इन्द्र ।

अर्थ—विष्णु, इन्द्र तथा सब देवता उस स्थान पर पहुँचे जहाँ प्रह्ला और महादेव थे । मनही मन उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ।

१०६-शब्दार्थ—हरिहिं = विष्णु को । सुभाषि = अच्छी तरह बोलकर ।

अर्थ—महादेवजी विष्णुजी से, प्रसन्न होकर मिले, शत्रु से बड़ी अच्छी तरह वार्त्तालाप किया। देवताओं को देखकर उनका सम्मान किया, महादेवजी को बड़ी खुशी हुई।

१०७-शब्दार्थ—गाहन = घोड़ा, बैल कूँट आदि सवारी। जान = यान एवं पालकी आदि सवारी। गहगहा = जोर से।

अर्थ—नाना प्रकार के गाहनों और चानों (सवारियों) में बैठकर बारात चली और बड़े जोर से नगाड़े बजने लगे।

१०८-शब्दार्थ—विधु भूषण = शिवजी। सुमन = फूल। पशुपति = महादेव। कपाल माल = मुण्ड माला। व्याल = साँप।

अर्थ—गााड़े बजते हैं, आकाश में सुन्दर गाना होता है। बैल पर चढ़कर महादेवजी जा रहे हैं। फूल बरसते हैं, देवता जय घोष करते हैं और शुभ तथा मंगलकारी शकुन होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि भूत, प्रेत, पिशाच यरानी पशुपति शिवजी के साथ शोभा देते हैं। हाथी की पाल, साँप तथा मुण्डमाला देख कर देवता तथा विष्णुजी हस पड़े।

१०९-शब्दार्थ—विबुध = देवता।

अर्थ—देवताओं को बुलाकर विष्णु ने कहा कि अब हम नगर के निकट आगये हैं, अपनी अपनी मण्डली सब अलग अलग कर लो।

११०-शब्दार्थ—प्रमथ = शिवजी के गण विशेष। प्रमथ गाय = शङ्कर महादेव। राजर्हि = सुहावने लगते हैं।

अर्थ—महादेव के साथ भूतों का दल सुशोभित हो रहा है। भाँति भाँति के मुँह, सवारियाँ और वेश दिखाइ देते हैं।

१११-शब्दार्थ—कमठ = कछुआ। खपर = जप्पर।

अर्थ—कलुआ के खप्पर को खाल से मढ़कर नगाड़ा बजा रहे हैं और मनुष्यों की खोपड़ियों में जल भर कर पीते-पिलाते हैं ।

११२-शब्दार्थ—अनुहरति = अनुरूप, योग्य । केलि = क्रीडा, खेल । कौतुक = तमाशा ।

अर्थ—विष्णुजी ने हस कर कहा कि घर के योग्य ही यह घरात बनी है । यह सुन कर महादेव मन ही मन हँसते हैं । खूब खेल तथा तमाशा होता है ।

११३-शब्दार्थ—विनोद = आनन्द ।

अर्थ—बड़ा हसी मजाक हो रहा है, माग की प्रसन्नता कहते नहीं बल पड़ती । बाजा बजाते बजाते बारात (हिमवान के) नगर के पास जा पहुँची ।

११४-शब्दार्थ—खरभर = खलबली । अचलु अखण्डल = हिमाचल । परब = पर्व, पूर्णिमाको । उद्धि = समुद्र । उमगेउ = उमड़ा । विबु मण्डल = चन्द्र मण्डल, चन्द्रमा का घेरा ।

अर्थ—नगर में खलबली पड़ गई । हिमाचल का हृदय हर्ष से भर गया । मानो समुद्र पूर्णिमा को चन्द्र-मण्डल देख कर उमड़ पड़ा हो ।

११५-शब्दार्थ—प्रमुदित = प्रति प्रसन्न । अगवान = अगवानी करना, आगे बढ़कर स्वागत सत्कार करना । भभरे = भयभीत होगये, डरगये । परातहि = भागते ।

अर्थ—अगवानी के लिए लोग बड़े खुश होकर गये परन्तु बारात देख कर घबरा गये । अब न उनसे भागते बनता है और न ठहरते ।

११६-शब्दार्थ—बाजि = घोड़ा । हेत = देखते, तलाश करते ।

अर्थ—हाथी घोड़े घरात को देख कर भाग चलें, वे लौटाने से भी नहीं लौटते । बालक भी घबरा कर (रास्ता) भूल गये हैं और अपने घरों की तलाश करते फिरते हैं ।

११७-शब्दार्थ—जायास = घरात ठहरने का स्थान ।
सुपास = सुभीता ।

अर्थ—घरात को जनजासा जाकर ठिया और सब सुभीता कर दिया । घर घर में बालक घरात की चर्चा करने लगे ।

११८-शब्दार्थ—वैताल = प्रेत के ढग की एक नीच कोटि विशेष । घण्ट = उध, घेल । सुमानक = उड़िया घाना, अन्धा सामान ।

अर्थ—भयांक प्रेत भूत, वैताल घराती है । वैल पर बाजला घर चढ़ा है । सबही घानिफ ठीक बना है ।

११९-शब्दार्थ—रस्तार = प्रह्ला । बाँचिय = बचेंगे ।

अर्थ—सब लोग कहते हैं विधाता मंगल करे । हम सब कहते ह, अगर (इस भयङ्कर घरात से) जीते बच रहे तो फरोडों विवाह देखेंगे ।

१२०-शब्दार्थ—घरगे = घर नष्ट होगये ।

नारदजी के घर घालने की दो कथायें इस प्रकार हैं—

(१) दक्ष प्रजापति के कई हजार पुत्र थे, वे अपने पिता की आज्ञा मान कर पश्चिम दिशा में सृष्टि पैदा करने के उद्देश्य से तपस्या करने लगे परन्तु नारद ने उलटी सीधी बातें बनाकर इन्हें वहका दिया जिससे वे सृष्टि रचना का कार्य भूल कर मुक्ति-साधन में लग गये ।

(२) नारद के उपदेश से ही प्रह्लाद ने भगवान् का भक्त बनकर अपने पिता की हत्या करवाई थी ।

अर्थ—यह समाचार सुनकर पार्वती की माता मैना की बड़ी चिन्ता हुई और वह मन ही मन कहने लगी कि नारद के उपदेश से कौनसे घर नष्ट नहीं हुए ?

१२१-शब्दार्थ—घर घाल = घर बिगाड़ने वाला । चालाक = चालबाज । बरेखी = घररक्षा, सगाड़ । जलपति = जलपति, व्यर्थ का बकवाद करती है । निगम = वेद ।

अर्थ—नारद घर बिगाड़ने वाला, चालाक और भगड़ाल है परन्तु (फिर भी) बड़ा परोपकारी कहा जाता है ? ऐसे ही स्वाथ साधक सत्सङ्गियों ने यह विवाद सम्बन्ध कराया है । मैना पार्वती को हृदय से लगाकर दुःख से अनेक तरह की बातें कहने लगी । परन्तु हिमालय ने कहा कि महादेव की महिमा अगम्य और अपार है, उसे वेद भी नहीं जानते ।

१२२-शब्दार्थ—सुमन = अच्छे मन वाली । चौहट = चौपाहा ।

अर्थ—हिमाचल की यह बात सुनकर माता के मन की मलिनता दूर हुई और सखियाँ वारात को देखने के लिए चलीं, बाजार, चौराहे, गली जहाँ तहाँ यही चर्चा चल रही थी (कि घर और वारात दोनों ही विधित हैं)

१२३-शब्दार्थ—श्रीपति = विष्णु । मोरि = मोड़कर ।

अर्थ—विष्णु भगवान् इन्द्रदेव तथा अन्य देवतागण की बातें सुन सुन कर हसते हैं तथा शिवजी की ओर अपने कमल रूपी हाथ जोड़ कर मुह फेर लेते हैं । अथवा अपने दोनों हाथों को मिला कर उन्हें मुह की ओर लेजाते और इस प्रकार हाथों से मुह ढककर तथा मुह मोड़कर हँसते हैं, जिससे शिवजी उनकी हँसी देखकर बुगल मारते ।

१२४-शब्दार्थ—लौकिक = दुनियावी, सासारिक । सोहर = शोभा या सौन्दर्य दिखाने का समय । सत = शत, सौ ।

अर्थ—महादेव लौकिक व्यवहार को समझ कर तथा शोभा दिखाने का अच्छा अवसर जानकर एकदम सो करोड़ कामदेवों से भी अधिक सुन्दर तथा मनोहर होगये ।

१२५-शब्दार्थ—गिचोत = कपडा । पूषन (ण) = सुय ।

अर्थ—हाथों की राल नीला चस्त्र बन गया, साँप मणियों के भूषण बन गये और रोम रोम पर सोन्दर्य समस्त सुय उदय होगये ।

१२६-शब्दार्थ—जोहन = देसना ।

अर्थ—शिवजी के गणों का मंगलमय वेश होगया, जिसे देख कर कामदेव का भी मन मोहित होने लगा । यह सुनते ही सब स्त्री पुरुष प्रसन्नता से उन्हें देखने चले ।

१२७-शब्दार्थ—राजेश = राका (रात) + ईश (स्वामी) चन्द्रमा । नयन = नक्षत्र, सितारे ।

अर्थ—शिवजी शरद की पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान और देवता गण तारों की तरह थे । चारों ओर एकत्र नगर निवासी चक्रोर से लगते थे ।

१२८-शब्दार्थ—अरघ = अघ, मेहमान को जल देना । पाँवडे = पायपोश ।

अर्थ—हिमाचल ने (वारात) में बुलावा भेजा कि लग्न का समय होगया है, मार्गलिक अर्घ्य-पाँवडे देते हुए शिवजी को ले चलिए ।

१२९-शब्दार्थ—गहगहे = घनघोर ।

अर्थ—शुभ तथा मंगलकारी शकुन होते हैं, देवतागण फूल घरसाते हैं, नगर में खूब गाने बजाने और आनन्द-मंगल हो रहे हैं ।

१३०-शब्दार्थ—पँवरि = पंथरी, झ्योदी = सुखामय = सम-
धियों का मिलाप ।

अर्थ—पहली ही झ्योदी पर (ब्रवाजे पर) सुख देने वाली
समधियों की मिलती हुई । इधर (शिवजी की तरफ से) ब्रह्मा
थे उधर (पार्वती की ओर से) उन्हीं के समान सब लायक
हिमवान ।

१३१-शब्दार्थ—चामीकर = सोना । चाह = सुन्दर ।
सिद्धानि = मन ही मन प्रमत्त होती है । भारति (ती) = सरस्वती ।

अर्थ—रत्न जड़ित सोने के सुन्दर थाल में आरती सजाई
गई । आरती करने वाली स्त्रियों का रूप देख कर कामदेव की
स्त्री और उनका गाना सुन कर सरस्वती सिद्धाने लगी ।

१३२-शब्दार्थ—भरी भाग = सोभाग्यवती । मदनमत्त गज
गयनि = कामदेव के मतवाले हाथियों की सी चाल चलने वाली ।
परिद्युन = (परि + अर्चन) परद्युन विवाह की एक रीति,
बरात द्वार पर आ जाने पर कन्या की माता अपनी सखियों
सहित वर के माथे पर टीका करती है ।

अर्थ—प्रेम पुलकित, कामदेव के मतवाले हाथी की तरह
चाल चलने वाली सोभाग्यवती स्त्रिया प्रसन्नता पूर्वक वर की
परिद्युन करने चली ।

१३३-शब्दार्थ—विधु गौर = चन्द्रमा के समान गौर वर्ण
युक्त । उजागर = प्रकट, प्रकाशमान ।

अर्थ—चन्द्रमा के समान वर का—गौरा और चमकदार
अग देव पर आनन्द-सागर में निमग्न हो साम आरती उता-
रने लगी ।

१३४-शब्दार्थ—प्रसून = फूल ।

अर्थ—सुख-सागर में डूबी हुई सास ने वर को देख कर आरती उतारी तथा निझावर की और मार्ग को अर्घ्य, वस्त्र और फूलों से भरकर प्रसन्न हो वर को मण्डप की ओर ले चली। हिमवान ने सब देवताओं को आदर पूर्वक उचित आसन दिया उसी समय विवाह की सामग्री मण्डप में ला कर रखी गई।

१३५-शब्दार्थ—मनि (णि) = मणियों से युक्त बैठने का आसन। मधुपर्क = दही, शहद, घी, जल और शक्कर को मिला कर बनाया हुआ पूजा के १६ उपचारों में से एक उपचार, भोज्य पदार्थ। अमी = अमृत। अंचवायड = आचमन कराया।

अर्थ—अरघ्य देकर रत्न-जटित आसन पर वर बैठायें गये। पूजन करके मधुपर्क चटाया और फिर अमृत से आचमन कराया।

१३६-शब्दार्थ—वेरी = घड़ी-बेला। विधान = रीति।

अर्थ—ब्रह्मा ने सप्त ऋषियों से कहा कि देर न कीजिये, लग्न का समय हो गया है, विवाह सत्कार का विधान शीघ्र ही कीजिए।

१३७-शब्दार्थ—थापि = स्थापित करके। अनल = आग। घरहि = दूल्हे को।

अर्थ—अग्नि स्थापित कर वर (महादेव) को घस्त्र पहनाये गये और ऋषियों ने कहा कि लग्न का समय आगया दुलहिन को शीघ्र लाओ।

१३८-शब्दार्थ—सुआसिनि = सौभाग्यवती।

अर्थ—सखियों और सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ पार्वती अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं। मानो सुन्दरता मूर्तिमती हो कर संसार को मोह रही है।

१३६-शब्दार्थ—समय सम = समयानुसार । सुखमा = शोभा ।

अर्थ—भूषणों और वस्त्रों की समयानुसार शोभा ऐसी अच्छी मालूम होती थी मानो सुखमा की नज़ीन बेल पर सौन्दर्य रूपी फल लगे हों ।

१४०-शब्दार्थ—पटतरिय = उपमा दें, मुकाबिला करें ।

अर्थ—कहिए पार्वती के गुण और रूप की उपमा किससे दें । भला समुद्र की कूप और तालाबों से समता कैसे की जा सकती है ।

१४१-शब्दार्थ—नावहि = झुकाते हैं ।

अर्थ—पार्वती को आता देखकर देवतागण सिर नवाते हैं और वे अपना जन्म कृतार्थ समझ कर सुख पाते हैं ।

१४२-शब्दार्थ—शुभासिप = शुभ आशीर्वाद । झरि = झड़ी ।

अर्थ—ग्राह्य लोग आशीर्वाद दे दे कर घेद-ध्वनि करते हैं, और समय-समय पर गाना, बजाना होता तथा पुष्प वर्षा की झड़ी लग जाती है ।

१४३-शब्दार्थ—शाखोच्चार = विवाह के समय शाखोच्चार की विधि प्रसिद्ध है । वन्यादान के समय वर-वधू के तीन पीढ़ियों के पुरुषाश्रों के नाम लिए जाने हैं ।

अर्थ—वर-वधू को देख कर सब मन ही मन प्रसन्न होते हैं और शाखोच्चार के समय सब देवता तथा मुनि हँसते हैं । हँसने का कारण यह था कि देखें शिवजी अपने धाप-दादा का नाम क्या बताते हैं ।

१४४-शब्दार्थ—कुस = कुश, एक प्रकार के तिनके या घास । संकल्प = इच्छा, विवाह के समय की एक विधि ।

अर्थ—हिमालय ने लोके और वेद-विधि करके हाथ धुआ तथा जल लेकर कन्यादान का सकलप किया।

१४५-शब्दार्थ—लावा=धान की खील। होमविधानः यज्ञविधि। भाँवरि=फेरे फिरना।

अर्थ—हिमवान ने कुल-गुरु तथा कुल-देवता की पूजा क फलश और अच्छी सिलौटी को रक्खा। लावा (खील) तब हवन की ठीक ठीक व्यवस्था करके फिर भाँवर डाली गई कहीं कहीं 'सुभधरी' के स्थान में 'सुभधरी' भी पाठ है, अर्थात् शुभ मुहूर्त में पूजन हुआ।

लावा—एक विधि है जिसमें कन्या का भाई कन्या के आँचल में धान की खीले भरता है।

१४६-शब्दार्थ—वन्दन=सिन्दूर। अग्नि-विधि=गँठ धन्धन। ध्रुव=ध्रुव।

अर्थ—सिन्दूर लगा कर तथा गँठ जोड़कर ध्रुव नक्षत्र देखा। विवाह हो गया, सब कहने लगे कि हमने जीवन का फल पा लिया।

विवाह के समय घर-बधू को ध्रुव-तारा दिखाया जाता है, इसका अभिप्राय यह मालूम होता है कि जिस प्रकार ध्रुव ग्वचल है, उसी प्रकार इस दम्पति का प्रेम भी अचल रहे।

१४७-शब्दार्थ—दक्ष दिक्षा (शा)=दक्ष दिशाएँ अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, वायव्य, नैऋत्य, ईशान, अग्नि आकाश और पाताल। दाहज=दहेज। धेनु=गाय। हय=घोड़ा। गय=हाथी। पव=प्रेम।

अर्थ—विवाह हो गया और उसे देखने वालों ने अपने जीवन का फल पा लिया, दशों दिशाओं में उत्साह उमड़ पड़ा। यह रात्रि नगाड़ों के बजने, गीतों के गाने और फूलों के बरसने से बड़ी सुहावनी हो गई। दहेज में हिमवान ने प्रसन्न होकर

चरन, रत्न, गाय, धन, हाथी, अञ्जे दास और वे दासियाँ वीं जो पावती को प्रिय थीं ।

१४८-हास अथासहि = केलिग्रह या कोहवर को ।

अर्थ—फिर बराती तो प्रसन्न हो कर जनवासे गये और दुलहा-दुलहिन कोहवर को गये । (कोहवर) में स्त्रिया वर से हँसी-मजाक किया करती हैं ।

१४९-शब्दार्थ—लहकौरि = कोहवर या केलिग्रह में, वर-वधू को दही और चीनी खिलाने की प्रथा विशेष ।

अर्थ—इस समय कोहवर का द्वार मैना ने रोक कर बड़ा तमाशा किया और शिव पार्यंती ने लहकौरि करके बड़ा सुख पहुँचाया । कोहवर में पहुँच कर वर-वधू परस्पर दही-चीनी खाते खिलते हैं, यही लहकौरि या लघु कवल है ।

१५०-शब्दार्थ—पुरारि = महादेव ।

अर्थ—वर-वधू को जुआ खिलते हुए स्त्रिया मैना को गाली गाती हैं । अपनी ओर देखकर महादेवजी खुश होते हैं क्योंकि उनकी तो माता थी ही नहीं स्त्रिया गाली किसे देतीं ।

१५१-शब्दार्थ—मगलनिधि = शरर ।

अर्थ—सखियाँ सौभाग्यवती स्त्रियाँ और सास (मैना), सब प्रकार सुखी हुई । तब मगलभूति वर जनवासे को चले ।

१५२-शब्दार्थ—धरम-धरती-धुर = धर्म और धरणी को धारण करने वाला ।

अर्थ—ज्यौनार हुई, फिर धर्म और धरती को धारण करने वाले हिमाचल ने सब देवताओं को मुलाक़द बैठाया ।

१५३-शब्दार्थ—सुबाद = रसोदया । सेवहि = खाते हैं । मेवहि = भिगोती हैं ।

अर्थ—रसोदये पड़ोसने लगे, देवतागण जीमने लगे और खिरिया गाली गाकर हर्ष से मन भिगोने लगीं अर्थात् बड़ी प्रसन्न हुई ।

१५४-शब्दार्थ—सहनाइहू=शहनाइया (शहनाई एक प्रकार का पाजा होता है) । दुहिन=(द्रुहिण) ब्रह्मा ।

अर्थ—सुन्दर शहनाइयों (नफीरी के ढंग का एक बाजा) द्वारा भगल-गान गाया जा रहा है । भोजन करके विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी अपने भाई देवताओं के साथ जनयासे चले ।

१५५-शब्दार्थ—भोर=प्रातः काल ।

अर्थ—हिमवान ने प्रातःकाल विदा की तय्यारी की, देवता लोग भी सवारिया तय्यार करके मगाड़े बजाते हुए चल दिये ।

१५६-शब्दार्थ—पहरावनि=सरोपा (वस्त्र विशेष)

अर्थ—हिमाचल ने सब देवताओं को आदर पूर्वक पोताकें भेट कीं और विनय तथा प्रेम से उनकी बड़ाई की ।

१५७-शब्दार्थ—मानवि=मानिषगा । मूरि=बूटी । जानवि=जानिषगा ।

अर्थ—मैना ने अपने जमाई शिवजी के चरण पकड़ कर कहा कि मेरी विनम्र विनती को मानिष और यह जान लीजिए कि पार्वती मेरे जीवन की सजीवन बूटी अर्थात् सर्वस्व है ।

१५८-शब्दार्थ—हुँकरि हुँकरि=गाय की आवाज । लवार=लवाई, नयी व्याई हुई ।

अर्थ—मैना पार्वती को हृदय से लगाकर विदा करती है, और फिर बार-बार उससे मिलती है और विदा करके पहुँचाती

हैं। हाल की बियानी गाय की तरह ये फिर हुमक कर दौड़ती हैं।

यहाँ मैना की उपमा गाय से दी गई है। जिस प्रकार गाय अपनी बछिया से विलुडते हुए बार बार हुमक कर उसकी ओर ही जाती है, उसी प्रकार पार्वती से अलग होते हुए मैना की दशा है।

१५६-शब्दार्थ—मोचहि = छोड़ती है, बहाती है। जाय = व्यर्थ।

अर्थ—पार्वती माना मैना की ओर देखकर आँसू बहा रही हैं और खेद पूर्वक कह रही हैं कि संसार में स्त्री का जन्म व्यर्थ ही है।

१६०-शब्दार्थ—भेंटि = मिलकर। विलखित = उदास, विल-खता हुआ।

अर्थ—हिमवान पुटुम्बियों और पुत्र सहित पार्वती से मिलकर तथा उन्हें खूब समझा-बुझा कर दुखी होते हुए लौट आये।

१६१-शब्दार्थ—नाइ नाइ = नवा नवा कर।

अर्थ—महादेव पार्वती सहित कैलाश गये, और देवता-गण मस्तक नवा नवा कर अपने स्थानों को सिधारे।

१६२-शब्दार्थ—उल्लाह (उत्साह) = आनन्द

अर्थ—शिव-पार्वती के विवाह के आनन्द से सारे लोक भर गये और ब्रह्मा ने सबके सब मनोरथ पूर्ण किये।

१६३-शब्दार्थ—पाट = रेशम। पट = वस्त्र। डोरि = रस्सी। मृग लोचनि = हिरन की सी आँखों वाली।

अर्थ—कवि-प्रतिभा रूपिणी मृग-लोचनी स्त्री ने प्रेम की रेशमी डोरी में, शिव-पार्वती के गुण रूपी मनकों को गूँथ कर यह मांगलिक हार तय्यार किया है ।

१६४-शब्दाथ—विधुजदनी=चन्द्रमुखी । प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा, दया ।

अर्थ—मृगनयनी, चन्द्रमुखी कवि-प्रतिभा ने सुन्दर मणियों का यह मांगलिक हार तय्यार किया है । इसे स्त्री-पुरुष तीनों लोकों की शोभा का सार समझकर हृदय में धारण करें । जो लोग इसे मंगल कार्यों, उत्सवों तथा विवाहादिक अवसरों पर गावेंगे, तुलसीदासजी कहते हैं, वे शिव-पार्वती की कृपा से मनचाहा आनन्द प्राप्त करेंगे ।

जानकी-मङ्गल

जानकी-मंगल

जानकी मंगल में सीताजी के स्वयम्भर तथा उनके विवाह का वर्णन है। इसमें १६२ सोहर छन्द और २४ हरिगीतिका छन्द हैं। यह ग्रन्थ कब रचा गया, इसका कुछ पता नहीं चलता। इसकी भाषा पूर्वी और अवधी है। कविता पार्वती-मंगल से बहुत मिलती-जुलती है। इससे जान पड़ता है कि जानकी-मंगल और पार्वती-मंगल दोनों का रचना-काल प्रायः एक ही है। उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के कई छन्द रामचरित-मानस से भी बहुत मिलते हैं। अन्य ग्रन्थों की भाँति इस ग्रन्थ की कविता का माधुर्य और सौष्ठव भी प्रशंसनीय है। भाषा तथा छन्द शास्त्र पर कवि का अद्भुत अधिकार है। जिस छन्द को पढ़िये, अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। तुलसीदासजी साधारण रूप से तो किसी बात को कहना ही नहीं जानते, वे जो कुछ कहते हैं, अजीब ढंग से कहते हैं और वाक्य को चमत्कार युक्त बना देते हैं। स्वभाव-सिद्ध कवि का यही विशेष गुण है।

सीताजी के विवाह की कथा इतनी प्रसिद्ध है कि उसका साराश देने का यहाँ आवश्यकता नहीं है। 'रामचरित-मानस' की अपेक्षा 'जानकी-मंगल' के घटना-क्रम में कुछ अन्तर है। 'मंगल' में गोस्वामीजी ने पुष्प वाटिका का वर्णन नहीं किया। अतएव सीताजी पहले पहल धनुषयज्ञ के समय ही रामचन्द्रजी के सम्मुख आती हैं, तथा विश्वामित्रजी राजा जनक से स्वयम् कहते हैं कि निराश होने की कोई बात नहीं है, अगर किसी राजा से शिव धनुष भग नहीं हुआ तो राम से कहो, वह उसे तोड़ देंगे। रामचरित-मानस में यह प्रसंग दूसरी

तरह से है। और भी ऐसे कई कम भेद हैं। परन्तु इससे ग्रन्थ की वर्णन शैली या कवित्व की उत्कृष्टता में कुछ भी अन्तर नहीं आता। यह वैसा ही सुन्दर, सरल, भावमय और महत्त्वपूर्ण है जैसी कि महाकवि तुलसीदासजी की ललित लेखनी द्वारा होनी चाहिये थी। यह ग्रन्थ भी मगलों त्सवों पर गाने के अभिप्राय से ही लिखा गया है। सम्भव है, पूर्वोक्त प्रान्तों में यह गाया भी जाता हो। रामचरित-मानस की तरह पार्वती-भगल और जानकी भगल दोनों ग्रन्थ ऐसे हैं जो यदि ठीक-ठीक गाये जायें तो बड़ी सरसता और भावुकता पैदा कर सकते हैं।

जानकी-मंगल

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति ।
 सारद सेप सुकवि स्रुति सत सरलमति ॥ १ ॥
 हाथ जोरि करि यिनय सयहि सिर नार्थी ।
 सिय-रघुबीर-विद्याटु ययामति गार्थी ॥ २ ॥
 सुम दिन रच्यौ स्वयबर भगलदायक ।
 सुनत सूनन हिय बभूहि सीय-रघुनायक ॥ ३ ॥
 देस सुहावन पावन वेद बखानिय ।
 भूमितिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय ॥ ४ ॥
 तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर ।
 सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुखसागर ॥ ५ ॥
 जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक ।
 सय गुनअवधि, न दूसर पटतर लायक ॥ ६ ॥
 मयउ न होइहि, है, न, जनक सम नरवह ।
 सीय सुता भै जासु सफल भगलमह ॥ ७ ॥
 गृप लखि कुँवरि समानि बोलि गुरु परिजन ।
 करि मत रचेउ स्वयबर सिवधनु धरि पन ॥ ८ ॥

पन धरेउ सिवधनु रचि स्वयबर अति रुचिर रचना बनी ।
 जनु प्रगटि चतुरानन देखाइ चतुरता सब आपनी ॥
 पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं ।
 सब साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहि आवहीं ॥ ९ ॥
 रूप सील बय बस बिरुद बल बल भले ।
 मनहुँ पुरदरनिकर उतरि अरुनी चले ॥ १० ॥

दानव देव निसाचर किन्नर अहिगन ।
 मुनि धरि धरि नृपवेप चले प्रमुदित मन ॥ ११ ॥
 एक चलहि, एक धीच, एक पुर पैठहि ।
 एक घरहि धनु घाय नाइ सिर बैठहि ॥ १२ ॥
 रगभूमि पुर कौतुक एक निहारहि ।
 ललकिलुमाहि नयन मन, फेरिन पारहि ॥ १३ ॥
 जनकहि एक सिहाहि देखि सनमानत ।
 बाहर भीतर भीर न धनै बखानत ॥ १४ ॥
 गान निसान कोजाहल कौतुक जहँ तहँ ।
 सीय वियाह-उच्चाह जाइ कहि का पहुँ ? ॥ १५ ॥
 गाधिसुजन तेहि अवसर अवध सिधायउ ।
 नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ ॥ १६ ॥
 पूजि पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन ।
 कहेउ भूप "मोहि सरिस सुकृत किए काहु न" ॥ १७ ॥

'काहु ॥ कीन्हैउ सुकृत' मुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं ।
 महिपाल मुनि को मिलनसुख महिपाल मुनि मन जानहीं ॥
 अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूपन भरीं ।
 हिय हरपि सुतन्ह समेत रानी आइ छुपिपायन्ह परीं ॥ १८ ॥

कौसिकदीन्हि असीस सकल प्रमुदित भई ।
 सींची मनहुँ सुधारस कलपलता नई ॥ १९ ॥
 रामहि भाइन्ह सहित जबहि मुनि जोहेउ ।
 नैन नीर, तनु पुलक, रूप मन मोहेउ ॥ २० ॥
 परसि कमलकर सीस हरपि हिय लावहि ।
 प्रेमपयोधि-मगन मुनि, पार न पावहि ॥ २१ ॥
 मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहि ।
 बार बार दसरथ के सुकृत सरावहि ॥ २२ ॥

राउ कहेउ कर जोरि सुवचन सुहावन ।

“भयउँ कृतारय आहु देखि पद पावन ॥ २३ ॥

तुम्ह प्रभु पूरनकाम चारि फल-दायक ।

तेहि ते ब्रह्मत काहु डरौ मुनिनायक” ॥ २४ ॥

बौसिक सुनि नृपवचन सराहेउ राजहि ।

धर्मकथा कहि कहेउ गयउ जेहि काजहि ॥ २५ ॥

जबहिं मुनीस महीसहिं काज सुनायउ ।

भयउ सनेह-सत्य-वस उतर न आयउ ॥ २६ ॥

आयउ न उतर बसिष्ठ लखि बहु भाँति नृप समुझायऊ ।

कहि गाधिसुत तपतेज कहु रघुपति प्रभाउ जनायऊ ॥

धीरहु धरेउ गुरुवचन सुनि कर जोरि कह कोसलधनी ।

“करनानिधान सुजान प्रभु सौं उचित नहिं बिनती घनी ॥ २७ ॥

नाथ मोहिं बालकन्ह सहित पुर परिजन ।

राजनहार तुम्हार अनुग्रह घर बन ॥ २८ ॥

दीन वचन बहु भाँति भूप मुनिसन कहे ।

सोपि राम अरु लखन पाँयपरुज गहे ॥ २९ ॥

पाइ मातु पितु आयसु गुरु पाँयन परे ।

कटि निपग पट पीत, करनि सर धनु धरे ॥ ३० ॥

पुरवासी नृप रानिन मग दिये मा ।

वेगि फिरेउ करि काज कुसल रघुनदन ॥ ३१ ॥

ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु ।

म्हात खसै जनि वार, गहरु जनि जायहु ॥ ३२ ॥

चलत सकल पुरलोग वियोग विकल भय ।

सानुज भरत सप्रेम राम पाँयन नय ॥ ३३ ॥

होहिं सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीगोउ ।

राम लपन मुनि साथ गवन तब कोन्होउ ॥ ३४ ॥

'स्यामल गौर 'किसोर मनोहरतानिधि ।

सुखमा सकल 'सरेलि मनहुँ विरचे बिधि ॥ ३५ ॥

विरचे विरचि घनाइ घाँची रुचिरता रचो नहीं ।

दसचारि भुवन निहारि देखि विचारि नहीं उपमा कहौ ॥

श्रुपि सग सोहत जात मगु छवि बसति सो तुलनी हिए ।

कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर सग मधु माधय लिए ॥ ३६ ॥

गिरि तर बेलि सरित सर विपुल बिलोकिहि ।

धावहिं बाल सुभाय, बिहंग मृग रोकहिं ॥ ३७ ॥

सपुचहिं मुनिहिं समीत बहुरि फिरि आगहिं ।

तोरि फूल फल किसलय-माल घनावहिं ॥ ३८ ॥

देखि चिनोद प्रमोद प्रेम कौसिक उर ।

करत जाहिं घन छाँह, सुमन बरषहिं सुर ॥ ३९ ॥

बधी ताडका, राम जानि सब लायक ।

विद्या मंत्र-रहस्य दिए मुनिनायक ॥ ४० ॥

मग-लोगन्ह के करत सफल मन लोचन ।

गए कौसिक आस्रमहिं विप्र भय-मोचन ॥ ४१ ॥

मारि निसाचर निकर यज्ञ करवायउ ।

अभय किए मुनिवृंद जगत जसु गायउ ॥ ४२ ॥

विप्र साधु सुर-काज महामुनि' मन धरि ।

रामहिं चले लिवाइ धनुषमख मिसु करि ॥ ४३ ॥

गोतमनारि उधारि पठै पतिधामहिं ।

जनकनगर लै गयउ महामुनि रामहिं ॥ ४४ ॥

लै गयउ रामहिं गाधि सुजन बिलोकि पुर हरये हिए ।

मुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुरु भूसुर'लिए ॥

रूप गहे'पाँय, असीस पाई मान आरुर अति 'किए ।

अवलोकि रामहिं अनुभवत'मनु प्रह्लासुख सौगुन दिए ॥ ४५ ॥

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ ।
 यँघेउ सनेह विदेह, विराग विरागेउ ॥ ४६ ॥
 प्रमुदित हृदय सराहत मल भगसागर ।
 जहँ उपजहिँ श्रस मानिक, विधि बड नागर ॥ ४७ ॥
 पुन्यपयोधि मातु-पितु ए मिसु सुखतय ।
 रूप सुधा सुख देत नयन अमरनि यय ॥ ४८ ॥

“केहि सुरुनी के कुँवर” कहिय मुनिनायर ।
 “गौर स्याम छविधाम धरे धनुसायर ॥ ४९ ॥
 विषयप्रमुख मन मोर सेइ परमारथ ।
 इन्हहिँ देखि भयो मग जानि बड स्वारथ” ॥ ५० ॥
 कहैउ सप्रेम पुलकि मुनिसुनि “महिपालक”
 ए परमारथरूप प्रसमय बालक ॥ ५१ ॥
 पूजन—वस—विभूषन वसरथनन्वन ।
 “राम राम अरु लपन सुरारि-निकन्दन” ॥ ५२ ॥
 रूप सील यय वस राम परिपूरन ।
 समुक्ति कठिन पन आपन लाग विसूरन ॥ ५३ ॥

लागे विसूरा समुक्ति पन मन बहुरि धीरज आनि कै ।
 ले चले देखावन रगभूमि अनेक विधि सनमानि कै ॥
 कौसिक सराही रुचिर रचना, जनक सुनि हरपित भय ।
 तउ राम लपन समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दय ॥ ५४ ॥

राजत राज समाज जुगल रघुकुलमनि ।
 मनहुँ सरदविधु उभय, नखत घरनीधनि ॥ ५५ ॥
 काकपञ्च सिर, सुभग सरोरुहलोचन ।
 गौर-स्याम सत कोटि काम-मद-मोचन ॥ ५६ ॥
 तिलक ललित सिर, मुकुटी काम-रमानै ।
 अवन विभूषन रुचिर देखि मन मानै ॥ ५७ ॥

नासा चिबुक कपोल अघर रद सुन्दर ।
 वदन सरद विधु निंदक सहज मनोहर ॥ ५८ ॥
 उर विस्तार धृपकध सुमग भुज अति धल ।
 पीत वसन उपवीत, कण्ठ मुकुताफल ॥ ५९ ॥
 कटि निपग, कर-कमलन्हि धरे धनुसायक ।
 सफल अग मनमोहन जोहन लायक ॥ ६० ॥
 राम लपन छवि देखि मगन भए पुरजन ।
 उर आनंद, जल लोचन, प्रेम पुलक तन ॥ ६१ ॥
 नारि परस्पर कहहि देखि दुहुँ भाइन्ह ।
 “लहेउ जनमफन आजु, जनमिजग आइन्ह ॥ ६२ ॥

जग जनमि लोचन लाहु पाप सकल सिवहि मगायहीं ।
 “वर मिलो सीतहि सावरो हम हरपि मगल गायहीं” ॥
 एक कहहि “कुरर किसोर कुलिस-कठोर सिवधनु है महा ।
 किमि लेहि घाल मराल मंदर नृपहि अस काहु न कहा” ॥ ६३ ॥

भे निरास सब भूप बिलोकत रामहि ।
 “पन परिहरि सिय देव जनक घर स्यामहि” ॥ ६४ ॥
 कहहि एक “भलि बात, ब्याहु भल होइहि ।
 घर दुलहिनि लागि जनक अपन पन खोइहि” ॥ ६५ ॥
 सुचि सुजान नृप कहहि “हमहि अस सूझइ ।
 तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल धूमइ ॥ ६६ ॥
 चितय न सकहु रामतन, गाल बजावहु ।
 विधि वस बलउ लजान, सुमति न लजावहु ॥ ६७ ॥
 अवसि राम के उठत सरासन टूटहि ।
 गवनिहि राजसमाज नाक असि फूटिहि ॥ ६८ ॥
 कस न पियहु भरि लोचन रूप सुधा-रसु ।
 करहु छतारय जनम, होहु कत नरपसु” ॥ ६९ ॥

दुहुँ दिसि राजकुमार विराजत मुनिवर ।
 नील पीत पायोज बीच जनु दिनकर ॥ ७० ॥
 काकपच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि ।
 लाल कमल जनु लाजत बाल-मनोजनि ॥ ७१ ॥

“मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवह ।
 विनु काज राजसमाज महँ तजि लाज आपु बिगोवह” ॥
 सिख देई भूपनि साधु भूप अनूप छबि देखन लगै ।
 रघुवस कैरवचन्द चितइ चकोर जिमि लोचन ठगै ॥ ७२ ॥

पुर-नर-नारि निहारहि रघुकुलदीपहि ।
 दोसु नैहवस देहि विदेह महीपहि ॥ ७३ ॥
 एक कहहि “भल भूप, देहु जनि दूपन ।
 नृप न सोइ विनु वचन, नाक विनु भूपन ॥ ७४ ॥
 हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हैउ ।
 पनमिस लोचनलाहु सबन्हि कहँ दीन्हैउ ॥ ७५ ॥
 अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि ।
 सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि ॥ ७६ ॥
 मथम सुनत जो राउ राम-गुन-रूपहि ।
 घोलि व्याहि सिय देव दोष नहि भूपहि ॥ ७७ ॥
 अव करि पेज पच महँ जो पन त्यागै ।
 विधिगति जानि न जाइ, अजसु जगजागै ॥ ७८ ॥
 अजहुँ अरसि रघुनन्दन चाप चढ़ाउब ।
 व्याह उछाह सुमगल त्रिभुवन गाउब” ॥ ७९ ॥
 लागि झरोखन्ह झारहि भूपतिभामिनि ।
 कहत बचन रद लसहि दमक जनु दामिनि ॥ ८० ॥

जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुन्दरि सोहरी ।
 मुनि टिंग देखाय सखिन्ह कुवर बिलोकि छबि मन मोहरी ॥

सियमातु हरपी निरपि सुखमा श्रुति अलौकिक राम की ।
हिय कहति "कहँधनु कुँवर कहँ विपरीत गति विधि वामकी" ॥ ८१ ॥

फहि प्रिय वचन सपिन्ह सन रानि विसूरति ।
'कहाँ कठिन सिवधनुष कहाँ मृदुमूरति ॥ ८२ ॥
जो विधि लोचनश्रुतिथि करत नहिँ रामहिँ ।
तौ फोड नृपहिँ न देत दोसु परिनामहिँ ॥ ८३ ॥
अर असमजस भयउ न कहु कहि आवै" ।
रानिहिँ जानि ससोच सखी समुझावै ॥ ८४ ॥
"देवि ! सोच परिहरिय, हरप हियश्रानिय ।
घाष चढाउव राम वचन फुर मानिय ॥ ८५ ॥
तीनि काल कर ज्ञान कौसिफहिँ करतल ।
सो कि स्वयवर आनहिँ बालक बिनु यल ?" ॥ ८६ ॥
मुनिमहिमा सुनि रानिहिँ धीरजु आयउ ।
तत्र सुबाहु सुदन-जसु सखिन सुनायउ ॥ ८७ ॥
सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरजइ ।
बहुरि निरखि रघुवरहिँ प्रेम मन करतइ ॥ ८८ ॥
तृप रानी पुरलोग रामतन चितवहिँ ।
मजु मनोरथ कलस भरहिँ अरु रितवहिँ ॥ ८९ ॥

रितवहिँ भरहिँ धनु निरपि छिनु छिनु निरखि रामहिँ सोचहीं ।
नर नारि हरप विपाद-बस हिय सकल सिवहिँ सकोचहीं ॥
तब जनक आयमु पाइ कुलगुरु जानिकिहिँ लै आयऊ ।
सिय रूपरासि निहारि लोचनलाहु लोगन्हिँ पायऊ ॥ ९० ॥

मगल भूपन बसन मजु तन सोहहिँ ।

देखि मूढ़ महिपाल मोहबस मोहहिँ ॥ ९१ ॥

रूपरासि जेहिँ ओर सुमाय निहारइ ।

नील-कमल-सर-श्रेणि मयन जनु डारइ ॥ ९२ ॥

छिनु सीतहि छिनु रामहि पुरजन देखहि ।
 रूप सील बय बस बिसेष बिसेषहि ॥ ६३ ॥
 राम दीख जव सीय, सीय रघुनायक ।
 दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक ॥ ६४ ॥
 प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहि ।
 जनु हिरदय गुन ग्राम धूनि धिर रोपहि ॥ ६५ ॥
 रामसीय बय समौ, सुभाय सुहावन ।।
 नृप जोबा छवि पुरइ चहत जनु आवन ॥ ६६ ॥
 सो छवि जाइ न बरनि देखि मन मानै ।
 सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै ? ॥ ६७ ॥
 तय त्रिदेह पन यदिन्ह प्रगटि सुनायउ ।
 उठे भूप आमरपि सगुन नहि पायउ ॥ ६८ ॥

नहि सगुन पायेउ रहे मिसु करि एरु धनु देवन गए ।
 टकटोरि कपि ज्यों नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए ॥
 इक करहि दाप, न चाप सजजन बचन जिमि टारे टरै ।
 नृप नहुप ज्यों सब के विलोकत बुझि बल बरबस हरै ॥ ६९ ॥
 देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ ।
 नृप समाज जनु तुहिन वनजयन मारेउ ॥ १०० ॥
 कौंसिक जनकहि कहेउ "देहु अनुसासन" ।
 देखि भानु-कुल भानु इसानु सरासन ॥ १०१ ॥
 मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहि ।
 तदपि उचित आचरत पाँच मल बोलहि ॥ १०२ ॥
 वानु वानु जिमि गयउ, गबहि दसकधरु ।
 फो अवनीतल इन्ह सम वीरधुरधरु ॥ १०३ ॥
 पारवती-मन सरिस अचल धनुचालक ।
 हहि पुरारि तेउ एक-नारि व्रत पालक ॥ १०४ ॥

सो धनु फहि श्रवलोकन भूप किसोरहि ।
 भेद कि सिरिस सुमनकन कुलिस कठोरहि ॥ १०५ ॥
 रोम रोम छवि निंदति सोम मनोजनि ।
 देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि ॥ १०६ ॥
 मुनि हंसि वहेउ जनक यह मूरति सो हरि ।
 सुमिरत सखत मोहमल सकल विछोहइ ॥ १०७ ॥

सब मल-विछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखइ ।
 धनुसिंधु नृप-धल-जल बढ्यो रघुवरहि कु भज लेपइ ॥
 सुनि सकुचि सोचहि जनक गुरुपद यदि रघुनदन चले ।
 नहिं हरप हृदय विषाद फलु भय सगुन सुभ मगल भले ॥ १०८ ॥

धरिसन लगे सुमन सुर, दु दुमि वाजहि ।
 मुदित जनक पुर-परिजन नृप गन लाजहि ॥ १०९ ॥
 महि महिधरनि लपन कह धलहि बढावन ।
 राम चहत सिधचापहि चपरि चढावन ॥ ११० ॥
 गय सुभाय राम जब चाप समीपहि ।
 सोच सहित परिचार विदेह महीपहि ॥ १११ ॥
 फहिन सकति फलु सकुचनि, सिध हिय सोचइ ।
 गोरि गनेस गिरीसहि सुमिरि स्तकोचइ ॥ ११२ ॥
 होति विरह-खर-भगन देखि रघुनाथहि ।
 फरकि घाम भुज नयन देहिं जनु हायहि ॥ ११३ ॥
 धीरज धरति, सगुन बल रहत सो नाहि ।
 घर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन ॥ ११४ ॥
 अतरजामी राम मग्ग सब जानेउ ।
 धनु चढ़ाइ कौतुकहि कान लगि तानेउ ॥ ११५ ॥
 प्रेम परखि रघुवीर सरासन भजेउ ।
 जनु मृग-राज किसोर मदागज गजेउ ॥ ११६ ॥

गजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लखरे ।
 रघुवीर जस मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे ॥
 हित मुदित, अनहित रुदित मुख छबि कहत कवि धनुजाग की ।
 जनु भोर चग चकोर कैरव सघन कमल तडाग की ॥ ११७ ॥

नभ पुर मंगलगान निसान गहागहे ।
 देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे ॥ ११८ ॥
 तब उपरोहित कहेउ, सखी सब गायत ।
 चलीं लेचाइ जानकिहि भा मनभागत ॥ ११९ ॥
 कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ ।
 बरनि सकै छबि अतुलित अस कवि को हइ ? ॥ १२० ॥
 सीय सनेह-सकुच-बस पिपतन हेरइ ।
 सुरतरु रुख सुरयेलि पवन जनु फेरइ ॥ १२१ ॥
 लसत ललित कर कमल माल पहिरायत ।
 कामफद जनु चदहि वनज फँसायत ॥ १२२ ॥
 राम-सीय-छबि निरुपम, निरुपम सो दिनु ।
 सुखसमाज लखि रानिन्ह आनंद छिनु छिनु ॥ १२३ ॥
 प्रभुहि माल पहिराइ जानकिहि लै चली ।
 सखी मनहुँ विधु उवय मुदित कैरव-रुली ॥ १२४ ॥
 घरपहिं विबुध प्रसून हरषि कहि जय जय ।
 सुख सनेह भरे भुजन राम गुरु पहिं गय ॥ १२५ ॥

गण राम गुरु पहिं, राउ रानी नारि नर आनंद भरे ।
 जनु तृपित करि करिनी-निकर सीतल सुधासागर परे ॥
 कौस्तुभहि पूजि प्रससि आयसु पाद नृप सुख पायऊ ।
 तिखि लगन तिलक समाज सजि कुलगुरुहि अग्रध पठायऊ ॥ १२६ ॥
 गुनि, गन धोलि कहेउ नृप माइय छावन ।
 गावहिं गीन सुवासिनि, यात्र बधायन ॥ १२७ ॥

सीय-राम हित पूजहि गौरि गनेसहि ।
 परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि ॥१२८॥
 प्रथम हरदि वेदन करि मंगल गावहि ।
 करि कुलरोति, कलस यपि तेलु चढावहि ॥१२९॥
 गे मुनि अवध, विलोकि सुसरित नहायउ ।
 सतानन्द सत-कोटि नाम-फल पायउ ॥१३०॥
 नृप सुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ ।
 दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ ॥१३१॥
 सुनि पुर भयउ अनद बधाव बजावहि ।
 सजहि सुमंगल कलस यितान बनावहि ॥१३२॥
 राउ छाँडि सब काज साज सब साजहि ।
 चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहि ॥१३३॥
 बाजहि ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि ।
 सियनैहर जनकोर नगर नियराइन्हि ॥१३४॥

नियगनि मगर बरात हरषी लेन अगवानी गय ।
 देखत परस्पर मिलत, मानत, प्रेम परिपूरन भय ॥
 आनद पुर कोतुक कोलाहल बनत सो बरनत कहाँ ।
 लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ ॥१३५॥

गे जनवासहि कौसिक रामलपन लिप ।
 हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिप ॥१३६॥
 हृदय लाइ लिप गोद मोद अति भूपहि ।
 कहि न सकहि सत सेय अनद अनूपहि ॥१३७॥
 राय कौसिकहि पूजि दान विप्रन्ह दिप ।
 राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए ॥१३८॥
 व्याह-बिभूषन भूषित भूषन—भूषन ।
 बिस्वविलोचन, बनजबिकासक पूषन ॥१३९॥

मध्य घरात विराजत अति अनुकूलैउ ।
 मनहुँ काम आराम कल्पतरु फुलेउ ॥१४०॥
 पठई भेंट बिदेह बहुत बहु भातिन्ह ।
 देखत देव सिद्धार्हि अनद घरातिन्ह ॥१४१॥
 घेद-विहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर ।
 पठई घोलि घरात जनक प्रमुदित उर ॥१४२॥
 जाइ कहैउ "पगु धारिय" मुनि अपधेसहि ।
 चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहि ॥१४३॥

चले सुमिरि गुरु सुर सुमन वरपहिं परे बहुविधि पाँवडे ।
 सनमानि सय विधि जनक दसरथ किए प्रेम कनाउडे ॥
 गुन सकल सम समधी परस्पर मिलत अति आनंद लहे ।
 जय धन्य जय जय धन्य धन्य विलोकि सुर नर मुनि कहे ॥१४४॥

तीनि लोक अपलोरुहिं नहिं उपमा कीउ ।
 दसरथ जनक समान जनक दसरथ दोउ ॥१४५॥
 सजहिं सुमगत साज रहस रनिवासहिं ।
 गान करहिं पिकरुनि सहित परिहासहिं ॥१४६॥
 उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भई ।
 कपट नारि वर वेष विरचि मडप गई ॥१४७॥
 मंगल आरति साजि वरहिं परिछन चली ।
 अनु विगसी रवि-उदय वनक-पकज-कली ॥१४८॥
 नय सिन सुन्दर रामरूप जब देखहिं ।
 सब इन्द्रिन्ह महँ इन्द्रबिलोचन लेखहिं ॥१४९॥
 परम प्रीति कुलरीति करहिं गजगामिनि ।
 नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि ॥१५०॥
 नेगचारु कहँ नागरि गहरु लगावहिं ।
 निरखि निरखि आनद सुलोचनि पावहिं ॥१५१॥

करि आरती निछायरि बरहि निदरहि ।

प्रेममगन प्रमदागन तनु न सम्हारहि ॥१५२॥

नहि तनु सम्हारहि, छुबि निहारहि निमिष रिपु जनु रन जप ।

चबवै-लोचन रामरूप-सुराज-सुख भोगी भय ॥

तब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दप ।

कौस्तिक बसिष्ठहि पूजि पूजे राउ वै अवर नप ॥१५३॥

देत अरघ रघुवीरहि मडप लै चली ।

करहि सुमगल गान उमंगि आनंद अली ॥१५४॥

घर विराज मडप महँ विश्व विमोह ।

अनु बसत धनमध्य मदन जनु सोह । ॥१५५॥

कुल विवहार, वेदविधि चाहिय जहँ जस ।

उपरोहित दोउ बरहि मुदित मन तहँ तस ॥१५६॥

घरहि पूजि नृप दीन्ह सुमग सिंहासन ।

चली दुलहिनिहि व्याइ पाइ अनुसासन ॥१५७॥

जुबति जुत्य महँ सीय सुभाइ विराज ।

उपमा कहत लजाइ भारती भाज ॥१५८॥

दुलह दुलहिनिहि देखि नारि नर हरपहि ।

छिनु छिनु गान निसान सुमन सुर घरपहि ॥१५९॥

लै लै नाउँ सुआसिनि मगल गावहि ।

कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजाजहि ॥१६०॥

अग्निनि थापि मिथिलेस कुसोदर लीन्हेउ ।

कन्यादान विधान सकलप कीन्हेउ ॥१६१॥

संकल्प सिय रामहि समर्पि सीत सुख सोभामई ।

जिमि सकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्री सागर दइ ॥

सिंदूरचदन होम लाजा होन लागी भौवरी ।

सिलपोहनी करि मोहनी मन हखो मूरति साँवरी ॥१६२॥

यहि विधि भयो विवाह उछाह तिहुँपुर ।
 देहिं असीस मुनीस सुमन घरपहिं सुर ॥१६३॥
 मनभावत विधि कीन्ह, मुदित मामिनि भई ।
 घर दुलहिनिहि लेवाइ सखी कोहवर गई ॥१६४॥
 निरखि निछावरि करहिं बसन मनि छिनु छिनु ।
 जाइ न बरनि विनोद मोदमय सो दिनु ॥१६५॥
 सियभ्राता के समय भोम तहैं आयउ ।
 दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनायउ ॥१६६॥
 चतुर नारिखर कुँवरिहि रोति सिखावहिं ।
 देहिं गारि लहकौरि समो सुख पावहिं ॥१६७॥
 जुआ खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह ।
 जीति द्वारि-मिस देहिं गारि-दुहुँ रानिन्ह ॥१६८॥
 सीयमातु मन मुदित उतारति आरति ।
 यो कहि सफइ अनद मगन भइ भारति ॥१६९॥
 जुगतिजूय रनिबास रहस बस यहि विधि ।
 देखि देखि सिय राम सफल भगलनिधि ॥१७०॥

भगलनिधान विलोक लोचन-लाह लटति नागरी ।
 दइ जनक तीनिहु कुँवर कुँवरि बियाहि सुनि आनंद भरी ॥
 कटयान मो दहयान पाइ प्रितान छवि मन मोहई ।
 सुरधेनु, ससि, सुरमति सहित मानहुँ कलपतरु सोहई ॥१७१॥

जनक-अनुज तनया दुइ परम मनोरम ।
 जेठि भरत कहैं ब्याहि रूप रति सय सम ॥१७२॥
 सिय लघु-भगिनि लपन कहैं रूप उजागरि ।
 लपन अनुज श्रुतिकीरति सब गुन आगरि ॥१७३॥
 राम विवाह समान ब्याह तीनिउ भए ।
 जीवन फल, लोचन-फल, विधि सब कहैं दए ॥१७४॥

दाइज भयउ विविध-विधि, जाइ न सो गनि ।
 दासी, दास, वाजि, गज, हेम, बसन, मनि ॥१७५॥
 दान मान परमान प्रेम पूरन किए ।
 समधी सहित बरात विनय बस करि लिए ॥१७६॥
 गे जनवासेहि राउ, सग सुत सुतबहु ।
 जनु पाए फन चारि सहित साधन चहुँ ॥१७७॥
 चहुँ प्रकार जेवनार भइ बहू भोतिन्ह ।
 भोजन करत अयधपति सहित बरातिन्ह ॥१७८॥
 देहिं गारि घर नारि नाम लै दुहुँ दिसि ।
 जेयत बढेउ अनन्द, सोदायनि सो निसि ॥१७९॥

सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने बाजहिं भले ।
 नृप कियो भोजन पान पाइ प्रमोद जनवासेहि चले ॥
 नट भाट मागध सुत जाचक जस प्रतापहि बरनहीं ।
 सानद भूसुर वृद्ध मनि गज देत मन करपै नहीं ॥१८०॥

करि करि विनय कलुष दिन राखि बरातिन्ह ।
 जनक कीन्ह पहुनाइ अगनित भातिन्ह ॥१८१॥
 'प्रात बरात चलिहि' सुनि भूपति भामिनि ।
 परि न बिरह बस नींद बीति गइ जामिनि ॥१८२॥
 घरभर नगर, नारि नर विधिहि मनावहिं ।
 बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं ॥ १८३ ॥
 सकल चलन के साज जाक साजत भए ।
 भाइन्ह सहित राम तब भूप भजन गए ॥ १८४ ॥
 सासु उतारि आरती करहिं निछावरि ।
 निरखि निरखि हिय हरपहिं मूरति साँवरि ॥ १८५ ॥
 मांगेउ बिदा राम तब, सुनि करुना भरी ।
 परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी ॥ १८६ ॥

सो समौ कहत न घनत कलु सब भुवन भरि करुना रहे ।
 तब कीन्ह कोसलपति पयान निसान बाजे गहगहे ॥ १६८ ॥
 पय मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए ।
 डारहिं आखि देखाइ कोप दारुन किए ॥ १६९ ॥
 राम कीन्ह परितोष रोष रिस परिहरि ।
 चले साँपि सारग सुफल लोचन करि ॥ २०० ॥
 रघुवर-भुज-बल देखि उछाह बरातिन्ह ।
 मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह ॥ २०१ ॥
 पहि विधि क्याहि सफल सुत जग जस छायउ ।
 मंगलोगनि सुख देत अवधपति आयउ ॥ २०२ ॥
 होहिं सुमगल सगुन सुमन सुर वरपहिं ।
 नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरपहिं ॥ २०३ ॥
 घाट धाट पुर द्वार बजार बनावहिं ।
 धीधी सींचि सुगंध सुमगल गावहिं ॥ २०४ ॥
 चौके पूरे चारु कलस धरज साजहिं ।
 विविध प्रकार गहगहे वाजन वाजहिं ॥ २०५ ॥
 बदनवार बितान पताका घर घर ।
 रोपैं सफल सपल्लव मंगल तरुवर ॥ २०६ ॥

मंगल विटप मञ्जुल विपुल दधि दूध अञ्जुत रोचना ।
 भरि थार आरति सजहिं सब सारग-सावक-लोचना ॥
 मन मुदित कौसल्या सुमित्रा सकल भूपति-भामिनी ।
 सजि नाजि परिछुन चलीं रामहिं मत्त-हु जरगामिनी ॥ २०७ ॥

बधुन्ह सहित सुत चारिउ मातु निहारहिं ।
 बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं ॥ २०८ ॥
 करहिं निछावरि छिनु छिनु मंगल मुद भरीं ।
 दुलह दुलहिनिन्ह देखि प्रेम-पय निधि परीं ॥ २०९ ॥

देत पाँवडे अरघ चलीं लै सादर ।
 उमगि चलेउ आनद भुवन भुईं वादर ॥ २१० ॥
 नारि उदार उधारि दुलहिनिन्ह देखहिं ।
 नैन-लाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं ॥ २११ ॥
 भवन आनि सनमानि सकल भगल किए ।
 बसन फनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए ॥ २१२ ॥
 जाचक कीन्ह निहाल असीसहिं जहँ तहँ ।
 पूजे देव पितर सब राम उदय कहँ ॥ २१३ ॥
 नेगचार करि दीन्ह सबहि पहिरावनि ।
 समधी सकल सुआसिनि गुरुतिय पावनि ॥ २१४ ॥
 जोरी चारि निहारि असीसत निकसहिं ।
 मनहुँ कुमुद बिधु उदय मुदित मन बिकसहिं ॥ २१५ ॥
 बिकसहिं कुमुद जिमि देखि बिधु भइ अवध सुख सोभामई ।
 * एहि जुगुति राम विवाह गावहिं सफल कवि कीरति नई ॥
 उपवीत व्याह उछाह जे सिय राम भगल गावहीं ।
 तुलसी सकल कव्यान ते नर नारि अनुदिनु पानहीं ॥ २१६ ॥



जानकी-मंगल

(टिप्पनियाँ)

१-शब्दार्थ—गिरिजापति = गिरि = पर्वत + जा = उत्पन्न हुई, पहाड़ से उत्पन्न हुई पार्वती । गौरी पार्वती । गिरापति = गिरा = सरस्वती का पति अर्थात् ब्रह्मा । सा (शा) रद = शारदा, सरस्वती । शेष = शेषनाग । स्मृति = श्रुति, वेद ।

अर्थ—शुरू (श्रीनरहरिदासजी), गणेश, शिव, पार्वती, ब्रह्मा, सरस्वती, शेषनाग, अच्छे कवि, वेद और सरलमति (छल रुपट रहित बुद्धि) वाले सत ।

२-शब्दार्थ—विनय = विनती करना । यथामति = बुद्धि के अनुसार ।

अर्थ—इन सबको विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर शिर नवाता (प्रणाम करता) हूँ, और अपनी बुद्धि के अनुसार सीता और राम के विवाह (की कथा) को गाता हूँ ।

३-शब्दार्थ—स्वयम्बर = अपनी इच्छानुसार घर करना ।

अर्थ—आनन्द दायक स्वयम्बर (स्वयम्बर की कथा—यह जानकी मंगल) अच्छे दिन बनाया है । (इसको) कानों से सुनने से श्रीसीताजी और रघुनाथजी (सुनने वाले के) हृदय में वास करते हैं ।

४-शब्दार्थ—उत्थानिय = बखाना, बखान किया । भूमितिलक = पृथ्वी के तिलक के सदृश अर्थात् भूमरुदल भर में श्रेष्ठ । तिरहुत = मिथिला, बिहार प्रान्त का एक जिला और नगर ।

अर्थ—पैदों के द्वारा वर्णित पवित्र और सुहावने तिरहुत देश को तीनों लोकों में भूमि के तिलक के समान जानिये ।

५-शब्दार्थ—परम = अत्यन्त । उजागर = विख्यात, चमकदार । लच्छि = लक्ष्मी । प्रकटी = उत्पन्न हुई ।

अर्थ—वहाँ (तिरहुत देश में) अति सुन्दर जनकपुर नामक नगर वसता है, जिसमें सब सुखों की खानि लक्ष्मी (रूपिणी) श्रीसीताजी प्रकट हुई ।

६-शब्दार्थ—नरनायक = नरेश, राजा । गुर (ग) अग्रधि = गुणों की सीमा । पटतर = उपमा ।

अर्थ—उस नगर में सब गुणों की अग्रधि (जिससे अधिक गुणी न हो सके) और अपनी समानता योग्य दूसरा व्यक्ति न रखने वाले जनक नामक राजा रहते थे ।

७-शब्दार्थ—नरवइ = (नरपति) राजा । सुता = लडकी । भै = हुई । जासु = जिसकी ।

अर्थ—सब भगलों (सुखों या गुणों) वाली श्रीसीताजी जिनकी पुत्री हुई, उन जनक के समान राजा ७ (पहले) हुआ, न (अब) है और न (आगे) होगा ।

८-शब्दार्थ—परिमत = सलाह करके । शिवधनु = शिवजी का धनुष । धरिपन = प्रण करके ।

अर्थ—राजा ने कुँवरि (सीताजी) को सयाती (विवाह योग्य) देण, गुरु (शतानन्दजी) और परिवार के मनुष्यों को बुला, सलाह करके शिवजी के धनुष की प्रतिष्ठा (शर्त) करके (सीता जी का) स्वयम्बर रचा ।

९-शब्दार्थ—रुविर = सुन्दर, रुचने वाला । चतुगानन = ब्रह्मा । सदेश = खबर ।

अर्थ—राजा ने स्वयम्बर की रचना कर महादेवजी के धनुष की शर्त लगाई (जो धनुष को तोड़ेगा उसी को सीताजी

वरेंगी) स्वयंवर की रचना बहुत ही सुन्दर हुई, मानो प्रजाजी ने अपनी सारी चतुराई प्रकट करके दिखायी । इसके पश्चात् देश-देश में (सीय स्वयंवर का) सँदेश भेजा, जिसे सुन सुन सब राजा लोग सुखी होते थे और अपनी-अपनी मङ्गली सजा कर जनरपुर आते थे ।

१०-शब्दार्थ—सी (शी) ल = सभा, सचरित्र । यय = आयु । विरुद = (विरुद) प्रशंसा, यश । पुरन्दर = इन्द्र । निकर = समुदाय, झुण्ड । अघनी = पृथ्वी ।

अर्थ—(स्वयंवर में आने वाले राजा) सुन्दरता, शील, प्रसूता, तुल, प्रतिष्ठा, बल, और समाज आदि सब बातों में अच्छे थे । (जनरपुर को आते हुए वे लोग ऐसे मालूम होते थे) मानो इन्द्रों के समुदाय (स्वर्ग से) उतर कर पृथ्वी पर जा रहे हों ।

११-शब्दार्थ—दानव = दैत्य, वन की सन्तान । किन्नर = एक जाति विशेष, देवताओं के गवैये । अहि = साँप, नाग जाति के लोग । कहा जाता है कि किन्नरों का मुँह घोड़े का सा और शरीर आदमी का सा होता है । नाग लोगों के कमर से ऊपर का भाग मनुष्यों का सा और नीचे का सर्प का सा होता है ।

अर्थ—(सीताजी के स्वयंवर का समाचार) सुन दैत्य, देवता, राक्षस, किन्नर (देवताओं की एक विशेष जाति—देवताओं के गायक) और नाग जाति के लोग भी प्रसन्न मन हो राजाओं का सा रूप बना कर (जनरपुर को) चले ।

१२-शब्दार्थ—पुर-पैठहि = नगर में प्रविष्ट होते हैं । घरहि धनुषाय = दौड़ कर धनुष उठाते हैं । नाइसिर = सिर नचाकर, लज्जित होकर ।

अर्थ—(स्वयंवर में जाने वालों का ऐसा ताँता बघ गया है कि) कोई (अपने घर से) चल रहा है, कोई धीव मार्ग में है और कोई (जो जनकपुर पहुँच चुके हैं वे) नगर में प्रवेश कर रहे हैं । (स्वयंवर भूमि में पहुँचे हुएों में से) कोई धनुष को उठाते हैं पर (जब धनुष नहीं उठता तो लज्जा से) शिर झुका कर बैठ जाते हैं ।

१३-शब्दार्थ—रगभूमि = नाटक करने का स्थान, यहाँ धनुषयज्ञ के मण्डप से मतलब है । ललकि = लालसा पूर्वक, उत्सुकता से । लुभाहि = मुग्ध हो जाते हैं । पारहि = सकते हैं ।

अर्थ—(इन स्वयंवर में आए हुए राजाओं में से) कोई रगभूमि (की रचना) और नगर (की शोभा) का तमाशा देखते हैं, और (वहाँ के मनोरम दृश्यों में) उनके नेत्र और मन लटका कर ऐसे मुग्ध हो गए हैं कि (वहाँ से) उन्हें लौटा नहीं सकते ।

१४-शब्दार्थ—सिहाहि = मन ही मन प्रसन्न होते हैं । भीर = भीड़ ।

अर्थ—(कोई राजा आगन्तुकों का) सम्मन करते हुए जनक को देख कर सिहाते हैं (प्रसन्न होते हैं) । जनकपुरी के बाहर और भीतर इतनी भीड़ है कि बचन नहीं किया जाता ।

१५-शब्दार्थ—कोलाहल = हल्ला । निसान = नगाड़े-बाजे । उल्लाह = उत्साह । कापह = किस से ।

अर्थ—(जनकपुर में) कहीं गाना होता है, वहाँ निसान (नगाड़े) बजते हैं, कहीं (मीठ भाड का) शोर हो रहा है, और कहीं खेल-तमाशे हो रहे हैं । सीताजी के विवाह के उत्साह का वर्णन किससे किया जा सकता है ?

१६-शब्दार्थ—गाधि सुवन = राजा गाधि के सुवन (पुत्र) । विश्वामित्र । सिधायउ = सिधारे ।

अर्थ—(जब जनकनगर में सीताजी के स्वयंवर की तय्यारी हो रही थी) उसी समय विश्वामित्रजी अयोध्यापुरी में पधारे । राजा (दशरथ) ने उनका सम्मान किया और उन्हें घर ले आए ।

१७-शब्दार्थ—पहुँई = महमानदारी, आतिथ्य । पाहुन = महमान । सुकृत = पुण्य ।

अर्थ—(राजा दशरथ ने विश्वामित्र जैसा) प्यारा आतिथ्य पाकर उनका पूजा तथा आतिथ्य किया, और बोले 'मेरे समान किसी ने भी पुण्य न किए होंगे ।'

१८-शब्दार्थ—बखानहीं = प्रशंसा करते हैं । भाग = भाग्य । सोहाग = सोभाग्य । भरीं = युक्त । सुतन्ह = पुत्रों का ।

अर्थ—“मेरे समान किसी ने भी सुकर्म नहीं किए” ऐसे (दशरथ के वचन) सुन प्रसन्न हुए विश्वामित्रजी राजा की प्रशंसा करते थे । राजा (दशरथ) और मुनि (विश्वामित्र) के परस्पर मिलने के सुख को उन्होंने (राजा और मुनि) के मन जानते थे । (इसके आन्तर) प्रेम, भाग्य, सोभाग्य, शीन सीन्दर्य और पाहुन से मूषणों भरीं (युक्त) रानियाँ (कौशल्या आदि) दृश्य में प्रसन्न हो, पुत्रों (रामचन्द्रादि) सहित आरर ऋषि के पैरों में पड़ीं ।

१९-शब्दार्थ—शौशिक = विश्वामित्र । कल्पलता = इच्छित फल देने वाली वेल विशेष ।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने (रानियों को) आशीर्वाद दिया (जिसे पाकर) वे सब इस भाँति प्रसन्न हुईं, जैसे अमृतरस से सींची हुई, कल्पलता नई (हरी भरी) होजाती है ।

२०-शब्दार्थ—जोहेउ = देखा । नन नीर = आसू । मोहेउ = मोहित कर लिया ।

अर्थ—जब मुनि ने भाइयों सहित रामचन्द्रजी की देखा, तो उनके (विश्वामित्रजी के) नेत्रों में (प्रसन्नता के) आसू भर आए और शरीर पुलकित हो गया । (चारों भाइयों के) रूप ने मुनि के मन को मोह लिया ।

२१-शब्दार्थ—परसि = छू कर । पयोधि = समुद्र । मगन = मस्त, लीन, प्रसन्न ।

अर्थ—(उस समय विश्वामित्रजी) प्रसन्न होकर (चारों राजकुमारों के) शिर को अपने कमल समान हाथों से छूकर (उन्हें) हृदय से लगाते हैं । प्रेम सागर में डूबे हुए मुनि (उस प्रेम सागर का) पार नहीं पाते ।

२२-शब्दार्थ—चाहहि = चाहते हैं, प्रेम करते हैं ।

अर्थ (विश्वामित्रजी उन राजकुमारों की) मधुर और मनोहारिणी मूर्तियों को आदर सहित प्रेम करते हैं, और बार बार राजा वशरथ के पुण्यों की प्रशंसा करते हैं ।

२३-शब्दार्थ—सुहावन = सुहावना । पावन = पवित्र ।

अर्थ—(इसके अनन्तर) राजा ने हाथ जोड़ कर उत्तम और सुहावने वचन कहे—“हे मुनीश्वर (मैं आज) आपके पवित्र चरणों को देख कर कृतार्थ हो गया ।

२४-शब्दार्थ—पूरन (पूण) काम = निष्काम, या जिसकी कामना पूरी हो गई है, अथवा जो कामना पूरी करने वाले हैं । ब्रूत = पूछते हुए ।

अर्थ—हे स्वामी, आप पूर्णकाम (इच्छा रहित) और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों फलों के देने वाले हो, इसलिए

हे मुनिराज (मैं आपसे) यह पूछने में डरता हूँ कि आप किस कार्य के लिए पधारे ।

२५-शब्दार्थ—काजहि = कामसे ।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने (उपर्युक्त) राजा के वचन सुन कर उसकी (राजा की) सराहना की और (फिर कुछ) धर्म-कथा कह कर जिस काम के लिए गए थे वह भी कहा ।

२६-शब्दार्थ—महीसहि = राजा को ।

अर्थ—जब मुनीश्वर ने राजा को कार्य बनाया तब राजा स्नेह और सत्य के वश में हो गए और उनसे उत्तर न दिया गया ।

२७-शब्दार्थ—उतर = उत्तर । रघुरति = श्रीरामचन्द्र । घनी = बहुत ।

अर्थ—वशिष्ठ मुनि ने जब यह देखा कि राजा से विश्वामित्रजी की बात (याचना) का कुछ उत्तर देते नहीं बना तो उन्होंने उसे (राजा को) समझाया । विश्वामित्रजी के तप और तेज का घखन करके कुछ रामचन्द्रजी का बल तथा प्रताप भी जनाया (बताया) । वशिष्ठजी के वचन सुन कर राजा दशरथ ने कुछ धैर्य धारण किया और हाथ जोड़ कर कहा कि दयासागर और सज्जन शिरोमणि से अधिक विनय करनी भी अच्छी नहीं ।

२८-शब्दार्थ—राजनहार = रत्नक या रत्नवाला ।

अर्थ—हे नाथ ! घर में और यन में (सब जगह) मुझे पालनों तथा नगर और पुट्टम्ह के मनुष्यों सहित रत्नमेवाला आपका अनुग्रह ही है ।

२९-शब्दार्थ—सन = से । गहे = पकड़े ।

अर्थ—राजा ने मुनि से बहुत प्रकार से दीन वचन बदे और राम तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों को (मुनि के लिए)

साँप कर उनके (विश्वामित्र के) चरण कमल गहे (छुए या पकड़े) ।

३०-शब्दार्थ—आयसु=आदेश, आज्ञा । कटि=कमर ।
निपग=तरकस । पीत पट=पीला वस्त्र । करनि=हाथों में ।
सर=शर, बाण ।

अर्थ—(राम और लक्ष्मण) माता-पिता से (विश्वामित्र जी के साथ जाने की) आज्ञा पाकर गुरु (वशिष्ठजी) के पैरों पड़े । (उस समय राम-लक्ष्मण) कमर में तरकस, पीले वस्त्र और हाथों में धनुष बाण धारण किये हुए थे ।

३१-शब्दार्थ—सग दिये मन=मन साथ दे दिया, स्वयम् नहीं गये पर मन साथ गया । बेगि=जल्द । रघुनन्दन=रघु को प्रसन्न करने वाले रामचन्द्र ।

अर्थ—(जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्रजी के साथ जाने लगे तब) नगर निवासियों एवं राजा और गनियों ने (अपने) मन (राम और लक्ष्मण के) साथ कर दिये (अर्थात् वे लोग शरीर से तो उनके साथ नहीं गए पर मन उन्हीं में लगा रहा) और कहा, हे रघुनन्दन ! काज (विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षार्थ राक्षसों का विनाश) करके सकुशल जल्दी लौटना ।

३२-शब्दार्थ—ईस=महादेव । जन्मै जनि धार=घाल भी चाका न हो । गहर=देर । जनि=न । मनाइ=मना कर, विनती करके ।

अर्थ—(सब लोग) महादेव की मनौती करके (राम-लक्ष्मण को) आशीर्वाद देते हैं कि (तुम राक्षसों पर) जीत और (लोक में) यश पाओ, (तुरन्त और तो क्या) स्नान करते हुए घाल भी न गिरे और तुम देर में न आओ अर्थात् शीघ्र ही लौट आओ ।

३३-शब्दार्थ—सानुज=अनुज अर्थात् छोटे भाई सहित ।
नए=नवे, भुके ।

अर्थ—(राम के मुनि विश्वामित्र के साथ) चलते समय सभी पुरवासी रामजी के प्रियोग से व्याकुल हो गए, और भरतजी अनुज (छोटे भाई शत्रुघ्न) सहित प्रेम पूर्वक राम के पैरों में भुके ।

३४-शब्दार्थ—जनु=मानो । मुनि=विश्वामित्र से अभि-
प्राय है । गवन=गमन, जाना ।

अर्थ—(राम लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ चलते समय) शुभ शकुन होते थे, मानो आगे होने वाले किसी मंगल की सूचना देते थे । उसी समय राम लक्ष्मण ने विश्वामित्र के साथ गमन किया ।

३५-शब्दार्थ—सुखमा=शोभा । किलो (शो) र=१० से १५ वर्ष की आयु वाला । निधि=खजाना । सकेलि=एक जगह जमा करके । त्रिरचे=बनाया ।

अर्थ—(राम-लक्ष्मण) क्रम से श्याम और गोरे रंगवाले तथा किशोर (१० और १५ वर्ष के बीच की) अवस्था के और मनोहरता के खजाने हैं । मानो ब्रह्मा ने (ससार भर की) समस्त शोभा इकट्ठी करके उन्हें रचा है ।

३६-शब्दार्थ—बनाइ=बना कर । बाँची=बची । रचो=रचक मात्र, जरासी भी । रुचिरता=सुन्दरता । छवि=शोभा । दिन-नाथ=सूर्य । मधु=चैत्र । माघव=वैशाख ।

अर्थ—ब्रह्मा ने (राम लक्ष्मण को) सम्माल कर इतना सुन्दर बनाया है कि उसके पास थोड़ी सी भी सुन्दरता नहीं बची अर्थात् ब्रह्मा ने सारी सुन्दरता राम लक्ष्मण के बनाने में ही खर्च कर दी है । चौदहों भुवनों में खोज और विचार के

देखने पर भी (राम-लक्ष्मण) की उपमा कहीं नहीं मिली । विश्वामित्र के साथ मार्ग में जाते हुए राम लक्ष्मण जैसे सुशोभित थे वही शोभा तुलसीदासजी के हृदय में बस रही है । (राम लक्ष्मण को साथ लेकर जाते हुए विश्वामित्र ऐसे मालूम होते थे) मग्नो सूर्य, चैत्र और वैशाख को साथ लेकर उत्तर दिशा को जाते हैं ।

३७-शब्दार्थ—सर=तालाब । विपुल=बहुत । विहग=पक्षी । मृग=हिरन ।

अर्थ—(मार्ग में जाते हुए राम-लक्ष्मण) बहुत से पहाड़, वृक्ष, ताल, नदी और तालाबों को देखते हैं । कभी बालकपन के (चञ्चल) स्वभाव से दौड़ने लगते और कभी (जंगल के) पशु-पक्षियों को रोकने लगते थे ।

३८-शब्दार्थ—सकुचहिं=शरमाते हैं । फिरआवहिं=लौट आते हैं । किस (श) लय=कौपल ।

अर्थ—(दोनों भाइ) मुनि से सजुचाते थे । (कभी वन्य पशु पक्षियों को घेरते हुए इधर उधर चले जाते थे और) ऋषि का भय मान कर फिर लौट आते थे । कभी फूल, फल और पत्तों को तोड़ तोड़ कर उनकी माला बनाते थे ।

३९-शब्दार्थ—विनोद=हँसी-खेल । उर=हृदय । सुमन=फूल । घन=मेघ, बादल ।

अर्थ—(उन दोनों बालकों के) खेल देख कर विश्वामित्रजी के हृदय में प्रेम और आनन्द उत्पन्न होता था । (मार्ग में चलते हुए राम लक्ष्मण पर) बादल छाया करते और देवता फूल बरसाते जाते थे ।

४०-शब्दार्थ—ठाडका=एक राक्षसी । विद्या=शस्त्र विद्या । रहस्य=भेद । दिये=बताए, समझाए ।

अथ—राम ने ताड़का राजासो को मार दिया । मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने राम को सब भाति योग्य जानकर उन्हें शस्त्रास्त्र विद्या के मन्त्र और गुप्तभेद बता दिये ।

४१-शब्दार्थ—विप्र भय मोचन = ब्राह्मण का भय दूर करने वाले (रामचन्द्रजी)

अर्थ—ब्राह्मणों के भयों को दूर करने वाले (श्रीराम) मार्ग के लोगों के मनों और नेत्रों को सफल करते हुए विश्वामित्र के आश्रम को गए ।

४२-शब्दार्थ—निसा (शा) चर = रात में चलने वाले राजास । निकर = कुण्ड । धृन्द = भुण्ड । जग्य = यज्ञ ।

अथ—(राम-जक्ष्मण ने) राजासों के समुदाय को मारकर (विश्वामित्र के) यज्ञ कराये और मुनि-समाज को निर्भय कर दिया इसलिए ससार ने उनका यशोगान किया ।

४३-शब्दार्थ—माधारि = हृदय में विचार कर । धनुष मल = धनुष यज्ञ । मिस करि = बहाना करके ।

अर्थ—महामुनि (विश्वामित्रजी) ब्राह्मण, साधु और देवताओं के कार्य को मन में विचार, धनुषयज्ञ का बहाना करके राम को (जनकपुरी को लिया चले) ।

४४-शब्दार्थ—गोतम नारि = गोतम मुनि की स्त्री अहल्या । उधारि = उद्धार करके । महामुनि = विश्वामित्र ।

अर्थ—विश्वामित्रजी (श्रीराम के द्वारा) गोतम मुनि की स्त्री (अहल्या) का उद्धार कर और उसे पति के स्थान (गोतमजी के पास स्वर्ग) में भेज कर, राम को जनकपुर ले गए ।

४५-शब्दार्थ—राव = राजा । सचिव = मन्त्री । भूसुर = पृथ्वी के देवता, ब्राह्मण । अनुभवत = अनुभव करते हैं ।

अर्थ—गाधि-स्तुत (विश्वामित्र) राम को (जनकपुर) ले गये । राम-लक्ष्मण जनकपुर को देखकर हृदय में अति प्रसन्न हुए । (राम-लक्ष्मण का सहित विश्वामित्र का) आना मुन-कर (राजा जनक) मन्त्री गुरु और ब्राह्मणों को साथ लेकर (विश्वामित्रजी का) स्वागत करने के लिए आगे (मार्ग ही में) गए, और उनके पाव छुए पथ आशीर्वाद पाया । (राजा जनक ने महामुनि विश्वामित्रजी का) बहुत ही आदर-सत्कार किया । राम को देख कर तो जनक ऐसा अनुभूत कर रहे थे मानो (ईश्वर ने उनसे) ब्रह्मानन्द से भी सौगुना बढ़ कर सुख दिया हो ।

४६-शब्दार्थ—अनुरागेउ = अनुरक्त होगया । विदेह = ब्रह्म में लीन होकर अपने शरीर की भी सुधि भूल जाने वाला जनक । विराग = वैराग्य । विरागेउ = दूर हो गया ।

अर्थ—(राजा जनक) श्रीरामचन्द्र की मनोहर मूर्ति देख-कर मन ही मन (उनसे) प्रेम करने लगे । वे (जनक) विदेह (इतने छानी जिन्हें अपनी शरीर की सत्ता का भी बोध न हो) होकर भी प्रेम में बँध गए और उनका वैराग्य भी उनसे वैराग्य करने लगा—अर्थात् राम को देख कर जनक का सब ब्रह्मज्ञान खो गया ।

४७-शब्दार्थ—भवसागर = ससार रूपी समुद्र । मानि(णि) क = लाल रंग का एक रत्न । नागर = चतुर ।

अर्थ—राजा जनक (राम लक्ष्मण को देख) प्रसन्न होते पथ हृदय में उन (राम-लक्ष्मण) की सराहना करते हैं और कहते हैं कि, (यह) ससार सागर भी (जिसे छानी लोग असार बताते हैं) अच्छा है, जिसमें (राम-लक्ष्मण) सदृश रत्न उत्पन्न होते हैं । ब्रह्मा भी बड़ा चतुर है ।

४८-शब्दार्थ—पुन्यपयोधि = पुण्य क समुद्र परा
पुण्यात्मा । सिन्धु = शिशु, बालक । सुरतह = कल्पवृक्ष । सुधा =
अमृत । अमरनि = देवताओं को । वरु = भी ।

अर्थ—(इन बालकों के) माता-पिता बड़े भारी पुण्यात्मा
हैं और ये बालक कल्पवृक्ष समान (सुख देने वाले) हैं । (इन्का)
सौन्दर्यामृत देवताओं के भी नेत्रों को सुख देता है ।

४९-शब्दार्थ—सुकृती = पुण्यात्मा । गौर = गोरा । धनु-
सा (शा) यक = धनुष बाण ।

अर्थ—(राजा जनक विश्वामित्रजी से कहने लगे) हे
मुनीश्वर, कहिये, धनुष बाण धारण किए हुए, शोभा के धाम
(ये) गोरे और साबले किस पुण्यात्मा के कुँवर हैं ।

५०-शब्दार्थ—विषय विमुख = भोग विलास से विरक्त ।
सेव = सेवन करके । परमार्थ = मोक्ष । मगन = मग्न, लुप्त ।
स्वार्थ = हित ।

अर्थ—हे मुनीश्वर (यद्यपि) मेरा मन परमार्थ (ब्रह्म
प्राप्ति के मार्ग) का सेवन करके (सासारिक) विषयों से
पराङ्मुख होगया है, तो भी वह इन राम नक्षत्रण को देख और
(इनके द्वारा) अपना भारी स्वार्थ साधन होता जान कर
मुग्ध होगया है ।

५१-शब्दार्थ—महिपालक = महि अर्थात् पृथ्वी का पालन
करने वाला राजा ।

अर्थ—विश्वामित्रजी ने प्रसन्न हो प्रेम पूर्वक कहा—हे
राजन् ! ये बालक मुक्ति स्वरूप और शुद्ध चैतन्य मय हैं ।

५२-शब्दार्थ—पूषन वस विभूषन = सूय वस के शृङ्गार ।
नन्दन = पुत्र, आनन्द देने वाला । सुरारि = राक्षस । निकन्दन =
जड़ खोदने वाला, नाशक ।

अर्थ—(ये बालक) सूर्यवंश के भूपण और राजा दशरथ के पुत्र हैं । (इनके) नाम राम और लक्ष्मण हैं, (ये) राजाओं के मारने वाले हैं ।

५३-शब्दार्थ—परिपूर्ण = भरा हुआ । पन आपन = अपना प्रण । लाग = लगा । विसूरन = दुःख मानना, आँखों में आसु भर लाना ।

अर्थ—(राजा जनक) सोम्वर्य, शील, अउस्था और कुल (आदि) से श्रीराम को परिपूर्ण (सब प्रकार योग्य) जानकर ओर उधर अपनी कठिन प्रतिज्ञा का स्मरण करके पछुताने लगे ।

५४-शब्दार्थ—धीरज आनि के = धीरज धर कर । सुभग = सुन्दर ।

अर्थ—(राजा जनक अपने) प्रण को सोच कर पछुताने लगे (लेकिन) फिर मन में धैर्य लाकर (धारण करके) और (विश्वामित्रजी तथा राम-लक्ष्मण का बहु भाँति सरकार करके उन्हें रंगशाला) दिखाने के लिए ले गये । (यज्ञशाला की) सुन्दर रचना को (देख कर) विश्वामित्र ने सराहा (जिसे) सुन कर जनक प्रसन्न हुए । इसके अनन्तर (जनक ने) राम-लक्ष्मण सहित विश्वामित्रजी को सुन्दर सिंहासन दिया ।

५५-शब्दार्थ—राजत = शोभित हैं । जुगल = दो, दोनों । शरद = कार और कार्तिक की ऋतु । विधु = चन्द्रमा । उभय = दो । नखत = नखत्र । घरनी धनि = घरणी धन्य अर्थात् पृथ्वी को धन्य करने वाले राजा ।

अर्थ—(रंगभूमि में उपस्थित) राजसमाज में दोनों रघु-वशमणि (राम लक्ष्मण) ऐसे शोभित हैं मानो वे दोनों (राम और लक्ष्मण) दो शरद्वन्द्व हैं और शेष राजा लोग तारे हैं ।

५६-शब्दार्थ—काकपत्त=पटे, कौए के पर के समान मस्तक के दोनों भागों में एक प्रकार की केश रचना। बालकों की शिखा को भी काकपत्त कहते हैं। सरोरुह=कमल। स (श) त फोटि=सौ करोड़, असंख्य।

अर्थ—(राम और लक्ष्मण के) शिर पर सुन्दर काकपत्त (पटे या जुलफें) हैं, कमल जैसे (उनके) नेत्र हैं। साँवले श्री गौरे (दोनों भाई) सैरुडों करोड़ कामदेवों के भी अहंकार को दूर करने वाले हैं।

५७-शब्दार्थ—भृकुटी=भोहूँ। कमानै=कमान। स्रग्न=अरण। मनमानै=मन मुग्ध हो जाता है।

अर्थ—(राम लक्ष्मण के) माथे पर सुन्दर तिलक है और उनकी भीहूँ कामदेवकी कमान की तरह तिरछी ओर सुन्दर हैं। कान के सुन्दर भूषणों को देखकर तो मन मुग्ध हो जाता है।

५८-शब्दार्थ—नासा=नाक। विद्युक्=ठोड़ी। कपोल=गाल। अघर=ओंठ। रद=दाँत। वदन=मुख। सहज=स्वाभाविक।

अर्थ—(राम-लक्ष्मण के) नाक, ठोड़ी, गाल, होठ और दाँत सुन्दर हैं। तथा मुख शरद्वचन्द्र की निन्दा करने वाला (शरद्व ऋतु के चन्द्रमा से भी सुन्दर) और स्वभाव से ही मन को हरने वाला है।

५९-शब्दार्थ—उर=छाती। विशाल=बड़ा, चौड़ा। धूपकन्ध=बैल के पीठ के कुब या टीले से उभरे। उपवीत=जनेक। मुकुताफल=मोती।

अर्थ—राम और लक्ष्मण की छातियाँ चौड़ी हैं, कंधे बैल के कंधे की भाँति ऊँचे हैं, भुजायें अत्यन्त बलिष्ठ और सुन्दर हैं। वे दोनों पीले वस्त्र और गले में जनेक तथा मोतियों की माला पहने हैं।

६०-शब्दार्थ—निपग = तरकस । जोहन लायक = देखने योग्य ।

अर्थ—दोनों भाई कमर में तूणीर बाँधे तथा कर कमलों में धनुष ग्राण लिए हुए हैं । उनके सब अङ्ग मन को लुभाने वाले और देखने योग्य हैं ।

६१-शब्दार्थ—जल लोचन = सजल नेत्र, प्रेमाश्रु ।

अर्थ—राम-जश्मण की कान्ति देख कर नगर निवासी अति प्रसन्न हुए, जिसके कारण उनके हृदय में आनन्द नेत्रों में प्रेमाश्रु और गणेश में पुलक (रोमाञ्च) भरे थे ।

६२-शब्दार्थ—दुहु = दोनों । आइन्ह = आकर ।

अर्थ—दोनों भाइयों को देखकर (जनकपुरकी) स्त्रियाँ आपस में कहती हैं कि जन्म लेकर ससार में आई हुई हमने आज जन्म लेने का फन पा लिया ।

६३-शब्दार्थ—सिवहिं = शिवजी को । साँयला = साँवला, श्याम रामचन्द्रजी । कुलिस कठोर = कुलिस अर्थात् वज्र के समान कठोर । मंगल = हस । मदर = मकराचल पहाड़ । अस = ऐसा ।

अर्थ—हमने ससार में जन्म लेकर नेत्रों का लाभ पा लिया (इस तरह कहती हुई) सब (स्त्रियाँ) शिवजी से मनौती करती हैं कि सीताजी को (यह) साँवला (राम) घर मिले और हम सब प्रसन्न होकर मंगल-गान गावें । (उनमें से) कोई कहती है कि (सखियो !) यह कुँवर (राम) छोटी अरुणा के हैं और शिव-धनुष वज्र के समान महा कठिन हैं । हस के बच्चे (भला) मकराचल को किस भाँति उठा लेंगे यह बात जनकजी भी किसी ने नहीं समझाई ।

६४-शब्दार्थ—निरास (श) = आशाहीन, नाउम्मेद ।
पन परिहर = प्रण छोड़ कर । वर = व्याहना ।

अर्थ—राम को देखते ही (सीय स्वयंवर में आप) सब राजा लोग (सीताजी के मिलने की ओर से) निराश होगए (और सोचने लगे कि अब तो अवश्य ही) राजा जनक अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर सीताजी (इस) साँवले वर को दे देंगे ।

६५-शब्दार्थ—भलिवात = अच्छी बात । लगि = लिए ।
जोड़हि = जोड़ेगा, तोड़ देगा ।

अर्थ—(आप हुए राजाओं में से) कोई कहते हैं कि, वर और दुलहिन के लिए जनक अपनी शर्त तोड़ देंगे (तो) अच्छी ही बात है । यह (राम और सीता का) विवाह (हुआ तो) अच्छा ही होगा ।

६६-शब्दार्थ—सु (शु) चि = पवित्र । सुज्ञान = ज्ञान
कार, होशियार ।

अर्थ—शुद्ध मन वाले सज्जन राजा कहते हैं कि हम को तो ऐसा मालूम होना है कि जहा तेज, प्रताप और सौन्दर्य हो वहाँ बल भी समझना चाहिये । अर्थात् राम तेजस्वी प्रतापी और सुन्दर हैं तो बलवान भी अवश्य होंगे ।

६७-शब्दार्थ—चितइ = देखना । रामतन = राम का शरीर
या राम की ओर । गाल बजावट = लम्बी चौड़ी बातें बघारते
हो । लजान = शर्मा गया । बलउ = शक्ति भी ।

अर्थ—(किन्हीं अहकारी और भूर्ख राजाओं को सब धनुष न उठा सकने पर भी राम के विरुद्ध बकवाद करते देख कर कोई सज्जन राजा कहने लगे कि, तुम) श्रीराम के शरीर की ओर देख भी तो सकते नहीं हो और (अर्थ) गाल

बजाते हो। भाग्यरथ (तुम्हारा) चल तो (धनुष न उठा राकने के कारण) तजित हो ही गया अब (अपनी) बुद्धि को तो मत लजाओ।

६८-शब्दार्थ—अवसि = अवश्य। सरासा = शरासन, बाण का आसन, धनुष। नाक फूटिहि = नाक कट जायगी, सारी बात मिट्टी में मिल जायगी। असि = ऐसी।

अर्थ—(वही भले राजा श्रीों को सबोधन करके कहते हैं कि भाइयो,) राम के (धनुष उठाने के लिए) सचे होते ही धनुष अवश्य टूट जायगा। और धनुष टूटतेही सब राजा लोग (निज निज घर) चले जायेंगे, इस तरह नाक फूटेगी अर्थात् नाक कट जायगी।

६९-शब्दार्थ—कस = कैसे। कत = क्यों। नरपशु = नरपशु, मनुष्य के रूप में पशु।

अर्थ—(इसलिये हे भाइयो, रामचन्द्रजी के) सोम्वर्य रूपी अमृत-रस को नेत्र भर भर के क्यों नहीं पीते ? (उनके दर्शन करके अपने) जन्म को कृतार्थ (सफल) क्यों नहीं करते ? मनुष्य होकर भी पशु क्यों बनते हो ?

७०-शब्दार्थ—दुहुँ दिसि = दोनों ओर। नील पीत = नीला और पीला। पायोज = पाय (पानी) से पैदा हुआ अर्थात् कमल। दिनकर = सूर्य।

अर्थ—विश्वामित्रजी के दोनों ओर राजशुमार (राम लक्ष्मण) विराजमान हैं, मानो नीले और पीले दो कमल पुष्पों के बीच में सूर्य विराजमान हो।

७१-शब्दार्थ—पानि (णि) = हाथ। सरोजनि = कमलों से। लालत = लाड करता है। बाल मनोजनि = कामदेव के बालकों को।

अर्थ—विरवामित्रजी अपने कमल समान हाथों से (राम लक्ष्मण के शिरों पर सुशोभित) काक पक्षों (पटे रखे हुए वालों) को स्पर्श करते हैं (तो गेंसा भालूम होता है) मानो लाल कमल कामदेव के बालकों को प्यार करता हो ।

७०-शब्दार्थ—जोवट्ट = देखते हो । विनकाज = शंका, व्यर्थ । धिगोवट्ट = धिगोते हो, निन्दा करते हो । अनूप = अनुपम, लासानी । कंरव = कुमुद (सफेद कमल) जिसका राम में चन्द्रमा के प्रकाश में खिलना बताया जाता है ।

अर्थ—(भाई) कामदेव के समान मन को हरने वाली सुन्दर मूर्ति को आदरपूर्वक क्यों नहीं देखते, निष्प्रयोजन राजसमुदाय में लज्जा त्याग कर अपने आप को क्यों निन्दित करते हो । (इस भाँति) अच्छे राजा, अन्य राजाओं को शिक्षा देने और (आप श्रीरामजी की) अनुपम शोभा को देखने लगे । रघुवश रूपी कुमुदिनी के (विकसित करने के लिए) चन्द्र समान (रामचन्द्रजी की) देख कर (राजाओं) के नेत्र चकोर की भाँति ठगे से रह गए ।

७१-शब्दार्थ—निहारहि = देखते हैं ।

अर्थ—जनकपुर के नर-नारी रघुकुल के दीप समान श्री राम को देखते और प्रेम विवश हो राजा जनक को (ऐसी कठिन प्रतिज्ञा करने के कारण) दोष देते हैं ।

७४-शब्दार्थ—एक = कुछ । दूषन = दोष । जनि = निषेधात्मक । चवन = प्रतिज्ञा ।

अर्थ—कोई कहते हैं, भाई राजा अच्छा है, (उसे) दूषण मत लगाओ । । प्रतिज्ञा बिना तो राजा की शोभा ही नहीं है, जैसे बिना आभूषण के नाक की शोभा नहीं होती ।

७५-शब्दार्थ—हमारे जान=हमारी समझ में। जनेस (श)= राजा। पनमिस=प्रण के बहाने से।

अर्थ—हमारी समझ में तो राजा ने बहुत ही अच्छा किया जो प्रतिष्ठा के बहाने से सबके नेत्रों को (रामजी के दर्शन रूपी) लाभ प्राप्त करा दिया।

७६-शब्दार्थ—जु=जो। पेज=प्रण, प्रतिष्ठा।

अर्थ—ऐसा पुण्यात्मा राजा जो कुछ भी मन में अभिलाषा करेगा, जगदीश्वर उसे अवश्य ही पूरी करेगा और उसकी पेज पय प्रतिष्ठा को रक्खेगा।

७७-शब्दार्थ—जो=यदि। बोलि=बुला कर।

अर्थ—यदि राजा जनक (प्रतिष्ठा करने से पूर्व) रामचन्द्रजी के रूप और गुणों की प्रशंसा सुन पाते तो (रामचन्द्र को) बुलाकर (उनके साथ) सीताजी का व्याह कर देंगे। (राजा ने श्रीराम को देखने तथा उनके रूप आदि की प्रशंसा सुनने से पहले ही प्रतिष्ठा कर ली, इसमें) राजा को दोष नहीं है।

७८-शब्दार्थ—पंचमहैं=पंचों के सामने। अजसु=अवश, निन्दा।

अर्थ—अब पञ्चों में प्रतिष्ठा करके यदि प्रण छोड़ दिया जाय तो, ब्रह्मा की गति तो जानी नहीं जाती (कि आगे क्या हो) पर ससार में अप्रतिष्ठा तो फैल ही जायगी।

७९-शब्दार्थ—अजहुँ=आज भी, अब भी।

अर्थ—अब भी श्रीरामजी अवश्य धनुष पर प्रत्यङ्चा चढ़ा देंगे और (सीताराम) के विवाह के उत्साह में (तीनों लोकों के स्त्री-पुरुष) मंगल गीत गावेंगे।

८०-शब्दार्थ—झरोखन्द = जालीदार खिडकियों से ।
 भामिनि=स्त्री । दामिनि=विजली । लसहिं=शोभा देते हैं ।

अर्थ—रानियाँ खिडकियों से लग कर (रगभूमि की शोभा देखने के लिए) झाँक रही हैं । (परस्पर) बातें करते हुए उन (रानियों) के दाँत ऐसे शोभित होते हैं मानो विजली चमक रही हो ।

८१-शब्दार्थ—मृदु = कोमल, मीठे । निदरि = निरादर करके । ढिग = पास । अलौकिक = विचित्र, दुनिया से न्यारा ।

अर्थ—(रानियों के दाँत ऐसे चमकते थे) जैसे विजली चमकती हो (और वे अपने) रूप से कामदेव की स्त्री के (उसके सर्वोत्कृष्ट सुन्दरी होने के) अहकार को तिरस्कार करके (घड़ी) सुन्दरी शोभित हो रही थीं । (रानियों की) सखियों ने विश्वामित्रजी के पास (बैठे हुए) कुवर (राम लक्ष्मण) दिखाए । (उनकी) शोभा को देख (रानियों के) मन मोहित हो गए । सीताजी की माता राम की अत्यन्त निराली सुन्दरता को देखकर (बहुत ही) प्रसन्न हुए और हृदय में कहने लगीं कि “कहाँ ये (सुकुमार) बालक श्रीर कहाँ (कमठ पृष्ठ सम कठोर) धनुष,” उलटे विधाता की उलटी ही गति है ।

८२-शब्दार्थ—मृदुमूरति = कोमल फाय राजकुमार ।

अर्थ—“कहाँ तो यह कठोर शिवजी का चाप और वहाँ यह सुकुमार (राम का) शरीर” रानी सखियों से ऐसी बातें कह-कह कर सोच करती थीं ।

८३-शब्दार्थ—लोचन अतिथि = आँखों का महमान, दर्शन देने से अभिप्राय है । परिणामहिं=परिणाम में ।

अर्थ—यदि विधाना श्रीरामजी के दर्शन न कराता, तो कोई भी (ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा करो के कारण) राजा जनक को दोष न देता ।

८४-शब्दार्थ—असमंजस = द्विविधा, शशोपज । ससोच = चिन्तित ।

अर्थ—पर अब (श्रीरामचन्द्रजी को देखकर) द्विविधा हो गई है, कुछ कहते नहीं बनता । (रानी के इतना कहने पर और उसे) उदात्त देख कर सखियाँ समझाती हैं ।

८५-शब्दार्थ—परिहरिय = छोड़ दीजिए, त्यागिए । आगिय = लाइए । फुर = सच ।

अर्थ—(कि) हे देवी, चिन्ता को दूर करो और हृदय में प्रसन्नता धारण करो । श्रीरामजी धनुष को तोड़ देंगे (इस) वान को मच मानिये ।

८६-शब्दार्थ—करतल = मुट्ठी में या हथेली पर । कि = क्या । आमहि = लावेंगे ।

अर्थ—(जिन) विश्वामित्रजी को (भूत, भविष्यत् और वर्तमान) तीनों कालों का ज्ञान करतल (हाथ पर रखी हुई, वस्तु के समान) है, वे क्या बिना बल वाले बालकों को खयर में ला सकते हैं ?

८७-शब्दार्थ—सुबाहु = राक्षस विशेष जो राम द्वारा मारा गया । सूदन = मारने वाला ।

अर्थ—(इस भाँति) विश्वामित्रजी की महिमा सुन कर (जब) रानी को कुछ धैर्य हुआ, तब सखियाँ ने सुबाहु नामक राक्षस को मारने वाले (श्रीराम) का यज्ञ (रानी को) सुनाया ।

८८-शब्दार्थ—बहुनि = फिर । हरषद = प्रसन्न होती थी । करषद = ऊँपित होता था, खिंचता था ।

अर्थ—(राम जी का) यश सुन कर रानी के जी में कुछ भरोसा हुआ और हृदय में प्रसन्नता हुई । फिर श्रीराम को देख कर वात्सल्य भाव रानी के मन को हर्ष की ओर से खींच लेता है, 'अर्थात् रानी का हर्ष अधिक देर तक स्थायी नहीं रहने पाता वह फिर सोच में पड़ जाती है ।

८६-शब्दार्थ—मञ्जु = सुन्दर । मनोरथ फलस = वामना रूपी घड़े । रित्तिवर्हि = रीता कर देते हैं ।

अर्थ—राजा, रानी और नगरनिवासी (सब) रामजी के सुन्दर शरीर को देखते हैं, तथा वे सब (अपने मनों को) अच्छे मनोरथों से भरते और खाली करते हैं । अर्थात् कभी आशा बँधती है और फिर निराशा हो जाती है ।

८७-शब्दार्थ—विपाद = रज, दुःख । कुल-शुरु = शतानन्द । रूपराशि = रूप का फोश, अत्यन्त सुन्दर ।

अर्थ—(सब लोग अपने मनों) को कभी सद्भावनाओं से भर लेते हैं और राम की आयु तथा धनुष की कठोरता का ध्यान करते हैं तो उन मनोरथों को मन में से निफारा देते हैं । सभी नर-नारियों के हृदय हर्ष और विपाद के घश में हो रहे हैं, और वे सभी शिवजी को सफुचाते हैं । (शिवजी को सफुचाना इस भाँति कि नर-नारि शिवजी से प्रार्थना करने हैं कि आप अपने धनुष को निर्यल बना उसे तोड़ने में राम के सहायक बनिए । इस पर शिवजी अपने हृदय में यह विचार करके कि रामचन्द्रजी तो सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, मैं भला उनकी क्या सहायता करूँगा—सफुचा जाते हैं । इसी समय जनक की आशा पाकर शतानन्दजी जानकीजी को रग भूमि में ले गए और लोगों ने सीताजी के रूप कोष को देख कर नेत्रघान होने का लाभ उठाया ।

६१-शब्दार्थ—मोहबल (श) = अज्ञान के कारण ।
मोहहि = मोह लेते हैं ।

अर्थ—(जानकीजी के) सुन्दर शरीर पर मागतिक धरत और आभूषण शोभायमान थे, (वस्त्राभूषणों से सुसज्जित जानकी को) देख कर अविचारशील राजा मोह के वश में होकर मुग्ध हो जाते थे ।

६२-शब्दार्थ—सुभाय = स्वभाव से, साधारणतः । सर = धारण । धेनि = धेनी, कत्ता ।

अर्थ—अनुपम सुन्दरी श्रीजानकीजी स्वभाव से ही जिस ओर देखनी हैं, उधर ऐसा प्रतीत होता है, मानो कामदेव नीले कमलों के धारणों की धरों पर रहा है ।

६३-शब्दार्थ—क्षिनु = क्षण, पल । विसेपहि = विशेषता दत्ते हैं, अच्छाई का वर्णन करते हैं ।

अर्थ—(सयसर में उपस्थित नगर के स्त्री पुरुष) क्षण में सीतार्जी को और क्षण में रामजी को देखते तथा (उनके) रूप, शील, अवस्था और वश की अधिकाधिक प्रशंसा करते हैं ।

६४-शब्दार्थ—तकि तकि = ताक ताक कर । मयन = मदन, कामदेव । सायक = धारण ।

अर्थ—श्रीराम को जब सीता दिखाई पड़ीं और सीतार्जी को राम दृष्टि पड़े तो, दोनों (राम और सीता) के शरीरों को लक्ष्य कर कर के कामदेव अपने धारणों को सम्हालने लगा ।

६५-शब्दार्थ—प्रमोद = विशेष आनन्द । गोपहि = छिपाते हैं । गुनग्राम = गुणों के समूह । धूनि = धूनी, रक्षा । रोपहि = लगाते हैं, गाढ़ते हैं ।

अर्थ—(परस्पर अवलोकन से उत्पन्न हुए) प्रेम के आनन्द को आपस में (एक दूसरे पर) प्रकट होने से छिपाते

हैं, मानो (पारस्परिक प्रेम से परिपूर्ण, चञ्चल) हृदयों को रोकने के लिए गुणों (शील, लज्जा आदि) के समूह स्त्री अचल खम्भे लगाते हैं।

६६-शब्दार्थ—जोउन=यौवन, जयानी । पुरइ=पुर में ।
घय समौ = आयु का समय ।

अर्थ—राम और सीताजी की अवस्था तथा (वत्समान व्यवहार का) समय सहज ही मैं सुहावने हैं। मानो तादृश्य रूपी राजा सुन्दरता रूपी नगरी में आना चाहता है।

६७-शब्दार्थ—मन मानै=मा मानता अर्थात् प्रसन्न होता है। मूरु=गू गा।

अर्थ—(राम-सीता की) वह (उस समय की) शोभा कही नहीं जासकती, (उसे तो) देख कर मन ही मानता (अनुभव करना) है। क्या गू गा आदमी अमृतपान करके उसके स्वाद का वर्णन कर सकता है ? अर्थात् नहीं कर सकता।

६८-शब्दार्थ—बदिन्ह=बन्दी जनों ने, भाटों या चारणों ने। आमरपि=(आमर्ष) क्रोध करके। सगुन नहीं पायउ=अच्छे सगुन नहीं पाये अथवा सगुन अर्थात् रस्सी सहित न कर पाये, प्रत्यचा न चढ़ा सके।

अर्थ—तब (इसके पश्चात्) भाटों ने राजा जाक की प्रतिज्ञा कह सुनाई (जिसे सुनते ही अहकारी) राजा क्रोध करके (घनुष उठाने के लिए) उठे (पर उन्होंने उठते समय कोई शुभ) शङ्कन न पा अर्थात् होते न देखा (इसलिए जहाँ के तहाँ बैठ गए) अथवा प्रत्यचा न चढ़ा सके।

६९-शब्दार्थ—टकरोरि=टटोल कर, ठोक कर। नारियरु=नारियल। दाप=घमण्ड। जिमि=सरह। नृप नरुप=प्रतिष्ठान पुर का राजा।

अर्थ—(जो राजा धनुष उठाने की इच्छा से उठे उनमें से कुछ तो) उठते समय शुभ शकुन न होने का वहाना कर के वहा के वहाँ बैठ रहे, कोई धनुष को देखने गए और जिन तरह बन्दर नारियल को नोडने के लिए ठोक पीट करता है और १ टूटने पर छोड़ बैठता है, उसी भाँति धनुष को टकटकाकर छोड़ दिया और शिर झुकाकर बैठ गए । कोई राजा (बड़ा) श्रद्धाकर करते थे परन्तु धनुष सत्पुरुषों की प्रतिष्ठा की भाँति लेशमात्र भी नहीं दलता और (सप्त ऋषियों के श्राप से सर्प योनि पाए हुए) राजा नहुष की भाँति सब राजाओं के बल बुद्धि की जाँच करता और बल पूर्वक हरण कर लेता है ।

१००-शब्दार्थ—हारेड = हार गया, दुःखित हुआ ।
तुहिन = पाला । धनन = कमल ।

अर्थ—(राजाओं को इस भाँति धनुष उठाने में असमर्थ) देख कर पुरजनों और परिजनों सहित राजा जनक हृदय में (अति) हताश हुए, और राजा लोग तो पाले के मारे हुए कमल का की भाँति हतप्रभ होगए ।

१०१-शब्दार्थ—अनुसासन = आज्ञा । इसानु = महादेव ।

अर्थ—(तब) विश्वामित्रजी ने राजा जनक से कहा कि (प्रय) सूर्यवंश के सूर्य (श्रीराम) को आज्ञा दीजिये कि (वे भी) महादेव के धनुष को देखें ।

१०२-शब्दार्थ—मेरु = सुमेरु पर्वत । महि = पृथ्वी ।
आचरत = करते हुए ।

अर्थ—(यह सुनकर राजा जनक ने कहा) हे मुनीश्वर आपके वचन से (आज्ञा से) पृथिवी और सुमेरु पर्वत भी चलायमान हो सकते हैं । परन्तु फिर भी उचित कार्य करने पर ही पच लोग (उसे) श्रद्धा कहते हैं ।

अर्थात् जनक विश्वामित्रजी से कहते हैं कि आपकी आज्ञा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है, और इस दृष्टि से रामचन्द्रजी को धनुष दिखाने की अनुमति देना अनुचित नहीं है परन्तु उनकी सुकुमारता को देखकर कठोर धनुष उठाने की आज्ञा देने के कार्य को सब लोग अच्छा न कहेंगे।

१०३-शब्दार्थ—यानु = याणासुर। यानु जिमि गयउ = याण के समान गया अर्थात् जिस तरह तीर तेजी से जाता है, उस प्रकार गया। गवहि = जाता है, गमन करता है। दसकन्धर = दस पन्धों वाला, रावण। अवनीतल = भूमण्डल। धुरन्धर = धुरी धारण करने वाला, परम शक्तिशाली।

अर्थ—(भला जिस धनुष को देखकर) याणासुर तीर की भाँति (सीधा अपने घर को भाग गया) तथा रावण भी (चुपके ही) खिसक गया। (मेरी अल्प मति के अनुसार) इन (याणासुर व रावण) दोनों योधाओं के बराबर धुरन्धर वीर पृथिवी भर में कोन है ?

१०४-शब्दार्थ—धनुचालक = धनुष चलाने वाला।

अर्थ—(हाँ) पार्वती के मन के समान निश्चल इस धनुष को चलाने वाले (एक) महादेवजी हैं, (पर) वे एक नारि व्रत पालक (केवल एक पार्वतीजी में ही भार्या भाव रखने वाले) हैं (इसलिए उन्हें धनुष उठाने या तोड़ने की आवश्यकता नहीं)।

१०५-शब्दार्थ—किसोरहि = लडके को। सिरिस = सिरस प्रसिद्ध है, इस वृक्ष का फूल बड़ा कोमल होता है। वन (वण) = कितना, टुकड़ा।

अर्थ—सो ऐसे धनुष को राजकुमार (श्रीराम) को देखने के लिए (आप) कहते हैं। क्या सिरस के फूल की पलड़ी कठोर वज्र के टुकड़े को छेद सकती है ?

१०६-शब्दार्थ—सोम = चन्द्रमा । मनोजनि = कामदेव ।
मलिन = मैली ।

अर्थ—(जिन राम के) रोम-रोम को शोभा चन्द्रमा तथा
कामदेव को भी लज्जित कर रही है, (उनकी) मूर्ति को तो,
ऐ मुनीश्वर, देखते ही रहिये (दर्शन करते रहिये) उसे (धनुष
से स्पर्श करा के) मैली मत कीजिए ।

१०७-शब्दार्थ—रुद = है । सकुल = एक घर । विद्योद्द =
आलग कर देता है, छुड़ाता है ।

अर्थ—(जनक की उपर्युक्त बातें सुनकर) विश्वामित्र जी
हँस कर बोले 'हे जनक यह यह मूर्ति है जिसका एक घरही
स्मरण करने से सम्पूर्ण मोह और पाप छूट जाते हैं ।'

१०८-शब्दार्थ—कुभज = घड़े से उत्पन्न अगस्त मुनि ।
लेखदु = जानो । सकुचि = सकुचाकर ।

अर्थ—(विश्वामित्र ने जनक से कहा) इस मूर्ति (श्रीराम को)
को पापों के दूर करने वाली जान कर (इसका) खेल देखिये ।
धनुषरूपी समुद्र में जो राजाओं का बल रूपी जल बढ़ गया
है (उन्हे सुखाने के लिए) रामचन्द्रजी को अगस्त मुनि सम-
झिये । (इस प्रकार विश्वामित्रजी के वचन) सुन जनक सकु-
चाकर सोच करने लगे (उधर) श्रीरामजी गुरुचरणों की
बन्दना करके (धनुष उठाने के लिए) चले । (उस समय
राम के) मन में न तो कुछ प्रसन्नता थी, न दुःख था । (राम
जी के चलते समय) शुभ मंगलदायक शकुन हुए ।

१०९-शब्दार्थ—दु दुमि = नगाड़ा । पुर परिजन = नगर
निवासी लोग तथा कुटुम्बीजन ।

अर्थ—(उस समय) देवता फूल बरसाने लगे तथा
नगाड़े बजने लगे । जाक तथा उनके पुर और परिवार के लोग
प्रसन्न हुए (पर) अहंकारी राजा लोग लज्जित हुए ।

११०-शब्दार्थ—महि = पृथ्वी । महिघरन = शेषजी, कच्छप, दिग्गज । चपरि = शीघ्र । चढ़ानन = चढ़ागा, चोढ़ना ।

अर्थ—लक्ष्मणजी ने पृथ्वी तथा पृथ्वी को धारण करने वाले शेष, कच्छप, दिग्गज आदि से अपना बल बढ़ाने (अर्थात् पूर्ण शक्ति से स्थिर रहने) के लिए कहा, (क्योंकि) श्रवण शीघ्र ही धनुष को तानना चाहते थे ।

१११-शब्दार्थ—सुभाय = साधारणरीति से । बाप = धनुष ।

अर्थ—राम जब सहज ही धनुष के समीप गए तब विदेह राजा को परिवार सहित चिन्ता हो गयी थी ।

११२-शब्दार्थ—सुमिरि = याद कर के ।

अर्थ—(उस समय) सकोच के कारण सीताजी कुछ कह तो सफती न थीं (केवल) हृदय में सोच करती थीं और पार्वती, गणेश, महेश आदि को स्मरण करने लकुचाती थीं ।

११३-शब्दार्थ—फरकि = फड़क कर । वामभुज = बाईं भुजा । देहि जनु हाथहि = मानो हाथ देते हैं, सहारा लगाते हैं ।

अर्थ—जानकीजी श्रीराम को देत्रकर घिर-सर में डूबने लगती हैं, (पर उनके) बाप नेत्र, भुजा आदि अंग फड़क कर मानो सहारा देते हैं ।

११४-शब्दार्थ—घोर = कठिन । दहड = दै । दाहिन = अनुकूल ।

अर्थ—सीताजी शुभ शकुनों को देख कर कुछ धैर्य धारण करती हैं पर वह धैर्य ठहरता नहीं है, क्योंकि वर (श्रीरामजी) छोटी अग्रस्था के हैं और धनुष कठोर है । (जान पड़ता है) दैव सीधे नहीं है ।

११५-शब्दार्थ—अन्तजामी = अन्तर्यामी, भीनरी भेद जानने वाला । मरम = मर्म, मेव । कान लागि तानेउ = कान तक तान लिया ।

अर्थ—अन्तर्यामी श्रीराम ने (सीताजी के मन का) सब गुप्त हाल जान लिया और धनुष को खेल समझ उठा कर कान तक तान दिया ।

११६-शब्दार्थ—परखि = परीक्षा करके । भजेउ = तोड़ा । मृगराज = सिंह । गज = हाथी । गजेउ = तोड़ना, मारना ।

अर्थ—श्रीराम ने (जानकी जी के) प्रेम की परीक्षा करके धनुष को तोड़ दिया । मानो सिंह के बच्चे ने बड़े हाथी को मार दिया हो ।

११७-शब्दार्थ—भूधर = पहाड़ । लरखरे = लड़खड़ाने लगे, काँप गये । मुक्ता = मोती । त्रिपुता = बहुत । पटु = सुन्दर, चतुर । पेटक = पिटारे । हितू = हितैषी । रुदित = रोता हुआ । जाग = यज्ञ । भोर = प्रातः काल । कैरय = कुमुद । सघन = घना । तडाग = तालाब ।

अर्थ—जब भगवान रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा तो उसके टूटने से भारी शब्द हुआ जिसकी घोर गूँज सुन कर पृथिवी और पहाड़ भी हिलने लगे और रघुनाथजी के असीम यश रूपी मोतियों से चोदहो भुवन रूपी सुन्दर सन्दूक भर गए । (धनुष को टूटा देख कर जनक के) शुभचिन्तक लोग प्रसन्न हुए और अशुभचिन्तकों के मुख मलीन होगये । कवि (तुलसीदासजी) धनुषयज्ञ की शोभा वर्णन करने हैं कि (वहाँ की अवस्था ऐसी थी जैसे प्रातः सूर्योदय होने पर) चकई और चकोर की अथवा कमल और कुमुदिनी से भरे तालाब की होती है, अर्थात् जिस भाँति सूर्य उदय होने पर चकई और कमल प्रसन्न होते और चकोर तथा कुमुदिनी उदास होजाते हैं ।

११८-शब्दार्थ—गहगहे = जोर से बजने लगे । ललित = सुन्दर । लहलहे = लहलहे होगये, हरे-भरे होगये ।

अर्थ—(अपने) मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष को भली भाँति लहलहाते देखकर (सफल होते देख कर) आकाश और जनकपुर में मंगलगान होने लगे तथा जोर से नगाड़े बजने लगे ।

११६-शब्दार्थ—उपरोहित = पुरोहित, कर्मकाण्डी । मन भावत = जैसे जी चाहे ।

अर्थ—इसके अनन्तर पुरोहित (शतानन्दजी) ने कहा और सब सखियाँ गाती हुई, जानकीजी को (रंगभूमि में) लिया चलीं । (सब लोगों का) मन चाहता हो गया ।

१२०-शब्दार्थ—जयमाल = स्वयम्बर के समय जिस माला को वधू घर के गले में डालती थी । यह माता दूध और महुआ पुष्पों की बन्ती थी ।

अर्थ—जानकीजी के कमल जैसे हाथों में जयमाला जिस भाँति सुशोभित होरही थी, उस अनुपम शोभा का वर्णन कर सके ऐसा कौनसा कवि है ? अर्थात् कोई भी नहीं है ।

१२१-शब्दार्थ—प्रियतन = प्यारे की ओर । हेरद = देखती है । फेरद = घुमाता है । रुख = तरफ ।

अर्थ—सीताजी प्रेम और सकोच के वश होकर पति (श्रीरामजी) के शरीर को देखती हैं, मानो वायु घेरा सुरवल्ली को कल्पवृक्ष की ओर सुकाता है ।

१२२-शब्दार्थ—लसत = शोभित होती है । वनज = कमल । कामफन्द = कामदेव का जाल । फँदावत = फँसाता है, फन्दा डालता है ।

अर्थ—श्रीरघुनाथजी के कण्ठ में जयमाळा पहनाते हुए (जानकी के) कर-कमल कैसे सुशोभित होते हैं मानो कमल-पुष्प चन्द्रमा के ऊपर काम का फन्दा डालते हैं ।

१२३-शब्दार्थ—निरूपम = जिसकी किसी से उपमा न दी जा सके । छिनु छिनु = घड़ी घड़ी ।

अर्थ—राम और सीताजी की शोभा अनुपम है, तथा वह (सोयल्यवर का) दिन भी अनुपम है । उस समय का सुख—समाज देखकर रानियों को क्षण क्षण आनन्द हो रहा है ।

१२४-शब्दार्थ—‘मनहुँ विधु उदय मुदित कैरय कली’ जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने पर कुमुद कलिका खिल जाती है ।

अर्थ—रघुनाथजी को जयमाला पहना चुकने पर सखियाँ सीताजी को लौटा कर ले चली । (उस समय) वे ऐसी प्रसन्न थीं जैसे चन्द्रोदय होने पर कुमुदिनी खिल उठती है ।

१२५-शब्दार्थ—विधुध = देवता । गय = गये ।

अर्थ—(उस समय) देवता लोग प्रसन्न होकर जय जय-फार करते हुए फूल बरसाने लगे, (तथा) चौदहों भुवन सुप्त और स्नेह से भर गए और श्रीरामजी विश्वामित्रजी के पास लौट गए ।

१२६-शब्दार्थ—रूपित = व्यासा । करि = हाथी । करिनी = हथिनी । निफर = झुण्ड ।

अर्थ—श्रीरामजी गुरु के समीप चले गए, राजा-राज्ञी तथा अन्य नगर के नर-नारी आनन्द में इस तरह मग्न हो गए जैसे व्यासे हाथी हथिनियों के समुदाय शीतल अमृत के तालाब में घुस पड़े हों । जनक ने विश्वामित्रजी की पूजा एवं प्रशंसा करके अत्यन्त सुख पाया तथा उनकी आज्ञा पाकर पुरजगत् परिजनों को इकट्ठा कर लज्ज और टीका (लेकर) कुलगुरु (शतानन्द जी) को अयोध्यापुरी भेजा ।

१२७-शब्दार्थ—माडव=मडवा, मण्डप। सुवासिन=सौभाग्यवती स्त्रिया। छावन=छाने के लिए। वधावन=वधाई के वाजे।

अर्थ—राजा जनक ने चतुर मनुष्यों को बुला कर विवाह मण्डप बनाने की आज्ञा दी। सौभाग्यवती स्त्रियाँ मंगल गीन गाने लगीं और वधाव बजने लगे।

१२८-शब्दार्थ—हित=लिए। प्रमोद=प्रसन्नता।

अर्थ—राजा जनक को परिवार के तथा मगर के नर-नारियों सहित बड़ी ही प्रसन्नता थी। (वे) सीताजी और रामचन्द्रजी की हित कामना से पार्वती और गणेशजी की पूजा करते थे।

१२९-शब्दार्थ—हरिद=हरिद्रा, हल्दी। वेदन=वन्दन। 'हाथ लगवाने'=धापे लगवाने या 'हरद हाथ' की विवाह से पूर्व एक रस्म होती है। कलसयापि=कलस स्थापित करके। विवाह के समय पवित्र जल से भरे हुए जो घड़े रफ़ले जाते हैं, घड़ी कराश कहलाते हैं। तेल चढ़ावहि=तेल चढ़ाना की प्रथा प्रसिद्ध है।

अर्थ—(रत्नवास में स्त्रियाँ) पहले हरिद्रावन्दन (एक वैवाहिक रीति) करके मंगल गाती थीं, और कुनाचार करके मंगल-कलश स्थापित करतीं तथा (जानकीजी पर) तेल चढ़ाती थीं। विवाह से पूर्व वर-कन्या के शरीरों से तेल मर्दन करके घेसन आदि से उबटन करने की प्रथा है।

१३०-शब्दार्थ—मुनि=शतानन्द। सुसरित=अच्छी नदी, सरयू से अभिप्राय है। नाम=रामनाम।

अर्थ—उधर मुनि (शतानन्दजी), अयोध्या गए और अयोध्यापुरी के दर्शन करके अच्छी नदी (सरयू) में स्नान (जिससे उन्होंने) सैकड़ों करोड़ ईश्वर नाम स्मरण का फल पाया।

१३१-शब्दार्थ—हरपानेउ = प्रसन्न हुआ ।

अर्थ—(जनकपुरी से श्री शतानन्दजी पधारे हैं) ऐसा सुनकर राजा दशरथ ने आगे (मार्ग में) आकर उनका पूजन और सम्मान किया और शतानन्दजी ने कुशल समाचार सुना कर लखनपत्रिका दी । राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए ।

१३२-शब्दार्थ—वितान = मण्डप, चँदोवा ।

अर्थ—(राम के विवाह का शुभ समाचार) सुनकर नगर में बड़ा हर्ष हुआ और लोग शतानन्द के बधाये बजाने और मंगल-कलश सजाने तथा मण्डप बनाने लगे ।

१३३-शब्दार्थ—छौंड़ि = छोड़ कर । साज = सामग्री । साजहिं = सजाते हैं । बनाइ = बनाकर, सजाकर । पूजि = पूजकर ।

अर्थ—राजा दशरथ अन्य सब कामों को छोड़, विवाह के सब साज सजा, थारान इकट्ठी कर, श्रीगणेशजी का पूजन कर, जनकपुर की चल दिए ।

१३४-शब्दार्थ—सगुन सुभ = शुभ शकुन, अच्छे शकुन । मेहर = पीहर, पिता का घर । जनकौर = जनकपुर । नियराइन्ह = निकट पहुँचे ।

अर्थ—बारात में ढोल और नगाड़े बजते जाते तथा मार्ग में शुभ शकुन मिलते जाते थे । इस भाँति बारात सीताजी के पीहर जनकनगर के समीप पहुँच गई ।

१३५-शब्दार्थ—अगवानी = आगौनी, बायत का आगे बढ़कर स्वागत करना । नूतन = नया ।

अर्थ—जनकपुर के समीप पहुँच कर बारात प्रसन्न हुई । (उधर राजा जनक स्वसमाज सहित) अगवानी करने के लिए गए । (घर और कन्या दोनों पक्ष के लोग) आपस में (एक

दूसरे को) देखते और मिलते तथा आदर करते हुए प्रेम में मग्न हो गए । (उस समय) जनकपुर में जो आनन्द, तमाशा और शोर गुल था वह भला कैसे वर्णन किया जा सकता है । (राजा जनक ने वाराणसी के लिए) वहाँ जनपासा दिया (ठहराया) जहाँ नित्य नए (समयानुकूल) सब भाँति के सुभीते थे ।

१३६-शब्दार्थ—कौस्तिक=विश्वामित्र । निरस्त्रि=देखकर ।

अर्थ—(उधर से) विश्वामित्रजी भी राम लक्ष्मण को लेकर जनपासे में पहुँच गए और वाराणसी को देखकर प्रसन्न हुए एवं उनका हृदय प्रेम से गदगद हो गया ।

१३७-शब्दार्थ—हृदय लाइ=हृदय से लगाकर ।

अर्थ—(जिस समय राम-लक्ष्मण वाराणसी में पहुँचे उस समय) राजा दशरथ वो बड़ी ही प्रसन्नता हुई और उन्होंने (राम लक्ष्मण को) गोश्रु में लेकर छाती से लगाया । (उस समय के) अनुपम आनन्द को सैकड़ों शेष भी वर्णन नहीं कर सकते ।

१३८-शब्दार्थ—राय=राजा । हेतु=लिए ।

अर्थ—राजा दशरथ ने श्री विश्वामित्रजी का पूजन करके ब्राह्मणों को दान दिए और श्रीगुरु की मंगल कामना से सब तरह के मंगल मनाए ।

१३९-शब्दार्थ—भूषित=पहने हुए, सुशोभित । भूषण-भूषण=जेवरों के भी जेवर । विश्व विलोचन=ससार की आँखें । वनज विकासक पूषण=कमलों को खिलाने वाले सूर्य ।

अर्थ—वैवाहिक श्रद्धाकारों से श्रद्धा, आभूषणों को भूषित करने वाले, ससार के नेत्ररूपी कमलों को खिलाने वाले सूर्य (श्रीरामचन्द्रजी) ।

१४०-शब्दार्थ—अनुकूलोउ=प्रसन्न होकर । आराम=भाग ।

अर्थ—बीच बारात में बैठे हुए बहुत ही भले लगते थे, मानो कामदेव के बगीचे में कल्पवृक्ष फूल रहा हो ।

१४१-शब्दार्थ—पठई=भेजी । सिद्धान्ति=प्रसन्न होते हैं ।

अर्थ—(बारात के ठहर चुकने पर) राजा जनक ने भीति भीति की बहुत सी भेंट भेजी, जिन्हें देख कर देवता खुश होने थे और बरातियों को बड़ा आनन्द होता था ।

१४२-शब्दार्थ—विहित=अनुसार, कहा हुआ । दुहुँ कुल-गुरु=दोनों कुलों के गुरु, अर्थात् वसिष्ठ और शतानन्द । पठई धोति=धुला भेजी ।

अर्थ—(फिर) दोनों ओर के कुल गुरुओं (विश्वामित्रजी और शतानन्दजी) ने वैदिक विधियाँ तथा कुल रीतियाँ की, और जनक ने हृदय में प्रसन्न होकर बारात धुला भेजी ।

१४३-शब्दार्थ—पगुधारिये=पैर धरिये, पधारिये, बलिप । मुनि=शतानन्द ।

अर्थ—मुनि (शतानन्दजी) ने राजा दशरथ से जाकर कहा कि, (महाराज) पधारिये, यह सुन कर (दशरथजी) गुरु (वसिष्ठजी) पार्वतीजी और गणेशजी का स्मरण करके चले ।

१४४-शब्दार्थ—पाँवडे=पायन्दाज, पैरों के नीचे बिछाने का कपड़ा । फनावडे=अहसानमन्द ।

अर्थ—(जिस समय दशरथ) गुरु (वसिष्ठजी) स्मरण करके चले (उस समय) देवता फूल बरसाने लगे । (राजा दशरथ के चलने के लिए मार्ग में) बहुत प्रकार के पाँवडे (बिछौने) पड़े थे (बिछाए गए थे) । राजा जनक ने सब प्रकार से दशरथजी का सम्मान करके उन्हें प्रेम से

कृतज्ञ बना दिया । सब गुणों में एक से समग्रियों (वर तथा कन्या के पिता-दशरथ और जनक) ने (परस्पर) मिलने में बड़ा आनन्द पाया तथा सब देवों, मुनियों और मनुष्यों ने धन्यवाद दिया तथा जय मनाई ।

१४५-शब्दार्थ—अवलोकहि = देखते हैं ।

अर्थ—तीनों लोकों में (जनक और दशरथ) दोनों की उपमा नहीं दिखाई पड़ती, जनक और दशरथ दोनों के समान तो केवल जनक और दशरथ ही दोनों हैं ।

१४६-शब्दार्थ—रनियास = महल । रहस = हय । पिब यैन = कोयल के से मोठे वचन बोलने वाली । परिहास = हँसी ।

अर्थ—अन्त पुर में कोयल के समान (मधुर) बोलने वाली स्त्रियाँ मागलिक सामग्रियाँ (कलश, आरती आदि) सजा रही (तथा परस्पर) हास्य-विनोद पूर्वक गान कर रही थीं ।

१४७-शब्दार्थ—उमा = पार्वती । रमा = लक्ष्मी । सुरतिय = देवताओं की स्त्रिया । विरचि = बनाकर ।

अर्थ—पार्वती और लक्ष्मी आदिक देव-स्त्रियाँ भी (राम के विवाह की चर्चा) सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और बनावटी नारियों का सा बढ़िया वेष बनाकर (राम-ज्ञानकी के विवाह) मण्डप में पहुँचीं ।

१४८-शब्दार्थ—परिलुन = घर के द्वार पर आने पर आरती आदि उतारने की प्रथा । विगर्सी = विकसी अर्थात् खिल गई । कनक = सोना । पंकज = कमल ।

अर्थ—(रनियास में उपस्थित स्त्रिया) मंगल आरती सजाकर घर (रामचन्द्रजी) को परलुने चलीं । (उस समय

वे स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती थीं) मात्तों सूर्योदय होने पर सुवर्ण के फमलों की कलियाँ खिली हों ।

१४६-शब्दार्थ—नख-सिख=नोह से लेकर चोटी तक अर्थात् सारे शरीर का । विलोचन=नेत्र ।

अर्थ—(स्त्रियाँ) जब नाव से लेकर शिखा तक सुन्दर रामजी के रूप को देखती हैं तो अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों में इन्द्र के नेत्रों की भाँति नेत्र अनुभव करती हैं । अथवा “अभि-छापा करती हैं कि हमारे समस्त शरीर में इन्द्र की भाँति हजार नेत्रों से देखने में बड़ा आनन्द आता ।”

इन पक्तियों का यह भी अर्थ किया जाता है कि इन्द्र ने जब रामचन्द्रजी की सर्वाङ्गीण सुन्दरता को देखा तो उनके सारे शरीर में नेत्र ही नेत्र होगये । नेत्र होजाने को कहा इस प्रकार कही जाती है कि—इन्द्र ने गोतम-पत्नी अहल्या के साथ व्यभिचार किया था । परिणाम स्वरूप गोतम मुनि के आप से इन्द्र के शरीर में सहस्र योनियाँ हो गई । पीछे इन्द्र के बहुत अनुनय विनय करने पर मुनि ने कहा—अच्छा, जब तुम राम विवाह देखोगे तो ये योनियाँ नेत्रों के रूप में परिणत हो आयेंगी ।

१५०-शब्दार्थ—गजगामिनि=हाथों की तरह झूम-झूम कर चलने वाली । अघाहि=घृन होती हैं, अघाती हैं । भागमरि=भाग्य से भरी हुई, सौभाग्यशालिनी । मामिनि=स्त्रिया ।

अर्थ—मत्त हाथी के समान चलने वाली तथा सौभाग्य से परिपूर्ण नारियाँ बड़े प्रेम से कुल की रीतियाँ करती हैं और (रामचन्द्रजी के) प्रेम से घृन नहीं होती ।

१५१-शब्दार्थ—नेगचार=नेगचार बघान, दस्तूर, रस्म । नागरि=चतुर स्त्रिया । गहरु=देर ।

अर्थ—चतुर स्त्रियाँ नेगचार करने में खूब देर लगाती हैं (जिससे अधिक समय तक धीराम के सान्निध्य में रह सकें) वे सुन्दर आँखों वाली (धीरामजी को) देख देख कर बड़ा आनन्द अनुभव करती हैं ।

१५२-शब्दार्थ—प्रमदागन = स्त्रिया । निछावरि = न्यौछावर, सिर के चारों ओर घुमाकर दिया हुआ दान ।

अर्थ—आरती और न्यौछावर करके घर (धीराम) को देखती हैं । प्रेमोन्मत्त स्त्रियाँ अपने शरीरों को भी नहीं सम्हालती अर्थात् उन्हें अपने शरीरों की भी सुधि नहीं है ।

१५३-शब्दार्थ—निमिष = पलकों के राजा । “निमिष रिपु जनु रन जए” = मानो निमेष रूपी शत्रुको रण में जीत लिया है अर्थात् निमि का अधिकार पलकों पर से हट गया है । चक्रवै = चक्रवर्ती सम्राट् । सुराज = अच्छा राज्य । रुचिरासन = सुन्दर आसन । अम्बर = वर ।

अर्थ—स्त्रियाँ अपने शरीरों को भी नहीं सम्हालती और ऐसी टकटकी टागाकर ग्युनायजी को देखती हैं मानो उन्होंने निमेष रूपी शत्रु को रण में जीत लिया हो अर्थात् पलकों के राजा निमि का अधिकार (पलकों से) उठ गया हो । नेत्ररूपी चक्रवर्ती राजा राम के सौन्दर्य रूपी अच्छे राज्य के सुखों को भोगने जाने लगे हैं । इसके पश्चात् जनक ने साधियों सहित राजा दशरथ को सुन्दर सिंहासनों पर बिठाया और विश्वामित्र तथा वशिष्ठजी का पूजन करके नूनन चरम देकर राजा की पूजा की ।

१५४-शब्दार्थ—अरघ = (अर्घ) स्वागत में जल छोड़ना या महमान को पाव धोने को जल देना । उमंगि = उमड़कर, प्रसन्न होकर । अलि = सधिया ।

अर्थ—सखिया अर्घ देती हुई रामचन्द्रजी को विवाह-मण्डप में लिवा ले चलीं और आनन्द से उत्साहित होकर भगल-गान करती हैं।

१५५-शब्दार्थ—सिख (श्व) = सखार । विमोह = मोहित करता है । मदन = कामदेव ।

अर्थ—मण्डप में बैठे हुए वर (रामजी) सखार को मोहित कर रहे थे और वे ऐसे शोभित थे मानो वसन्त ऋतु में (पुष्पित और पल्लवित) जन में कामदेव बैठे हों।

१५६-शब्दार्थ—जस = जैसा । उपरोहित = पुरोहित, फर्मकाराडी ।

अर्थ—दोनों प्राचार्य जहा जैसी लौकिक अथवा वैदिक रीति होनी चाहिये वहा वे प्रसन्नता पूर्वक वैसी ही कराते थे।

१५७-शब्दार्थ—सुमग = सुन्दर । अनुसासन = आशा ।

अर्थ—राजा जनक ने वर (राम) का पूजन वरके (उनकी) अच्छा सिंहासन (बैठने के लिए) दिया, और उधर वन्हीं की (जनकी की) आशा पाकर (सखियाँ) सीताजी को (मण्डप में) लिवा चलीं।

१५८-शब्दार्थ—पुत्र्य = युथ, झुगड । विराज = अच्छी मातृम देती है । भारती = सरस्वती । भाज = भागती है ।

अर्थ—युवतियों के समूह में सीताजी स्वभाव से ही विशेष शोभित थीं। उस समय की उपमा देते हुए तो सरस्वती भी तज्जित होकर भाग जातीं।

१५९-शब्दार्थ—निमान = बाजा, नगाडा ।

अर्थ—दुल्हा और दुलहिन को देखकर स्त्री पुरुष प्रसन्न होते थे और देवता लोग थोड़ी-थोड़ी देर में गाते, नगाडे, बजाते और फूल धरमाते थे।

१६०-शब्दार्थ—लै लै नाउँ = नाम लेले कर ।

अर्थ—सौभाग्यवती स्त्रियाँ नाम लेले कर गीत गाती थीं और राम-जानकी के हित के लिए गणेश और गौरी का पूजन कराती थीं ।

१६१-शब्दार्थ—अग्नि थापि = यज्ञ के लिए अग्नि स्थापित करके, अग्न्याधान करके । कुसो (शो) दक = कुश + उदक, कुश एक प्रकार की घास और उदक जल । सकल्प के समय एक हाथ में कुशोदक लेने का नियम है । सकलप = सकल्प, दान या दान करने के निश्चय का वर्णन करने वाले वाक्य विशेष ।

अर्थ—राजा जनक ने अग्निस्थापन कर हाथों में कुश तथा जल लेकर कन्यादान की विधि और सकल्प किए ।

१६२-शब्दार्थ—समर्पि = समर्पित कर दी, सौंप दी । शोभामयी = सुशायनी । सिन्दूर बन्दन = बधू की माग में सिन्दूर भरने की विधि । लावा सिल पोहनी = विवाह की एक प्रथा विशेष, इसमें बर-बधू अपने को कपड़े से ढक कर सिलपर मांगलिक द्रव्य पीसते हैं ।

अर्थ—(जिस भाति) हिमालय ने पायतीजी शकर को और समुद्र ने लक्ष्मीजी विष्णु भगवानको दी थीं (उसी भाति) राजा जनक ने सकलप करके शील-सुख और शोभा से युक्त जानकीजी राम को सौंप दी । (पश्चात्) सिन्दूर बन्दन, लावा, होम तथा परिक्रमा आदि अन्य वैवाहिक विधियाँ होने लगीं । शिलारोहण की विधि करके (तो) सब को मोहित करने वाली साँवली मूर्ति (श्रीरामजी) ने (सब का) मन हर लिया ।

१६३-शब्दार्थ—उत्साह = उत्साह, आनन्द ।

अर्थ—इस प्रकार श्रीराम और जानकी के विवाह का आनन्द तीनों लोकों में मनाया गया मुनोन्मत्त लोग आशीर्वाद देने और देवता फूल बरसाते लगे ।

१६४-शब्दार्थ—कोहबर = वह स्थान जहाँ विवाह के बाद घर-घर जाते हैं और स्त्रियाँ घर से हसी मजाक करती हैं ।

अर्थ—विधाता ने मनचाहता कर दिया (इसलिये) स्त्रियाँ बड़ी प्रसन्न हुई और स्त्रियाँ राम और सीताजी को कौतुकागार में लिया ले गईं ।

१६५-शब्दार्थ—घसन = घसत्र ।

अर्थ—(यहाँ) घर-घर की ओर देख कर (स्त्रियाँ) बार-बार बहुमुख्य बरछा तथा रत्न निछावर करने लगीं । वह दिन जिस प्रसन्नता एवं आनन्द का था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ।

१६६-शब्दार्थ—भीम = मगल, भूमि से उत्पन्न हुआ, सीता का भाई, क्योंकि सीताजी भी पृथ्वी से ही उत्पन्न हुई थीं । दुरीदुरा = छिप छिप करके । नेगु = रीति । सुनात जनायड = अच्छा नाता या सम्बन्ध प्रकट हो गया ।

अर्थ—(सीताजी के विवाह में) घर की ओर के कामों के समय भूमि-सुत (मगल) यहाँ आया था, (उसने) अपने नेग (कर्त्तव्य कार्य) लुके छिप कर किए तब भी (उसका जानकीजी के साथ) अच्छा नाता (स्नेहभाव) प्रकट हो ही गया । जानकीजी भूमि सुत और मगल भूमि का पुत्र है, अतएव दोनों में माइ-बहिन का सम्बन्ध हुआ ।

१६७-शब्दार्थ—कुँवरिहि = कुमारी या पुत्री को । लहकौर = कोहबर में घर-घर को दही-चीनी मिलाने की प्रथा । समो = समय ।

अर्थ—समझदार स्त्रिया दूल्हा और दुल्हिन को लोक व्यवहारों की शिक्षा देती थीं, और लहकौर के समय स्त्रियाँ गाली देकर सुख मानती थीं ।

१६८-शब्दार्थ—कोतुक=हँसी, खेल-तमाशा । सयानिन्द=चतुर, सखिया । दुहँ रानिन्द=दोनों रानियों को अर्थात् जनक और दशरथ दोनों की रानियों को ।

अर्थ—चतुर स्त्रियों ने राम और सीता को जूआ (यह भी एक लोकाचार है) खिलाने समय हास्य किया । (अर्थात् वे) जूआ खेलने में जीतने या हारने के बहाने दोनों रानियों (राम की माता और जानकी की माता) को गालियाँ देती थीं ।

१६९-शब्दार्थ—आरति=आगती । भारति=सरस्वती ।

अर्थ—सीताजी की माता (उस समय) मन में प्रसन्न होती हुई (घर-वरनी की) आरती करती थीं । (उस समय के) आनन्द का वर्णन कोन कर सकता है, (क्योंकि उस आनन्द को अनुभव करने) सरस्वती (वाणी की अधिष्ठाता देवता) भी मग्न हो गई ।

१७०-शब्दार्थ—युवतिजुय=युवतियों (नौजवान) स्त्रियों का झुण्ड । गहस घम=विषाद या कौतुक से, आनन्द से ।

अर्थ—इस भाँति अत पुर में युवनियों का समूह सर प्रकार के झुण्डों के खजाने राम और सीताजी को देख देख कर आनन्द में मग्न हो गया ।

१७१-शब्दार्थ—निघान=खाना । लोचन ताद=आँखों (लोचन) का सुख । नागरी=सभ्य या चतुर स्त्रिया । सुरधेनु=कामधेनु । सुरमति=चिन्तामणि ।

अर्थ—बुद्धिमती नारियाँ, आनन्द के समुद्र श्रीरामजी के दर्शन कर कर नेत्रों के लाभ को लूटती थीं, (और जब उन्होंने यह) सुना कि राजा जनक ने अन्य तीन कुमारियों का भी (जिनमें एक जनक की तथा दो उनके भाई कुशभ्यज की थी) भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण के साथ विवाह कर दिया तो ओर भी आनन्द में विभोर हो गई । मंगल में ओर भी मंगल होने से (वहाँ के) मण्डपों की शोभा मन को लुभा रही थी । ऐसा ज्ञात होता था मानों वहाँ साक्षात् कल्पवृक्ष, कामधेनु, चन्द्रमा और सूर्यमणि सहित विराजमान हो ।

१७२-शब्दार्थ—जनक अनुज = राजा जनक का छोटा भाई कुशभ्यज । ननया = लड़की । जेठि = ज्येष्ठि, बड़ी मागड़वी । नय = शत, सौ ।

अर्थ—जनक के छोटे भाई की परम सुन्दरी दो कन्याएँ थीं, (उनमें से) बड़ी (माडवी जो) खेकड़ों रतिया के समान रुपयती थी भरत को प्याह दी ।

१७३-शब्दार्थ—सिय लघु भगिनि = सीता की छोटी बहिन ऊर्मिला । उजागर = प्रसिद्ध, रोशन, प्रकाशित । लखन अनुज = लक्ष्मण के छोटे भाई, शत्रुघ्न । गुन आगरि = चतुर ।

अर्थ—(ओर) अत्यन्त रूपशालिनी सीताजी की छोटी बहिन (ऊर्मिला) लक्ष्मण को तथा सब गुणों की खानि धृत-कीर्ति (जनक के भाई की कन्या) लक्ष्मणअनुज (शत्रुघ्न) को विवाह दी ।

१७४-शब्दार्थ—विधि = ब्रह्मा ।

अर्थ—रामजी के विवाह की भाँति ही अन्य तीनों भाइयों के विवाह भी हुए (जिन्हें देखने के द्वारा) मानो ब्रह्मा ने मनुष्य शरीर धारण करने और नेत्र पाने का फल सब को दिया ।

१७५-शब्दार्थ—दादज=दहेज । गनि=गिना । बाजि=घोडा । हेम=सोना ।

अर्थ—सेवक, सेविका, घोड़े, हाथी, सोना, वस्त्र और रत्न आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ जो (राजा जनक ने) दहेज में दीं उनकी गणना नहीं की जा सकती ।

१७६-शब्दार्थ—परमान=हृदय दर्जे तक, जिससे अधिक कोई न दे । पूरन किया=पूरा किया । विनय=नम्रता ।

अर्थ—राजा जनक ने यथेष्ट दहेज देकर तथा आवश्यक सत्कार करके प्रेम को पूरा कर दिखाया और धारात सहित समधी (दशरथजी) को विनय करके वश में कर लिया ।

१७७-शब्दार्थ—सुतवहू=पुत्र वधू । फल चारि=चार-फल अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ।

अर्थ—(विवाह सत्कार समाप्त हो जाने पर) राजा दशरथ पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं सहित जनवासे गए, (उस समय ऐसा मालूम होता था) मानो राजा दशरथ ने चारों साधनाओं (चारों पुत्र चार फल हैं, और चारों वधुओं से अभिप्राय चारों साधनाओं से है अर्थात् धर्म, अधीनता, भक्ति और फलव्य-पालन) सहित चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को पा लिया है ।

१७८-शब्दार्थ—अग्रघपति=दशरथ ।

अर्थ—(विवाहोपरान्त) बहुत प्रकार से चारों (चर्य, चोप्य, चेह्रा और पेय) तरह के पदार्थों से ज्यौनार होने लगी । राजा दशरथ बरातियों सहित भोजन करने लगे ।

१७९-शब्दार्थ—देहि गारि=गारी गाती हैं । वरनारि=धेड़ स्त्रियाँ ।

अर्थ—चतुर स्त्रियाँ (वर और कन्या) पक्षों के मनुष्यों के नाम ले ले कर गालियाँ गाना हैं, (जिन्हें सुन कर) भोजन

करते हुए और भी आनन्द घटता है। वह रात्रि बड़ी ही सुहावनी थी।

१८०-शब्दार्थ—मागध=राजाओं के आगे आगे उनकी प्रशंसा करते हुए चलने वाली जाति विशेष। सूत=पौराणिक कथा कहने वाले। जाचक=पाचक, भगता। मन करपै नहीं=हृदय सकुचित नहीं होता, मन में उदारता बनी रहती है।

अर्थ—यह रात्रि बड़ी ही सुहावनी थी, क्योंकि मनोहर गाने गाए जा रहे थे तथा अच्छे अच्छे धाजे यज्ञ रहे थे। राजा दशरथ स्नान-पान करके तथा बड़ा आनन्द पाकर जनवासे की चले। नट, भाट, मागध, सूत और मँगते राजा के यश और प्रताप का वर्णन करने लगे और राजा भी बिना सकोच आनन्द पूर्वक ब्राह्मणों को गज और रत्नादि देने लगे।

१८१-शब्दार्थ—पहुनाई=अतिथि, सत्कार, मेहमानदारी। अगणित=अगणित।

अर्थ—राजा जनक ने बड़ी विनय करके कुछ दिन बरातियों को रोका और अनेक प्रकार से उनका आतिथ्य किया।

१८२-शब्दार्थ—भूपति-भामिनि=राजा की स्त्री। परि न बिरह बस नींद=वियोग होने के कारण नींद न आई। जामिनि=यामिनि, रात।

अर्थ—जिस दिन अन्त पुर की रातियों ने सुना कि कल बरात आयगी तो उस रात उन्हें राम-वियोग की चिन्ता में नींद न पड़ी और यों ही रात्रि बीत गई।

१८३-शब्दार्थ—खरभर=खलबली, हलचल। ससुरारि=सुसराल।

अर्थ—बारात की विदा का समाचार सुन कर नगर में खलबली मच गई और नर-नारी ब्रह्माजी से दिनती करने लगे।

कि (भगवन् पेसा करना) जिससे श्रीरामजी बार बार ससुराल में आते रहें ।

१८४-शब्दार्थ—चलन=प्रस्थान । भवन=घर ।

अर्थ—राजा जनक ने विदा की सब तयारियाँ करली तब श्रीरामजी भाइयों समेत राजमहल में गए ।

१८५-शब्दार्थ—मूरति साँवरि=साँवली मूर्ति (राम से अभिप्राय है)

अर्थ—(वहाँ) सास (जानकी की माता) चारों भाइयों की आरती करके न्यौछावर करने लगीं और साँवली-सलोनी मूर्ति को देख देख हृदय में हर्षित होने लगीं ।

१८६-शब्दार्थ—मामेउ विदा=विदा माँगी । फरना=वरुणा, दया । परिहरि=छोड़ कर । पुलकि=प्रेम से गद्गद होकर ।

अर्थ—(जब) रामचन्द्रजी ने विदा माँगी तब रानी कदम्बा से परिपूर्ण होगई और सकोच छोड़कर पुलकित होती हुई राम के पैरों में गिर पड़ीं ।

१८७-शब्दार्थ—निहोरहि=प्रार्थना करती हैं ।

अर्थ—रानियाँ सीताजी समेत सब पुत्रियों को साँप कर साथ जोड़ रहीं हैं और बार-बार रघुनाथजी को देख कर प्रार्थना करती हैं ।

१८८-शब्दार्थ—तात=बतस, प्यारे । छोड़=प्रेम । मया=ममता । राखब=रखियेगा । अनुचर=सेवक ।

अर्थ—हे प्यारे, प्रेम मत छोड़ देना, मन में ममता रखना, और राजा को नगर के तथा कुटुम्ब के मनुष्यों सहित अपना सेवक समझना ।

१५६-शब्दार्थ—जन=दास । बलि=बलैया लेना । उर=छाती । मृग=जंगल में घूमने वाले चौपाये, हिरन । प्रबोधि=तसल्ली देकर, समझा कर । हय-नाय=घोड़े-हाथी ।

अर्थ—हे प्यारे, अपना ही सेवक जान कर प्रेम करना, हम बलिहारी जाती हैं, इस भाँति रानिशाँ दीन वचन कहती हैं और अत्यन्त प्रेम से बार-बार राजकुमारों को छाती से लगाती हैं । सीताजी के (विदा होकर चलते ही जनकपुर के) मनुष्य, स्त्री, हाथी, घोड़े, पक्षी, तथा अन्य जानवर व्याकुल हो उठे । सासुओं की विनय सुन कर और उन्हें समझा कर रघुनाथजी पिता के पास गए ।

१६०-शब्दार्थ—परेड निसाहिं घाय=नगाड़ों पर चोट पड़ी । पावहिं=पाते हैं ।

अर्थ—(जब राजा दशरथजी विदा हो कर) आयोध्या को चले तो नगाड़ों पर चोट पड़ी अर्थात् नगाड़े बजाये जाने लगे तथा देवता फूल धरसाने लगे और यात्रा आरम्भ करने के लिए शुभ शङ्कन होने लगे ।

१६१-शब्दार्थ—सिखाजन=शिक्षा । सचिव=मन्त्री ।

अर्थ—राजा जनक सीताजी से मिल कर तथा उन्हें अच्छी शिक्षा देकर, मन्त्री, गुरु तथा भाई-बधुओं सहित वाराणसी को पहुँचाने चले ।

१६२-शब्दार्थ—विनय=स्तुति । भाजन=पात्र ।

अर्थ—(वाराणसी के जनकपुर से कुछ दूर निकल जाने पर) राजा दशरथ ने पुलकिन होकर (जनकजी से) कहा—राजन, अब लौट जाइये । सर्व गुणसम्पन्न दोनों राजा एक दूसरे से विनय करते हैं ।

१६३-शब्दार्थ—उत्थपन पापन=उसड़ने वालों की जड़ जमाने वाले, अथवा निराश्रितों के आश्रय ।

अर्थ—राजा जनक हाथ जोड़ कर दशरथजी से कहने लगे—महाराज, आपने मुझे अपना लिया है। हे रघुवश मणि, आप सदा (गिरे हुएों को) उठाने वाले हैं और (उलझे हुएों को) स्थापित करने वाले हैं।

१६४-शब्दार्थ—विलग न मानय = बुरा न मानना। बोल पठायउं = बुलवा भेजा। प्रसाद = कृपा।

अर्थ—हे महाराज, आपको जो मैंने यहा पधारने का कष्ट दिया है, इसके लिए बुरा न मानना। हे स्वामी, मुझे आपकी प्रसन्नता से उत्पन्न यश और सब सुख मिल गए।

१६५-शब्दार्थ—गहि = पकड़ कर।

अर्थ—फिर राजा जनक ने वशिष्ठ आदिक मुनियों की चन्दना की तथा विश्वामित्रजी के पैर पकड़ कर बहुत कुछ विनय की।

१६६-शब्दार्थ—गदगदकण्ठ = प्रसन्नता से खँधा हुआ गला।

अर्थ—इसके अनन्तर गदगद कंठ हो, नेत्रों में जल भर और हृदय में धीरज धर के भाइयों सहित रघुनाथजी की बहुत विनती करके (कहा)—

१६७-शब्दार्थ—सुजानशिरोमणि = चतुर चूड़ामणि। जनि = मत, न, निषेधात्मक।

अर्थ—हे कृपासिन्धु, हे सुख के समुद्र, हे सज्जन शिरोमणि, हे प्यारे, जब तब (हमारी) याद कर लेना, प्रेम मत छोड़ देना।

१६८-शब्दार्थ—समौ = समय, अवसर। पयान = प्रयाण, प्रस्थान। गदगद = जोर से।

अर्थ—(उक्त प्रकार राजा जनक द्वारा की गई) विनय की सुन कर रघुनाथजी ने (जनकजी की) बहुत कुछ विनती की।

तदनन्तर राजा जनक सबसे मिल बैठ तथा मन में धीरज धर कर लौट गए। वह समय कुछ कहते नहीं बनता। उस समय चौदहों भुवन कण्ठा से भर रहे थे। तभी अयोध्या-नरेश दशरथजी ने प्रस्थान किया और जोर से बाजे बजने लगे।

१६६-शब्दार्थ—पथ = मार्ग। भृगुनाथ = भृगु कुल के स्वामी परशुगम। दाहण = कठोर आस देखाइ = क्रुद्ध हो कर।

अर्थ—रास्ते में हाथ में फरसा लिए हुए श्रीपरशुरामजी मिले। वे श्रीराजी को आखें दिखा दिया कर डाटने और भारी क्रोध करने लगे।

२००-शब्दार्थ—परितोष = सन्तोष। रोष = क्रोध। रिस = क्रोध। सारग = धनुष।

अर्थ—रामचन्द्रजी ने परशुरामजी को शांत कर दिया (जिससे) वह क्रोध तथा रिस को त्याग कर और रामचन्द्रजी को विष्णु का धनुष देकर तथा (राम के वरदानों द्वारा) अपने त्रेत्र सफल कर चल दिये।

२०१-शब्दार्थ—जलि सन्मुख विधि = विधाता को अनुकूल देख कर।

अर्थ—रघुनाथजी के बाहुबल को देख कर बारातियों में बड़ा उत्साह था और राजा दशरथ विधाता को सब प्रकार अनुकूल समझ कर बड़े प्रसन्न थे।

२०२-शब्दार्थ—मगलोगनि = रास्ते में मिलने वाले लोगों को।

अर्थ—इस प्रकार चारों पुत्रों का विवाह सत्कार हो जाने पर दशरथजी की कीर्ति सारे ससार में फैल गई और वे मार्ग के लोगों को सुख देते हुए अयोध्यापुरी में आगये।

बधे के से नेत्र वाली । मस्त = मतराजा । कुञ्जर = हाथी ।
गामिनी = चलने वाली ।

अर्थ—हरिण के बच्चे के सदृश नेत्र वाली स्त्रिया सुन्दर
मागलिक वृत्तों को लगाकर और बहुत से वही, दूध, चावल,
रोली आदि से घाल भर कर आरती सजाती हैं । मस्त हाथी
के समान चलने वाली कौशल्या, सुमित्रा आदि रानियाँ सब
सामग्री ठीक करके रामचन्द्रजी का 'परिष्कृत' करने चलीं ।

२०८-शब्दार्थ—बधुश्री = बधुओं या बहुश्री के ।

अर्थ—मातायें बहुश्री सहित चारों पुत्रों को देखती थीं
तथा बार-बार प्रसन्न होकर आरती उतारती थीं ।

२०९-शब्दार्थ—प्रेम पयनिधि = प्रेम सागर ।

अर्थ—मगल और प्रसन्नता से भरी हुई रानियाँ क्षण-
क्षण में न्यौछावर करती हैं तथा दुलहे-दुलहिनों को देखकर
प्रेम के समुद्र में डूब रही हैं ।

२१०-शब्दार्थ—भुई = भूमि । वावर = वादल, आकाश ।

अर्थ—रानिया बहुश्री को पावड़े डालती और अर्घ्य देती
हुई आदरपूर्वक ले चलीं तो आकाश, पाताल, पृथ्वी सर्वत्र
आनन्द ही आनन्द छा गया ।

२११-शब्दार्थ—उधार = परदा, गिलाफ । उघाडि = ढोल
कर या हटाकर ।

अर्थ—स्त्रिया परदा उधार उधार कर बहुश्री को देखतीं
और नेत्रों का लाम प्राप्त करके जन्म सफल समझती थीं ।

२१२-शब्दार्थ—आनि = लारु । कनक = सोना ।

अर्थ—रानियों ने पुत्र बधुश्री को महलों में ले जाकर बहुत
प्रकार से सम्मान करके सब मंगल किए और वस्त्र, सोना,
रत्न, गाय आदि दान करके ब्राह्मणों को दिए ।

२०३-शब्दार्थ—सुमन = फूल । फोलाहल = धूमधाम, शोरशर ।

अर्थ—(श्रयोध्या में प्रवेश करते समय) अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे थे तथा देवता पुष्प बरसा रहे थे । नगर में बड़ा भारी हल्ला गुल्ला हुआ एवम् (नगर के सभी) नर नारी प्रसन्न हुए ।

२०४-शब्दार्थ—घाट = किनारे । घाट = रास्ता । पुरद्वार = नगर में घुसने का दरवाजा । वीथी = गली ।

अर्थ—(स्वागतार्थ नगर के लोग) घाटों, रास्तों, नगरद्वारों और बाजारों को सजा कर गलियों में सुगन्धित जल छिड़क कर मंगल-गान कर रहे थे ।

२०५-शब्दार्थ—चौकें पूरे = चौक काढ़ते हैं । चारु = सुन्दर । वज्र = भण्डा ।

अर्थ—श्रयोध्या नगरी में लोग चौक पूरे रहे थे (उन्हें सुन्दर कलश और वज्रा से सुसज्जित करते थे) और अनेक भौति के घनघोर धाजे बज रहे थे ।

२०६-शब्दार्थ—पताका = भण्डा । रोपे = आरोपित करते हैं । सफल सपल्लव = फलों और पत्तों सहित । मंगल तरुधर = आम, अशोक, पीपल आदि मांगलिक वृक्ष ।

अर्थ—घर-घर में वन्दनार्थ चंदोवे और पताके बनाए गये हैं । लोग फलों और पत्तों युक्त मांगलिक वृक्ष लगा रहे हैं ।

२०७-शब्दार्थ—मञ्जुल = सुन्दर । विपुल = अधिक । दधि = दही । दुध = एक प्रकार की पवित्र घास, विवाहादि अरसरों पर दुध से पानी छिड़का जाता है, यह घास कान में भी उरमी जाती है । अच्युत (अक्षत) = चावल । रोचना = खेती । सारग-सावक लोचनी = (शारग-शावक) हिरन के

बधे के से नेत्र वाली । मस्त = मतवाला । कुञ्जर = हाथी ।
गामिनी = चलने वाली ।

अर्थ—हरिण के बच्चे के सदृश नेत्र वाली स्त्रिया सुन्दर
मागलिक घृतों को लगाकर और बहुत से दही, दूध, चावल,
रोली आदि से थाल भर कर आरती सजाती हैं । मस्त हाथी
के समान चलने वाली कौशल्या, सुमित्रा आदि रानियाँ सब
सामग्री ठीक करके रामचन्द्रजी का 'परिचय' करने चलीं ।

२०८-शब्दार्थ—बधुन्व = बधुओं या बहुओं के ।

अर्थ—मातायें बहुओं सहित चारों पुत्रों को देखती थीं
तथा बार बार प्रसन्न होकर आरती उतारती थीं ।

२०९-शब्दार्थ—प्रेम पयनिधि = प्रेम-सागर ।

अर्थ—मगल और प्रसन्नता से भरी हुई रानियाँ क्षण-
क्षण में न्यूँझावर करती हैं तथा दुलहे-दुलहिनों को देखकर
प्रेम के समुद्र में डूब रही हैं ।

२१०-शब्दार्थ—भुईं = भूमि । वावर = वादल, आकाश ।

अर्थ—रानियाँ बहुओं को पावड़े डालती और अर्थ देती
हुई आदरपूर्वक से चलीं तो आकाश, पाताल, पृथ्वी सर्वत्र
आनन्द ही आनन्द छा गया ।

२११-शब्दार्थ—उधार = परदा, गिलाफ । उघाडि = खोल
कर या हटाकर ।

अर्थ—स्त्रिया परदा उधार उधार कर बहुओं को देखतीं
और नेत्रों का लाभ प्राप्त करके जन्म सफल समझती थीं ।

२१२-शब्दार्थ—आनि = लाकर । कनक = सोना ।

अर्थ—रानियों ने पुत्र बधुओं को महलों में ले जाकर बहुत
प्रकार से सम्मान करके सब मंगल किए और वस्त्र, सोना,
रत्न, गाय आदि दान करके ब्राह्मणों को दिए ।

२१३-शब्दार्थ—निहाल = कृतकृत्य, वृष्ट । पितर = पूर्वज, पुरखा लोग । उदय = बढ़ती, उगति ।

अर्थ—राजा वशरथ ने याचकों को निहाल या वृष्ट कर दिया जो जहा-तहा आशीर्वाद देते हैं और रामजी के अभ्युदय के लिए सब देवता और पितरों की पूजा की ।

२१४-शब्दार्थ—पहिरावनि = पोशाक, सिले सिलाए कपड़े । पायनि = पवित्र ।

अर्थ—रानियों ने सब नेगचार करके सम्बन्धियों, घर की बहिन-बेटियों, गुरुपत्नियों तथा दहलनियों को पहिरावनी दी अर्थात् वस्त्र भूषण पहनाए ।

२१५-शब्दार्थ—जोरी चारि = चारों राजकुमारों की जोड़ियाँ । निकसहिं = निकलती हैं ।

अर्थ—सब स्त्रियाँ चारों दम्पतियों को देख आशीर्वाद देती निकलती हैं । (और ऐसी खुश हैं) जैसे चन्द्रोदय होने पर कुमुदिनी प्रसन्न होकर खिल उठती है ।

२१६-शब्दार्थ—विकसहिं = खिलती हैं । कुमुद = कुई का फूल । विधु = चन्द्रमा । एहि जुगुति = इस युक्ति से, इस प्रकार । उपवीत = जनेऊ । अनुदिन = रोज-रोज, नित्यप्रति ।

अर्थ—(सब स्त्रियाँ) चन्द्रमा को देख कर कुमुदिनी की भाँति प्रफुल्ल हो जाती हैं । (उस समय) अयोध्यापुरी सुखों और शोभा से युक्त हो रही थी । तुलसीदासजी कहते हैं कि इस भाँति राम विवाह की नूतन कीर्ति को सभी कवि गाते हैं । जनेऊ तथा विवाह उत्सव समय जो स्त्री पुरुष सिय राम मगल अर्थात् जानकी-मगल गावेंगे उनका दिन दिन सब प्रकार से कल्याण होगा ।

